विषय सूची

प्रकाशकीय

'हिन्दी पद संग्रह' को पाठकों के हाथों में देते हुये मुझे प्रसन्नता हो रही है। इस संग्रह में प्राचीन जैन कवियों के ४०१ पद दिये गये हैं जो मुख्यत भक्ति, वैराग्य, अध्यात्म शृंगार एवं विरह आदि विषयों पर आधारित हैं। कबीर, मीरा, सूरदास एवं तुलसी आदि प्रसिद्ध हिन्दी कवियों के पदों से हिन्दी जगत् खूब परिचित है तथा इन भक्त कवियों के पदों को अत्यधिक आदर के साथ गाया जाता है लेकिन जैन कवियों ने भी भक्ति एवं अध्यात्म सम्बन्धी सैकड़ों ही नहीं हजारों पद लिखे हैं जिनकी जानकारी हिन्दी के बहुत कम विद्वानों को है और सभवत यही कारण है कि उनका उल्लेख नहीं के बराबर होता है। प्रस्तुत 'पद संग्रह' के प्रकाशन से इस दिशा में हिन्दी विद्वानों को जानकारी मिलेगी ऐसा मेरा दृढ़ विश्वास है।

प्रस्तुत संग्रह महावीर ग्रंथमाला का दसवां प्रकाशन है। साहित्य शोध विभाग द्वारा इससे पूर्व ६ पुस्तकें प्रकाशित की जा चुकी हैं। उनका साहित्य जगत् में अच्छा स्वागत हुआ है। देश विदेश के विश्वविद्यालयों में इनकी मांग शनै शनै बढ़ रही है और उनके सहारे बहुत से विश्वविद्यालयों में जैन साहित्य पर रिसर्च भी होने लगा है। शोध विभाग के विद्वानों द्वारा राजस्थान के ८० से अधिक शास्त्र भण्डारों की ग्रंथ सूचियां

तैयार करली गयी है जो एक बहुत बड़ा काम है और जिसके द्वारा सेकड़ों अज्ञात ग्रन्थों का परिचय प्राप्त हुआ है। वास्तव में ग्रन्थ सूचियों ने साहित्यान्वेषण की दिशा में एक इढ़ नींव का कार्य किया है जिसके आधार पर साहित्यिक इतिहास का एक सुन्दर महल खड़ा किया जा सकता है। इसी तरह राजस्थान के प्राचीन मन्दिरों एवं शिलालेखों का कार्य भी है जो जैन इतिहास के विलुप्त पृष्ठों पर प्रकाश डालने वाला है। शिलालेखों के कार्य में भी काफी प्रगति हो चुकी है और इसके प्रथम भाग का शीघ्र ही प्रकाशन होने वाला है।

साहित्य शोध विभाग के काम को ओर भी अधिक गति शील बनाने के लिए क्षेत्र की प्रबन्ध कारिणी कमेटी प्रयत्नशील है और इस उद्देश्य की पूर्ति के लिये विद्वानों का एक शोध मंडल (Research Board) शीघ्र ही गठित करने की योजना भी विचाराधीन है। शोध विभाग की एक त्रैवार्षिक साहित्यान्वेषण एवं प्रकाशन की योजना भी बनायी जा रही है जिसके अनुसार राजस्थान के अवशिष्ट शास्त्र भण्डारों की ग्रन्थ सूची का कार्य पूर्ण कर लिया जावेगा।

सुप्रसिद्ध विद्वान डा० रामसिंहजी तोमर अध्यक्ष हिन्दी विभाग विश्व भारती शान्तिनिकेतन के हम आभारी हैं जिन्होंने इस पुस्तक का प्राक्कथन लिख कर हमारा उत्साह बढ़ाया है। हम श्री पं० चैनसुखदास जी न्यायतीर्थ के भी पूर्ण आभारी हैं जिनकी सतत प्रेरणा एवं निर्देशन में हमारा

साहित्य शोध विभाग कार्य कर रहा है। प्रस्तुत पुस्तक के विद्वान सम्पादक डा० कस्तूरचन्द जी कासलीवाल एवं उनके सहयोगी श्री अनूपचन्द जी न्यायतीर्थ एवं श्री सुगनचन्द जी जैन का भी हम हृदय से आभार प्रकट करते हैं जिनके परिश्रम से यह पुस्तक पाठकों के समक्ष प्रस्तुत करने मे समर्थ हो सके है।

गैंदीलाल साह
मन्त्री

दिनाक २०-४-६५

प्राक्कथन

जैन सम्प्रदाय के अनुयायियों ने भारतीय साहित्य और संस्कृति को महत्वपूर्ण ढंग से समृद्ध किया है। संस्कृत प्राकृत और आधुनिक भारतीय भाषाओं में उत्कृष्ट कृतियों की रचनाएं जैनाचार्यों ने लिखी हैं। दर्शन धर्म कला के क्षेत्र में भी उनका योगदान बहुत श्रेष्ठ है। सभी क्षेत्रों में जो उनकी कृतियां मिलती हैं उन पर जैन चिंतन की अपनी विशेषता की स्पष्ट छाप मिलती है और यह छाप है जैन धर्म और नीति विषयक दृष्टि कोण की। इसी कारण जैन साहित्य जैनेतर साहित्य की तुलना में कुछ पृथक प्रतीत होता है। सौंदर्य कल्पना तथा भाषा की दृष्टि से जैन कथा साहित्य अनुपम है। 'वसुदेवहिण्डी" कुवलयमाला कथा 'समराइच्च कहा' आदि ऐसी कृतियां हैं जिन पर कोई भी देश गर्वित हो कर सकता है। अपभ्रंश में भी पउम चरिउ पुष्पदन्त कृत 'महापुराण भी महत्वपूर्ण कृतियां हैं।

हिन्दी में भी जैनाचार्यों ने अनेक कृतियां लिखी हैं। "अर्ध कथानक" जैसी कृतियों के एकाधिक विद्वत्तापूर्ण संस्करण हो चुके हैं हिन्दी साहित्य के इतिहासों में जैन रचनाओं का न्यूनाधिक रूप में उल्लेख मिलता है किन्तु भाषा और भावधारा की दृष्टि से सही मूल्यांकन अभी नहीं हुआ है। उसके कारण हैं—जैन

साहित्य की एकरसता, सर्वसाधारण के लिए उसका उपलब्ध न होना और स्वय जैन समाज की उपेक्षा। प्रस्तुत सग्रह मे डा० कासलीवाल जी ने जैन कवियों की कुछ रचनाओं को सग्रहीत किया है। ये रचनाएँ पद शैली की हैं। हिदी, मैथिली, बगला तथा अन्य उत्तर भारत की भाषाओं मे पदशैली मध्यकालीन कवियों की प्रिय शैली रही है। पदों को 'राग रागनियों' का शीर्षक देकर रखने की प्रथा कितनी प्राचीन है कहना कठिन है। किन्तु कविता और सगीत का सम्बन्ध बहुत प्राचीन है — उतना ही प्राचीन जितनी कविता प्राचीन है। भारत के नाट्य शास्त्र के ध्रुवागीत, नाटकों मे विभिन्न ऋतुओं, पर्वों, उत्सवों आदि को सकेत करके गाए जाने वाले गीतों मे इसकी परम्परा का प्राचीनतम साहित्यिक प्रयोग मिलता है। छद और राग में कोई सबध रहा होगा किन्तु छद शास्त्रियों ने इस पर बहुत ही कम विचार किया है। मैथिल कवि-लोचन की रागतरगिणी मे इस विषय पर थोडा सा सकेत मिलता है जो हो रागबद्ध पदों की दो परम्पराएँ मिलती है–एक सरस और दूसरी उपदेश प्रधान। सरस परम्परा में साहित्यिक रस और मानव अनुभूति का बड़ा ही सुन्दर चित्रण हुआ है। उस पद परम्परा मे विद्यापति, व्रज के कृष्ण भक्त कवि मीरा आदि प्रधान हैं। दूसरी उपदेश और नीति प्रधान धारा का प्रारम्भिक स्वरूप साधना परक बौद्ध सिद्धों के पदों में देखा जा सकता है। कबीर के पदों मेसाधना परक स्वर प्रधान होते हुये भी काव्य की झलक मिलती है। अन्य सतों

के पदों में काव्य की मात्रा बहुत ही कम है। किन्तु उपदेश और नीति के लिए दोहा का ही प्रधान रूप से मध्ययुग के साहित्य में प्रयोग हुआ है। जैन पदों में उपदेश की प्रधानता है। वास्तव में समस्त जैन साहित्य में धर्म और उपदेश के तत्वों का विचित्र सम्मिश्रण मिलता है। जैन साहित्य की समीक्षा करते समय जैन कवियों के काव्य विषयक दृष्टिकोण को सामने रखना आवश्यक है—कथा और कविता के सम्बन्ध में जिनसेनाचार्य ने कहा है—

> त एव कवयो लोके त एव विचक्षणाः।
> येषां धर्मकथाङ्गत्वं भारती प्रतिपद्यते॥
> धर्मानुबन्धिनी या स्यात् कविता सैव शस्यते।
> शेषा पापास्रवायैव सुप्रयुक्तापि जायते॥

हिन्दी जैन साहित्य का अध्ययन इसी दृष्टि से होना चाहिये।

हिन्दी साहित्य के मध्ययुग में भक्ति की धारा सबसे पुष्ट है उसके सगुण निर्गुण (संत सूफी) दो रूप हैं। अभी तक जैन संप्रदायानुयायियों की भक्ति विषयक रचनाओं का भावधारा की दृष्टि से अध्ययन नहीं हुआ है। इस ग्रन्थसोपान के अन्तर्गत संग्रह में भक्ति विषयक रचनाएँ ही प्रधान रूप से संग्रह की गई हैं। इन रचनाओं का रचनाकाल सोलहवीं शती से लेकर उन्नीसवीं शती का उत्तरार्द्ध है। भट्टारक रत्नकीर्ति गोस्वामी तुलसी

दास के समकालीन थे। हिन्दी साहित्य के इतिहासों मे जहां भक्ति काल की सीमाएँ समाप्त होती हैं उसके पश्चात् भी भक्ति की धारा प्रवाहित होती रही। और जैन साहित्य मे तो उस धारा का कभी व्यतिक्रम हुआ ही नहीं। हिन्दी साहित्य के इतिहासो मे जैन भक्ति धारा का भी सम्यक अध्ययन होना आवश्यक है, और जैसे जैसे जैन कृतिकारों की रचनाएँ प्रकाशन मे आती जावेगी विद्वानों को इस धारा का अध्ययन करने मे और सुगमता होगी।

प्रस्तुत सग्रह कई दृष्टियों से महत्त्वपूर्ण है जैन तत्त्वदर्शन और मध्ययुग की सामान्य भक्ति-भावना का इन पदों मे अच्छा समन्वय मिलता है। आत्मा, परमात्मा, जीव, जगत, मोक्ष-निर्वाण जैसे गभीर विषयों का क्रमबद्ध विवेचन इन पदों के आधार पर किया जा सकता है इनके सम्बन्ध मे जैन दृष्टिकोण को इन पदों मे ढू ढना थोडा कठिन है। उपदेश और उद्बोधन की प्रधानता है। मध्य युग की एक महत्त्वपूर्ण विशेषता है, नाम स्मरण का महात्म्य। हमारे सग्रह मे अनेक पदों मे नाम स्मरण को भव सतति से मुक्त होने का साधन बताया गया है।—

"हो मन जिन जिन क्यों नहीं रटै" (पद २२०) मध्ययुग के प्राय सभी सप्रदायों मे भक्ति के इस प्रकार की बडी महिमा है। प्रभु और महापुरुषों का गुणगान भी भक्ति का महत्त्वपूर्ण प्रकार है। अनेक पदों मे 'नेमि के जीवन का भावोच्छ्वास पूर्ण शब्दों मे वर्णन किया गया है। 'राजुल' के वियोग और नेमि के "मुक्ति वधू" मे निमग्न होने के वर्णनों मे शात और उदासीनता दोनों का बडा ही समवेदनात्मक चित्रण हुआ है (पद ३६)।

अनेक प्रसार के कष्ट सहकर तप करने की अपेक्षा शुद्ध मन से प्रभु का स्मरण हृदय को पवित्र कर देता है और परम पद की प्राप्ति का यह सुगम साधन है— यह भाव हिंदी के भक्त कवियों की रचनाओं का अत्यन्त प्रिय भाव है। जैन भक्तों ने भी बार बार इसका उल्लेख किया है —

प्रभु के चरन कमल रमि रहिए।

सकल चकधर-चरन प्रमुख सुख जो मन वछित चाहिये।

विषयों को त्याग करने तथा उनके न त्यागने से भव जाल में पड़कर दुःख भोगने की यातनाओं का भक्ति—साहित्य में प्रायः उल्लेख मिलता है। जैन कवियों के पद भी इसके अपवाद नहीं है। संक्षेप में भक्तिकाल की समस्त प्रवृत्तियाँ न्यूनाधिक रूप में इन पदों में मिलती है।

सगृहीत पदों में भक्ति धारा के वैष्णव कवियों के समान यथार्थ सरसता नहीं मिलती किन्तु इनमें कवि-कल्पना एवं मन को प्रसन्न करने वाले अभ्युयुक्त वर्णनों का अभाव नहीं है। भावधारा और भाषा की दृष्टि से भी इस साहित्य का अध्ययन होना चाहिये। आशा है प्रस्तुत संग्रह जैन भक्तिधारा के अध्ययन में सहायक सिद्ध होगा।

डा० रामसिंह तोमर

दिनांक १८-११-६१

प्रस्तावना

काव्य रूप एव भाव धारा की दृष्टि से जैन कवियों की अपभ्र श एव हिन्दी कृतियों का स्थान बहुत महत्त्वपूर्ण है। काव्य के इन विभिन्न रूपों में प्रबन्ध काव्य, चरित, पुराण, कथा, रासो, धमाल, बारहमासा, हिण्डोलना, बावनी, सतसई, वेलि, फागु आदि के नाम उल्लेखनीय हैं। स्वयम्भू, पुष्पदन्त, धनपाल, वीर, नयनन्दि, धवल आदि कवियों की अपभ्र श कृतिया किसी भी भाषा की उच्चस्तरीय कृतियों की तुलना में रखी जा सकती हैं। इसी तरह रल्ह, सधारु, ब्रह्म जिनदास, कुमुदचन्द्र, बनारसीदास, आनन्दघन, भूधरदास आदि हिन्दी कवियों की रचनायें भी अनेक विशेषताओं से परिपूर्ण हैं। काव्य के विभिन्न अ गों में निबद्ध रचनाओ के अतिरिक्त जैन कवियो ने कबीर, मीरा, सूरदास, तुलसी के समान पद साहित्य भी प्रचुर मात्रा में लिखा है जिनके प्रकाशन की आवश्यकता है। दो हजार से अधिक पद तो हमारे सग्रह में है और इनसे भी दुगने पदों का अभी और सकलन किया जा सकता है।

गीति काव्य की परम्परा

प्राकृत साहित्य में गीतों की परम्परा निश्चित रूप से उपलब्ध होती है। न केवल गीतों की परम्परा मिलती है वरन् शास्त्रों के वर्गीकरण में भी गेय पदों को स्थान मिला है। इसी तरह अपभ्र श में भी गीतो की

प्रारम्भिक रूप ऐसा स्पष्ट रूप से दृष्टिगोचर होती है। पज्झटिका घत्ता, रड्डा तोटक दोधक चौपाई दुवई आदि छन्द गीति काव्य में मुख्यतः प्रयुक्त हुए हैं। स्वयंभू एवं पुष्पदन्त ने पउमचरिउ रिट्ठणेमिचरिउ एवं महापुराण आदि जो काव्य लिखे हैं उनमें गीति काव्य के लक्षण मिलते हैं। पुष्पदन्त ने श्रीकृष्ण के बालजीवन का जो वर्णन किया है वह सूरदास के वर्णन से साम्य है। स्वयम्भू के पउमचरिउ में से एक गीतितत्त्व से युक्त वर्णन देखिये—

सुणहु गयणग्गालग्गपय
(ग—रे—ग—ग—ग म नि—नि—नि—रे—रे—नि धा)
अमर-मर्यइ विम्मूढ-मइ।
(म—म—ग—म—म—धा—रे—नी रे—धा—रे—नी—म धा)
पवर-सरीर पलम्ब-भुअ
(प—स—रे—म—ग—ग—म—म—नि—नि—रे नि—धा)
लहु पईसइ पवण-सुउ
(म—म—गा—मा—गा म—धा—रे—नी—धा—रे—मी—म—धा)

(सुर वधुओं के लिये आनन्ददायक राव राव सुख भार उठाने में समर्थ प्रबल शरीर प्रलम्ब बाहु हनुमान ने लंका नगरी में प्रवेश किया। *

इसी तरह पुष्पदन्त का भी एक पद देखिये—
धूलीधूसरेण वर-मुक्क-सरेण तिणा मुरारिणा।
कीला-रस वसेण गोवालय गोवीहियय-हारिणा।

---

* देखिये— ज्ञानपीठ काशी द्वारा प्रकाशित— भाग १ — पृष्ठ ११०

रेगतेण रमत रमतें मथउ घरिउ भमंतु अणतें ।
मटीरउ तोडिवि आवहिउ
अद्धविरोलिउ दहिउ पलोहिउ ।
का वि गोवि गोविन्दहु लग्गी
एण महारी मथणि भग्गी ।
एयहि मोल्लु देउ आलिंगणु,
ण तो मा मोल्लहु मे मगणु ।

उक्त पद का हिन्दी अनुवाद महापडित राहुल ने निम्न शब्दों में किया है—

धूली धूसरेंहि वर मुक्त शरेहिं तेहि मुरारिहिं ।
क्रीडा-रस वशेहिं गोपालक-गोपी हृदयहारिहिं ।
रेगतेहि रमत रमते, पथश्र घरिउ भ्रमत अनते ।
मटीरउ तोडिय आ वहिउ अर्ध विलोलिय दधिम पलौहिउ ।
कोई गोपि गोविंदहिं लागी, इनहि हमारी मेथनि भोगी
एतह मोल देउ आलिंगन, ना तो न आवहु मम आगन ।

हिन्दी के विकास के साथ साथ इस भाषा में सगीत प्रधान रचनायें लिखी जाने लगी । जैन कवियों ने प्रारम्भ में छोटी छोटी रचनायें लिख कर हिन्दी साहित्य को विकसित होने में पूर्ण सहयोग दिया । हिन्दी में सर्व प्रथम पद की उत्पत्ति कब हुई, अभी खोज का विषय है । वैसे पदों के प्रधान रचयिता कबीर, मीरा, सूरदास, तुलसीदास आदि माने जाते हैं । ये सब भक्त कवि थे इसलिये अपनी रचनायें गाकर सुनाया करते थे । पद विभिन्न छन्दों से मुक्त होते हैं और उन्हें राग रागनियो में गाया जाता

है इसलिये सभी हिन्दी कवियों ने विभिन्न राग वाले पदों का अधिक निबद्ध किया। इनसे इन पदों का इतना अधिक प्रचार हुआ कि कबीर मीरा एवं सूर के पद घर घर में गाये जाने लगे।

जैन कवियों ने भी हिन्दी में पद रचना करना बहुत पहिले से प्रारम्भ कर दिया था क्योंकि वैराग्य एवं भक्ति का उपदेश देने में ये पद बहुत सहायक सिद्ध हुये हैं। इसके अतिरिक्त जैन शास्त्र सभाओं में शास्त्र प्रवचन के पश्चात् पद एवं भजन बोलने की प्रथा सैकड़ों वर्षों से चल रही है इसलिये भी जनता इन पदों की रचना में अत्यधिक रुचि रखती आ रही है। राजस्थान के सम्पूर्ण भण्डारों की एवं विशेषतः आमा- बाका ईडर आदि के शास्त्र भण्डारों की पूरी छानबीन न होने के कारण अभी सबसे प्रथम कवि का नाम तो नहीं लिया जा सकता लेकिन इतना अवश्य है कि १५ वीं शताब्दी में हिन्दी पदों की रचना सामान्य बात हो गई थी। १५ वीं शताब्दी के प्रमुख सन्त सकलकीर्ति द्वारा रचित एक पद देखिये—

तुम बीलमो नेम जी दोय घरीया
जादव वंश वर ब्याहन आये उग्रसेन की लाडलीया।
राजमती विनती कर जोरै नेम मनाय मानत न हीया।
राजमती छलीमन तु बोले गीरनार भूधर ध्यान धरीया।
सकलकीर्ति प्रभु दया धारी करयो भीख अगाप घरीया।[1]

सकलकीर्ति के पश्चात् ब्रह्म जिनदास के पद भी मिलते हैं।

[1] आमेर शास्त्र भण्डार गुटका संख्या २ — पत्र संख्या ६१

आदिनाथ के स्तवन के रूप में लिखा हुआ इनका एक पद बहुत सुन्दर एव परिष्कृत भाषा में है। इसी तरह १६ वीं शताब्दी में होने वाले छीहल, पूनो, बूचराज, आदि कवियों के पद भी उल्लेखनीय हैं। प्रस्तुत सग्रह में हमने सवत् १६०० से लेकर १६०० तक होने वाले कवियों के पदो का सग्रह किया है। वैसे तो इन ३०० वर्षों में सैकड़ों ही जैन कवि हुये हैं जिन्होने हिन्दी में पद साहित्य लिखा है। अभी हमने राजस्थान के शास्त्र भण्डारों की ग्र थ सूची चतुर्थ भाग [1] में जिन ग्र थों की सूची दी है उनमें २४० से भी अधिक जैन कवियो के पद उपलब्ध हुये हैं किन्तु पद सग्रह में जिन कवियों के पदों का सकलन किया गया है वे अपने युग के प्रतिनिधि कवि हैं। इन कवियो ने देश में आध्यात्मिक एव साहित्यिक चेतना को जाग्रत किया था और उसके प्रचार में अपना पूरा योग दिया था। १७वी शताब्दी में और इसके पश्चात् हिन्दी जैन साहित्य में अध्यात्मवाद की जो लहर दौड गयी थी इस लहर के प्रमुख प्रवर्तक हैं कविवर रूपचन्द एव बनारसीदास। इन दोनों के साहित्य ने समाज में जादू का कार्य किया। इनके पश्चात् होने वाले अधिकाश कवियों ने अध्यात्म एव भक्ति धारा में अपने पद साहित्य को प्रवाहित किया। भक्ति एव अध्यात्म का यह क्रम १६वीं शताब्दी तक उसी रूप में अथवा कुछ २ रूप परिवर्तन के साथ चलता रहा।

[1] श्री महावीरजी क्षेत्र के जैन साहित्य शोध सस्थान की ओर से प्रकाशित

पदों का विषय वर्गीकरण

जैन कवियों ने पदों की रचना मुख्यतः जीवात्मा को जाग्रत रखने तथा उसे कुमार्ग से हटा कर सुमार्ग में लगाने के लिये की है। कवि पहले अपने जीवन को सुधारता है इसलिये बहुत से पद वह अपने को सम्बोधित करते हुये लिखता है और फिर वह यह भी चाहता है कि संसार के प्राणी भी उसी का अनुसरण करें। उसे भगवद् भक्ति के लिए प्रेरित इसी उद्देश्य से करता है कि उसके अवलंबन से उसे सुमार्ग मिल जावे तथा उसके शुद्धोपयोग प्रकट हो सके। यह तो वह स्वयं मानता है कि मुक्तात्मा न तो किसी को कुछ दे सकते हैं और न किसी से कुछ ले ही सकते हैं फिर भी प्रत्येक जैन कवियों ने परमात्मा की भक्ति में पर्याप्त संख्या में पद लिखे हैं। यद्यपि वे सगुण एवं निर्गुण के चक्कर में नहीं पड़े हैं। क्योंकि उनका जो रूप वे मानते हैं वही है। तीर्थंकर अवस्था में मन व उनके अनेकों वैभवों की कल्पना की है फिर भी उन्हें शरीराश्रित कह कर अधिक महत्व नहीं दिया है। इन पदों में तन्मयता संगीतात्मकता एवं भावप्रवणता इतनी अधिक है कि उन्हें सुनकर पाठकों का प्रभावित होना स्वाभाविक है। पदों के पढ़ने अथवा सुनने से मनुष्य को आत्मिक सुख का अनुभव होता है। उसे अपने किये हुये कार्यों की आलोचना एवं भविष्य में त्यागमय जीवन व्यतीत करने के लिए प्रेरणा मिलती है। सामान्य रूप से इन पदों का निम्न प्रकार से वर्गीकरण किया जा सकता है:—

१– भक्तिपरक पद

२– आध्यात्मिक पद

३– दार्शनिक एवं सैद्धान्तिक पद

४– शृंगार एवं विरहात्मक पद

५– समाज चित्रण वाले पद

इन का संक्षिप्त परिचय निम्न रूप से दिया जा सकता है —

भक्तिपरक पद

जैन कवियों ने भक्तिपरक पद खूब लिखे हैं। इन कवियो ने तीर्थंकरो की स्तुति की है जिनकी महिमा वचनातीत है। संसार का यह प्राणी उस प्रभु के विविध रूप देखता है लेकिन उनका यह देखना ऐसा ही है जैसे अन्धे पुरुष अपने मत की पुष्टि के लिए हाथी की विभिन्न प्रकार की कल्पना करके झगड़ने लगते हैं... ....

विविध रूप तव रूप निरुपत, बहुतै जुगति बनाई।
कलपि कलपि गज रूप अन्ध ज्यौं झगरत मत समुदाई।'

कविवर रूपचन्द

कवि बुधजन इतना ही कह सके हैं कि जिनकी महिमा को इन्द्रादिक भी नही पा सकते उनके गुनगान का वह कैसे पार पा सकता है।

प्रभु तेरी महिमा वरणी न जाई।
इन्द्रादिक सब तुम गुण गावत, मैं कछु पार न पाई॥

कविवर रूपचंद ने एक दूसरे पद में प्रभु-मुख का वर्णन करते हुए लिखा है उस मुख की किससे उपमा दी जासकती है वह अपने समान अकेला ही

है चन्द्रमा और कमल दोनों ही दोषों से युक्त हैं उनके समान प्रभु मुख कैसे कहा जा सकता है। चन्द्रमा के लिये कवि कहता है कि वह क्षीण एवं कलंक सहित है कभी घटता है कभी बढ़ता है इसी तरह कमल भी कीचड़ से युक्त है कभी खिल जाता है तो कभी बन्द हो जाता है।

> प्रभु मुख की उपमा किहि दीजै।
> ससि अरु कमल दोष जुत दूषित
> तिनकी यह सरभरि क्यों कीजै॥
> वह जड़ रूप सदाय कलंकित
> कबहू बढ़ै कबहू छिन छीजै।
> यह पुनि जड़ पंकज रज रंजित
> सकुचे बिगसै अरु हिम भीजै॥

बनारसीदास ने प्रभु की स्तुति करते हुए कहा है कि वह देवों का भी देव है। जिसके चरणों में इन्द्रादिक देव झुकते हैं तथा जो स्वयं मुक्ति को प्राप्त हुआ है जिसको न क्षुधा लगती है और न प्यास लगती है जो न भय से व्याप्त है और न इन्द्रियों के पराधीन है। जन्म मरण एवं जरा की बाधा से जो रहित हो गये हैं। जिसके न विषाद है और न विस्मय है तथा न आठ प्रकार का मद है। जो राग मोह एवं विरोध से रहित हैं। न जिसको शारीरिक व्याधियां सताती हैं और चिन्ता जिसके पास भी नहीं आ सकती है —

> जगत में सो देवन को देव।
> जासु चरन परसै इन्द्रादिक होय मुकति स्वयमेव॥१॥

जो न छुधित न तृषित न भयाकुल, इन्द्री विषय न वेव ।
जन्म न होय जरा नहिं व्यापै, मिटी मरन की टेव ॥ २ ॥
जाकै नहि विषाद नहि विस्मय, नहिं आठों अहमेव ।
राग विरोध मोह नहि जाकें, नहि निद्रा परसेव ॥ ३ ॥
नहि तन रोग न श्रम नही चिंता, दोष अटारह भेव ।
मिटे सहज जाके ता प्रभु की, करत 'बनारसि' सेव ॥ ४ ॥

'भक्त भगवान से मुक्ति चाहता है',—यही उसका अन्तिम लक्ष्य है। लेकिन बार बार याचना करने के पश्चात् भी जब उसे कुछ नहीं मिलता है तो भक्त प्रभु को बडे ही सुन्दर शब्दों में उलाहना देता हुआ कहता है कि वे 'दीन दयाल' कहलाते हैं। स्वयं तो मोक्ष में विराजमान हैं तथा उनके भक्त इसी संसार-जाल में फंस रहे हैं। तीनो काल भक्त प्रभु का स्मरण करता है लेकिन फिर भी वे महाप्रभु उसे कुछ नही देते हैं। भक्त एवं प्रभु के इस संवाद को स्वयं कवि 'द्यानतराय' के शब्दों म पढिये —

तुम प्रभु कहियत दीन दयाल ।
आपन जाय मुकति में बैठे, हम जु रुलत जग जाल ॥
तुमरो नाम जपें हम नीके, मन वच तीनों काल ।
तुम तो हमको कछु देत नहिं, हमरो कौन हवाल ॥

अन्त में कवि फिर यही याचना करते हुये लिखता है —
'द्यानत' एक बार प्रभु जगतैं, हमको लेहु निकाल ।
'जगतराम' ने भी प्रभु से अपने चरणों के समीप रखने की प्रार्थना

की है :—

> नयो अनुग्रह अब मुझ ऊपर मेटो भव उरझेरा।
> जगतराम कर जोड़ बीनवै राखो चरनन चेरा॥

लेकिन कवि दौलतराम ने स्पष्ट शब्दों में भव पीर को हरने की भावना की है। उन्होंने कहा है "मैं दुख तपित दयामृत सागर लखि आयो तुम तीर, तुम परमेश मोक्ष मग दर्शक मोह दवानल नीर॥

आध्यात्मिक पद

ए रूपचन्द बनारसीदास जगतराम भूधरदास द्यानतराय एवं बुधजन आदि कुछ ऐसे कवि हैं जिनके अधिकांश पद किसी न किसी रूप में अध्यात्म विषय से ओत-प्रोत है। ये कविगण आत्मा एवं परमात्मा के गुणगान में ऐसे लगे हुये हैं कि उनका प्रत्येक शब्द आध्यात्मिकता की छाप लेकर निकला है। ऐसे आध्यात्मिक पदों को पढ़ने से हृदय को शान्ति मिलती है एवं आत्म-सुख का अनुभव होने लगता है।

आत्मा की परिभाषा बतलाते हुये जगतराम ने कहा है कि आत्मा न गोरा है न काला है वह तो ज्ञानदर्शन मय चिदानन्द स्वरूप है तथा वह सभी से भिन्न है —

> नहिं गोरो नहिं कारो चेतन अपनो रूप निहारो।
> दर्शन ज्ञान मई चिन्मूरत सकल करम ते न्यारो रे॥

द्यानतराय ने दर्पण के समान चमकती हुई आत्म ज्योति को

जानने के लिये कहा है। यह 'आतम ज्योति' सभी को प्रकाशित करती है-

जैसी उज्वल आरसी रे तैसी आतम जोत।
काया करमनसौं जुदी रे, सबको करै उदोत ॥

आत्मा का रूप अनोखा है तथा वह प्रत्येक के हृदय में निवास करता है वह दर्शन ज्ञानमय है तथा जिसकी उपमा तीनो लोकों के किसी पदाथ से नहीं दी जा सकती है

आतम रूप अनुपम है घट माहि विराजै।
केवल दर्शन ज्ञान में थिरता पद छाजै हो।
उपमा को तिहु लोक में, कोउ वस्तु न राजै हो ॥

'कवि द्यानतराय' ने आत्मा को पहिचान करके ही कहा है कि सिद्धक्षेत्र में विराजमान मुक्तात्मा का स्वरूप हमने भली प्रकार जान लिया है —

अब हम आतम को पहिचाना
जैसे सिद्ध क्षेत्र में राजै, तैसा घट में जाना

'कवि बुधजन' ने भी आत्मा को देखने की घोषणा करदी है। उनके अनुसार आत्मा रूप, रस, गध, स्पर्श से रहित है तथा ज्ञान दर्शन मय है। जो नित्य निरजन है। जिसके न क्रोध है न माया है एव न लोभ न मान है।

अब हम देखा आतम राप।
रूप परस रस गध न जामें, ज्ञान दरश रस माना।

जिय निरञ्जन जाके नाहीं क्रोध लोभ छल माया ॥

कवि भागचन्द ने तो स्पष्ट शब्दों में कहा है कि जब आत्मा की झलक मिल जाती है तब और कुछ भी अच्छा नहीं लगता। आत्मानुभव के आगे सब नीरस लगने लगता है तथा इन्द्रियों के विषय अच्छे नहीं लगते हैं। गोष्ठी एवं कथा में कोई उत्साह तथा जड़ पदार्थों से कोई प्रेम नहीं रहता —

> जब आतम अनुभव आवै तब और कछु ना सुहावै।
> रस नीरस हो जात ततछिन अच्छ विषय नहीं भावै ॥
> गोष्ठी कथा कुतूहल विघटै पुद्गल प्रीति नशावै ॥
> राग दोष जुग चपल पक्षयुत मनपक्षी मर जावै।
> ज्ञानानन्द सुधारस उमगै घट अन्तर न समावै।
> भागचन्द ऐसे अनुभव को हाथ जोरि सिर नावै ॥

आध्यात्मिकता की उत्कृष्ट-सीमा का नाम रहस्यवाद है इस समय के कुछ पदों में तो अध्यात्म अपनी चरम सीमा पर पहुँच गया है ऐसे कुछ पद रहस्यवाद की कोटि में रखे जा सकते हैं। कविवर बुधजन ने होली के प्रसंग को लेकर अध्यात्मवाद का अच्छा चित्र उतारा है। आज आत्मा में होली खेलने की उत्कट इच्छा हो रही है:— एक ओर हर्षित होकर आत्माराम आये दूसरी ओर 'सुबुद्धि' रूपी नारी आयी। दोनों ने स्वोपलाभ पथ अपनी काया जाकर 'ज्ञान' रूपी गुलाल से उनकी झोली भर दी। सम्यक्त्व रूपी केशर का रंग बनाया तथा चारित्र की पिचकारी छूटी गयी। जो भी बुद्धिमान व्यक्ति आत्मा की इस होली को देखने आये वे भी भीग गये —

निजपुर में आज मची होरी।

उमगि चिदानदजी इत आये, इत आई सुमती गोरी ॥
लोकलाज कुलकाणि गमाई, ज्ञान गुलाल भरी झोरी ।
समकित केसर रंग बनायो, चारित की पिकी छोरी ॥
देखन आये 'बुधजन' भीगे, निरख्यो ख्याल अनोखोरी ॥

'भूधरदासजी' ने भी उक्त भावो को ही निम्न पद में व्यक्त किया है —

होरी खेलूंगी घर आये चिदानन्द ॥
शिशर मिथ्यात गई अब, आइ काल की लब्धि बसंत ।
पीय संग खेलनि कौं, हम सइये तरसी काल अनन्त ॥
भाग जग्यो अब फाग रचानौं, आयो विरह को अंत ।
सरधा गागरि में रुचि रूपी केसर घोरि तुरन्त ।
आनन्द नीर उमग पिचकारी छोड़ूंगी नीकी भंत ॥

'बख्तराम' आत्मा को समझा रहे हैं कि उसे 'कुमति' रूपी पर-नारी से स्नेह नहीं करना चाहिये । 'सुमति' नामक सुलक्षणा स्त्री से तो वह आत्मा प्रेम नही करता है, इतना ही नही उस श्रेष्ठ नारी से रुष्ट भी रहता है —

चेतन बरज्यो न मानै उरझ्यो कुमति पर नारी सों ।
सुमति सी सुखिया सों नेह न जोरत,
रुसि रह्यो वर नारिसों ॥

इस प्रकार इन कवियोंने आत्मा का स्पष्ट रूप से वर्णन किया हैं

जो किसी भी पाठक के सहज ही समझ में आ सकता है आत्मा में परमात्मा बनने की शक्ति है लेकिन वह अपनी शक्ति को पहिचान नहीं पाता है। इसके लिये इन कवियों ने अपनी आत्मा को सम्बोधित करते हुए भी कितने ही पद लिखे हैं। कवि 'रूपचन्द' ने एक पद में कहा है – हे जीव! तू स्वयं ही में क्यों उदास हो रहा है? तू अपनी स्वाभाविक शक्तियों को सम्भाल करके मोक्ष क्यों नहीं चला जाता? एक दूसरे पद में उसी कवि ने लिखा है कि हे जीव! तू पुद्गल से क्यों स्नेह करता रहा है। अपने विवेक को भूलकर अपना र ही करता रहता है —

चेतन काहे कौं अरसात।
सहज सकित सम्हारि आपनी काहे न शिवपुर जात।

• • • • • •

चेतन परस्यौं प्रेम बद्यो।
स्वपर विवेक बिना भ्रम भूल्यो मैं मैं करत रह्यो।

एक अन्य पद में भी इस जीवात्मा को कवि गवार कह कर सम्बोधित करता है तथा उसे शक्ति सम्हाल कर कुछ उद्यम करने के लिये प्रोत्साहित करता है।

बनारसीदास जी ने इस जीवात्मा को मौंदू कह कर सम्बोधित किया है तथा उसे हृदय की आंखें न खोलने के लिये काफी फटकारा है। वे कहते हैं कि यथार्थ में जो वस्तु इन आंखों से देखी जाती है उससे इस जीव का कुछ भी सम्बन्ध नहीं।

भौंदू भाई देखि हिये की आँखें ।
जो करषै अपनी सुख संपति, भ्रम की संपति नाखैं ॥

* * * * * *

भौंदू भाई समुझ सबद यह मेरा ।
जो तू देखैं इन आंखिन सों, तामैं कछू न तेरा ।

बनारसीदास आगे चल कर कहते हैं कि यह जीव सदा अकेला है । यह जो कुटुंब उसे दिखाई देता है वह तो नदी नाव के संयोग के समान है । यह सारा संसार ही असार है तथा जुगनू के खेल (चमक) के समान है । सुख सम्पत्ति तथा सुन्दर शरीर जल के बुदबुदे के समान थोडे समय में नष्ट हो जाता है ।

चेतन तू तिहुँकाल अकेला ।
नदी नाव संजोग मिले, ज्यों त्यों कुटंब का मेला ।
यह संसार असार रूप सब, जो पेखन खेला ।
सुख सम्पत्ति शरीर जल बुदबुद, विनसत नाहीं वेला ।

लेकिन जगतराम ने इसे भौंदू न कहकर सयाना कहा है तथा प्यार दुलार के साथ जड चेतन का सम्बन्ध बतलाया है ।

रे जिय कौन सयाने कीना ।
पुदगल के रस भीना ॥
तुम चेतन ये जड जु विचारा ।
काम भया अति हीना ॥
तेरे गुन दरसन ग्यानादिक ।
मूरति रहे प्रवीना ॥

आत्मा की वास्तविक स्थिति बतला कर तथा भला बुरा कहने के पश्चात् उसे मुक्त करने के लिये संसार का स्वरूप समझाते हैं तथा कहते हैं कि यह संसार घन की छाया के समान है। स्त्री पुत्र मित्र शरीर एवं सम्पत्ति तो कर्मोदय से एकत्रित हो गये हैं। इन्द्रियों के विषय उस बिजली की चमक के समान हैं जो देखते २ नष्ट हो जाती है।

जगत सब दीखत घन की छाया।
पुत्र कलत्र मित्र तन सम्पत्ति
उदय पुग्गल जुरि आया।
इन्द्रिय विषय लहरि तड़ता है
देखत जाय विलाया ॥

कवि फिर समझाते हैं कि यह संसार तो असार है ही पर इस प्रकार का (मानव) जन्म भी बार २ नहीं मिलता। यह मनुष्य भव बड़ी ही कठिनता से प्राप्त हुआ है और यह चिन्तामणि रत्न के समान है जिसको यह अज्ञानी जीव (कौवे के उड़ाने हेतु) सागर में डाल देता है। इसी तरह यह उस अमृत के समान है जिसे यह प्राणी पीने के बजाय पाव धोने के काम में लेता है। कवि द्यानतराय ने उक्त भावों को सुन्दर शब्दों में लिखा है उन्हें पढ़िये —

नहिं ऐसो जनम बारम्बार।
कठिन कठिन लह्यो मानुष भव
विषय तजि मतिहार।
पाय चिन्तामन रतन शठ
छिपत उदधि मझार ॥

पाय अमृत पाव धोवे,
कहत सुगुरु पुकार ।
तजो विषय कषाय 'द्यानत'
ज्यों लहो भव पार ॥

और जब इस प्राणी को आत्मा, परमात्मा, संसार तथा मनुष्य जन्म के बारे में इतना समझाते हैं तो उसमें कुछ सुबुद्धि आती है और वह अपने किये हुये कार्यों की आलोचना करने लगता है तथा उसे अनुभव होने लगता है कि उसने यह मनुष्य भव व्यर्थ ही में खो दिया। जप, तप, व्रत आदि कुछ भी नहीं किये और न कुछ भला काम ही किया। कृपण होकर दिन प्रतिदिन अधिक जोड़ने में ही लगा रहा, जरा भी दान नहीं किया। कुटिल पुरुषों की संगति को अच्छा समझा तथा साधुओं की संगति से दूर रहना ही ठीक समझा। कुमुदचन्द्र के शब्दों में पढ़िये :—

मैं तो नरभव बाधि गमायो ॥
न कियो तप जप व्रत विधि सुन्दर
काम भलो न कमायो ॥

*   *   *   *   *   *

कृपण भयो कछु दान न दीनो
दिन दिन दाम मिलायो ।

*   *   *   *   *   *

विटल कुटिल शठ संगति बैठो,
साधु निकट विघटायो

वह फिर सोचता है कि यह जन्म बेकार ही चला गया। धर्म अर्थ एवं काम इन तीनों में से एक को भी उसने प्राप्त नहीं किया।

जनमु अकारथ ही जु गयौ।
धरम अरथ काम पद तीनौं
एको करि न लयौ ॥

पश्चात्ताप के अतिरिक्त उसे यह दुःख होता है कि वह अपने वास्तविक घर कभी न आया। दौलतराम कहते हैं कि दूसरों के घर फिरते हुये बहुत दिन बीत गये और वहां वह अनेक नामों से सम्बोधित होता रहा। दूसरे के स्थान को ही अपना मान उसके साथ ही लिपटा रहा है वह अपनी भूल स्वीकार कर रहा है लेकिन अब पश्चात्ताप करने से क्या प्रयोजन। ऐसे प्राणियों के लिये दौलतराम ने कहा है कि अब भी विषयों को छोड़कर भगवान की वाणी को सुनो और उस पर आचरण करो —

हम तो कबहुं न निज घर आये।
पर घर फिरत बहुत दिन बीते
नाम अनेक धराये।
पर पद निज पद मान मगन ह्वै
पर परणति लिपटाये ॥

• • • • • •

यह बहु भूल भई हमरी फिर
कहा काज पछताये।
दौल तजो अजहूं विषयन को
सतगुरु वचन सुनाये ॥

शृंगार एवं विरहात्मक पद

जैन साहित्य में ही नहीं किन्तु सम्पूर्ण भारतीय साहित्य में नेमिनाथ का तोरण द्वार पर आकर वैराग्य धारण कर लेने की अकेली घटना है। इसी घटना को लेकर जैन कवियों ने पर्याप्त साहित्य लिखा है। इस सम्बन्ध में उनके कुछ पद भी काफी संख्या में मिलते हैं जिनमें से थोड़े पदों का प्रस्तुत संग्रह में संकलन किया गया है। यद्यपि ये अधिकांश पद हैं किन्तु कहीं कहीं उनमें शृ गार रस का वर्णन भी मिलता है।

नेमिनाथ २२ वें तीर्थंकर थे। उनका विवाह उग्रसेन राजा की राजकुमारी राजुल से होना निश्चित हुआ था। जब नेमिनाथ तोरण द्वार पर आये तो राजप्रासाद के निकट एकत्रित बहुत से पशुओं को देखा। पूछने पर मालूम हुआ कि सभी पशु बरातियों के भोजन के लिए लाये गये हैं। परम अहिंसक नेमिनाथ यह हिंसा कार्य कब सहने वाले थे। वे संसार से उदासीन हो गये और वैराग्य धारण करके पास ही में जो गिरिनार पर्वत था उस पर जाकर तपस्या करने लगे। नेमिनाथ के तोरण द्वार पर आकर वैराग्य धारण कर लेने के पश्चात् जब राजुल के माता पिता ने अन्य राजकुमार के साथ उसका विवाह करने का प्रस्ताव रखा तो राजुल ने प्रस्ताव को स्वीकार नहीं किया।

राजुल नेमि के विरह से संतप्त रहने लगी। पहिले तो उसे यही समझ में नहीं आया कि वे गिरिनार क्यों कर चले गये तथा किस प्रकार उसके पवित्र प्रेम को ठुकरा कर वैराग्य धारण कर लिया।

नेमि तुम कैसे चढ़े गिरिनारि।
कैसे बिराग धर्यो मन मोहन
प्रीत बिसारि हमारी।

उनकी दृष्टि में पशुओं की पुकार तो एक बहाना था वास्तव में तो उन्होने मुक्ति रूपी बधू को बरण करने के लिये राजुल जैसी कुमारी को छोड़ा था—

मन मोहन मंडप ते बोहरे
पशु पोकार बहाने।

* * * * *

रतन कीरति प्रभु छोरी राजुल
मुगति बधू बिरमाने॥

नेमि के विरह में राजुल को चन्दन एवं चन्द्रमा दोनों ही विपरीत स्वभाव दिखाते हैं। कोयल एवं पपीहा के सुन्दर बोल भी विरहाग्नि को मन्दकों वाले मालुम होते हैं इसलिए वह सखियों से नेमि से मिलाने की प्रार्थना करती है।

सखि को मिलावो नेमि नरिंदा।
ता बिन तन मन योवन रजत है
चारु चन्दन अरु चन्दा।
कानन भुवन मेरे जीया लागत
दुसह मदन को फंदा॥

* * * *

सखी री ? सावनि घटाई सतावे ।
रिम झिम बूंद वदरिया बरसत,
नेमि नेरे नहि आवे ।
कूजत कीर कोयला बोलत,
पपीया बचन न भावे ।

कवि शुभचन्द्र ने तो नेमिनाथ की सुधि लाने के लिए सखियों को उनके पास भेज भी दिया । वे जाकर राजुल की सुन्दरता एव उसके विरह की गाथा भी गाने लगी लेकिन सारा सन्देशा यों ही गया और अन्त में उन्हें निराश हो वापिस आना पड़ा—

कोन सखी सुध लावे श्याम की ।
कोन सखी सुध लावे ॥

*　　*　　*　　*

सब सखी मिल मनमोहन के ढिग ।
जाय कथा जु सुनावे ॥
सुनो प्रभु श्री 'कुमुदचन्द्र' के साहिब ।
कामिनी कुल क्यों लजावे ॥

विरह में राजुल इतनी अधिक पागल हो जाती है तथा वह अपनी सखियों से कहने लगती है कि अब तो नेमि के विना वह एक क्षण भी नही रह सकती । उनकी प्रीति को वह भुलाना चाहती है तथा क्षण क्षण में उसका शरीर शुष्क होता जाता है । उनके वियोग में न भूख लगती है और न प्यास । रात्रि को नींद भी नहीं आती है तथा उसका चिन्तन

करते करते ही समाप्त हो जाता है। कवि कुमुदचन्द्र के शब्दों में देखिये—

सखी री अबतो रह्यो नहिं जात।
प्राणनाथ की प्रीत न विसरत
छण छण छीजत जात (गात)।
नहिं न भूख नहीं तिसु लागत
घरहि घरहि मुरझात।

• • • •

नहिं नींद परती निशिवासर
होत बिसरत प्रात।

राजुल की इसी भावना को जगतराम ने इन्हीं शब्दों में लिखा है—

सखी री बिन देखे रह्यो न जाय।
ये री मोहि प्रभु को दरस कराय॥

राजुल नेमि से प्रार्थना करती है कि वे एक घड़ी के लिये ही घर आ जावे तथा प्रातः होते ही चाहे वे वैराग्य धारण कर लेवें। 'रत्नकीर्ति ने इस पद में राजुल की सम्पूर्ण इच्छाओं का निचोड़ कर रख दिया है—

नेमि तुम आओ घरिय घरे,
एक रयनि रही प्रातः पियारे।
बोहरी चारित्र धरे॥

'भूधरदास' ने भी नेमि के बिना राजुल का हृदय कितना गर्म रहता है इन्हीं भावों को अपने पद में व्यक्त किया है।

नेमि विना न रहै मेरो जियरा।
'भूधर' के प्रभु नेमि पिया बिन,
शीतल होय न राजुल हियरा।

जब किसी भी तरह नेमि प्रभु वैराग्य छोड़ कर राजुल की सुधि लेने नहीं आते हैं तब वह अपना सन्देशा उनके पास भेजती है तथा कहती है कि वे थोड़ी देर ही उसका इन्तजार करें क्योंकि वह भी उन्हीं के साथ तपस्या करने के लिये जाना चाहती है—

म्हारा नेम प्रभु सौं कहज्यो जी।
म्हे भी तप करवा सग चाला,
प्रभु घडियक उभा रहिज्यो जी॥

राजुल की प्रार्थना करते २ जब सारी आशायें टूट जाती हैं तब अपनी सखियों से उसी स्थान पर जहा नेमि प्रभु ध्यान कर रहे थे ले चलने की प्रार्थना करती है। बख्तराम ने राजुल के असीम हृदय को टटोल कर मानो यह पद लिखा है—उसका रसास्वादन स्वय पाठक करें—

सखी री जहा लै चल री।
अरी जहा नेमि धरत है ध्यान॥
उन बिन मोहि सुहात न पल। हू।
तलफत हैं मेरे प्राण॥

पुद्गल भ्रम तज लागत फीके।
नैक न भावत आन ॥
अब तो मन मेरो प्रभु ही में।
लाग्यो है चरन कमलान ॥
तारन तरन बिरद है जिनको।
यह कीनी परमान ॥
बख्तराम हमहू हैं तारोगे।
करुणा कर भगवान ॥

इस प्रकार राजुल नेमि का यह वर्णन अध्यात्म एवं वैराग्य के गुण गाने वाले साहित्य में अपना विशिष्ट स्थान रखता है।

दार्शनिक एवं सैद्धान्तिक पद

भक्ति एवं अध्यात्म के अतिरिक्त बहुत से पदों में दार्शनिक चर्चा की गयी है क्योंकि दर्शन का धर्म से घनिष्ठ सम्बन्ध है तथा धर्म की सत्यता दर्शन-शास्त्र द्वारा सिद्ध की जाती रही है। जैन दर्शन के अनुसार आत्मा अनादि है पुद्गल कर्मों के साथ रहने से इसे संसार का परि भ्रमण करना पड़ता है। किन्तु यदि इनसे छुटकारा मिल जावे तो फिर दुबारा शरीर धारण करने का कोई प्रश्न ही नहीं उठता। जैन दर्शन के मुख्य सिद्धान्तों को लेकर रचे हुये बहुत से पद इस संग्रह में मिलेंगे। अनेकान्त द्वारा वस्तु के स्वभाव सम्यक रीति से जाना जा सकता है। इसी का वर्णन करते हुये 'बुध कवि ने अनेकान्त के रहस्य को अपने पदों में समझाया है। आत्मा का वास्तविक ज्ञान होने के पश्चात्

इस जीवात्मा के जो विचार उत्पन्न होते हैं—उनको निम्न पद में देखियेः—

अब हम अमर भए न मरेंगे।
तन कारन मिथ्यात दियो तजि, क्यों करि देह धरेंगे ॥
उपजै मरे काल तैं प्रानी, तातै काल हरेंगे।
राग दोष जग बंध करत है, इनको नास करेंगे ॥
देह विनासी मैं अविनासी, भेद ज्ञान करेंगे।
नासी जासी हम थिरवासी, चोखे हो निखरेंगे ॥

'रूपचन्द ने–जीव का आत्मा से स्नेह लगाने का क्या फल होता है इसका आलंकारिक रीति से वर्णन किया है। जीवात्मा एकाकार हो जाता है तो वह अपने वास्तविक स्वरूप को भी प्राप्त कर लेता है।

चेतन सौं चेतन लौं लाई।
चेतन अपनु सु फुनि चेतन, चेतन सौं बनि आई।

* * * * * *

चेतन मौन बने अब चेतन, चेतन मौं चेवन ठहराई।
'रूपचन्द' चेतन भयो चेतन, चेतन गुन चेतनमति पाई ॥

और जब अत्मा का वास्तविक स्वरूप जान लिया जाता है तो वह प्राणी किसी का कुछ अहित करना नहीं चाहता। 'बनारसीदास' के शब्दों में इस रहस्य को समझिये :—

हम बैठे अपने मौन सौं।
दिन दस के मिहमान जगत जन, बोलि बिगारे कौन सौं।

* * * * * *

गै प्रमाद पाप गुन सम्पति को निकसैं निश्मौनमी।
सहज भाव सद गुरु की संगति सुरझे आवागोनमा ॥

'बनारसीदास' ने एक दूसरे प में जीव के विभिन्न रूपों के सम्बन्ध का वर्णन किया है। यह जीव जिस समय जिस रस में लिप्त हो जाता है वहा वह उसी रूप का बन जाता है। 'अस्ति' और 'नास्ति' तथा एक और अनेक रूपों वाला बनने में इसे कुछ भी समय नहीं लगता। लेकिन इतना होते हुये भी यह आत्मा जैसा का तैसा ही रहता है इसके वास्त विक रूप में कोई अन्तर नहीं आता —

मगन ह्वै आराधो साधो अलख पुरुष प्रभु ऐसा।
जहाँ जहाँ जस रस सा राचे तहाँ तहाँ तिन भेसा ॥

• • • • • •

नाही कहत होइ नाहीं सा है कहिये तो हैसा।
एक अनेक रूप है बरता कहाँ कहां लौ कैसा ॥

'तीर्थङ्करों' की वाणी को चार अनुयोगों में विभाजित किया जाता है। ये चारों वेदों के समान है। बनारसीदास ने इन चारों अनुयोगों का वेदों के रूप में वर्णन किया है —

तीर्थंकरादि महापुरुषनिकी जामे कथा सुहानी।
प्रथम वेद यह भेद जाय को सुनत होय अघ हानी ॥
जिनकी लोक अलोक नाम सुत न्यारौ मति सहनानी।
दुतिय वेद यह भेद सुनत होय मूरख हू सरधानी ॥

मुनि श्रावक आचार बतावत, तृतीय वेद यह टानी।
जीव अजीवादिक तत्वनि की, चतुरथ वेद कहानी॥

जैन कवि 'मोर मुकुट पीताम्बर सोहे गल वैजन्ती माल' के स्थान पर 'ता जोगी चित लावो मेरे' का उपदेश देते हैं। उसने योगी–'सयम' की डोरी बनाकर 'शील' की लगोटी बाध रखी है तथा उसमें सयम एव शील एकाकार होकर घुलमिल गये हैं। गले में ज्ञान के मणियों की माला पड़ी हुई है। इस पद की कुछ पक्तिया देखिये —

ता जोगी चित लावो मेरे बाला।
सयम डोरी शील लगोटी, घुल घुल गाठ लगाने मोरे बाला॥
ग्यान गुदड़िया गल बिच डाले, आसन दृढ जमावे।
'अलखनाथ' का चेला होकर, मोह का कान फड़ावे मोरे बाला॥
धर्म शुक्ल दोऊ मुद्रा डाले, कहत पार नही पावे मोरे बाला॥

एक दूसरे पद में 'दौलतराम' ने भगवान की मूर्त्ति का जो चित्र खींचा है उससे तीर्थकरों की ध्यान–मुद्रा एव उसीके समान बनी हुई मूर्त्तियों की स्पष्ट झलक मिल जाती है। भगवान ने हाथ पर हाथ रख कर 'स्थिर' आसन लगा रखा है तथा वे ससार के समस्त वैभव को धूलि के समान छोड़कर परमानन्द पद आत्मा का ध्यान कर रहे हैं —

देखो जी आदीश्वर स्वामी कैसा ध्यान लगाया है।
कर–ऊपर–कर सुभग विराजै आसन थिर ठहराया है।
जगत विभूति भूति सम तजि कर निजानन्द पद ध्याया है।

'सामाजिक वर्णन'

जैन कवियों ने अपने पदों में तत्कालीन समाज की अवस्था एवं रीति रिवाजों का कोई विशेष वर्णन नहीं किया है। वास्तव में उन्हें तो वैराग्य अध्यात्म एवं भक्ति की त्रिवेणी बहानी थी इसलिये वे अन्य विषयों की ओर ध्यान दे ही नहीं सके लेकिन फिर भी कहीं कहीं एक दो कवियों के पदों में तत्कालीन समाज का कुछ चित्रण मिलता है। बनारसीदास ने अपने एक पद– छिप गये पंच किसान हमारे में अपने समय के कृषक समाज का संक्षिप्त रूप में चित्र खींचा है।– जिससे पता चलता है कि किसानों के साथ अन्य लोग भी खेती कर लिया करते थे लेकिन खेती जब अच्छी नहीं होती थी तो वे किसानों को छोड़कर अलग हो जाया करते थे और फिर सरकार किसानों को पकड़ लिया करती थी और उन्हें सताया करती थी। इसको कवि के शब्दों में देखिये—

छिप गये पंच किसान हमारे ॥
बोयो बीज खेत गयो निरफल भर गये खार पनारे।
कपटी लोगों से साझा कर कर हुये आप बिचारे ॥
आप दिवाना गह गह बैठो लिख लिख कागद डारे।
बाकी निकसी पकरे मुकद्दम पांचो हो गये न्यारे ॥

बनारसीदास के बहुत कुछ बाद भाभी को लेकर ही पारीभाम ने भी एक ऐसा ही पद लिखा है जिसमें अप्रत्यक्ष रूप से वहां के प्रतिदिन के दुर्व्यवहार के कारण नगर में न रहना ही उत्तम समझा गया है।

इस नगरी में किस विधि रहना,
नित उट तलव लगावेरी रहैना।

इसी प्रकार अन्य कवियो के पदों में भी जहाँ तहाँ सामाजिक चित्रण मिलता है।

भाषा शैली एव कवित्व

भाषा इन कवियों की पद रचना का उद्देश्य वैराग्य एव अध्यात्म का अधिक से अधिक प्रचार करना था इसलिये ये पद भी जनता की सीधी सादी भाषा में लिखे गये। इन कवियों की किसी विशेष भाषा में दिलचस्पी नही थी किन्तु सम्वत् १६५० तक हिन्दी का काफी प्रचार हो चुका था तथा वही बोलचाल की भाषा बन गई थी इसलिये इन कवियों ने भी उसी भाषा में अपने पद लिखे। कुछ विद्वान कभी कभी जैन कवियों के भाषा का परिष्कृत न होने की शिकायत भी करते रहते हैं लेकिन यदि पदों की भाषा देखी जावे तो वह पूर्णत परिष्कृत भाषा है। इनके पदों में यद्यपि अपने अपने प्रदेशों की बोलियों का व्यवहार भी हो गया है। रत्नकीर्ति एव कुमुदचन्द्र बागड एव गुजरात प्रदेश में विहार करते थे इसलिये इनके पदों में कही कही गुजराती का प्रभाव भी आ गया है। इसी तरह रूपचन्द, बनारसीदास, भूधरदास, द्यानतराय, जगतराम आदि विद्वान आगरे के रहने वाले थे इसलिये इनके पदों में उस प्रदेश की बोली के शब्दों का प्रयोग हुआ है जो स्वाभाविक भी है। बनारसीदास ने अपने अर्द्धकथानक की भाषा को मध्य प्रदेश की बोली कहा है। इस प्रकार ये सभी पद बोल चाल की भाषा में लिखे हुये हैं,

हा उनमें कहीं कहीं गुजराती ब्रज एवं राजस्थानी का प्रभाव झलकता है। राजस्थानी भाषा के बोलचाल के शब्द जैसे कामण (१०४) पांडो (१०२ हीयो (१०) दरसण (११) मेहमी (२०३) उमा रहिज्यो (२ १) थाने(२०१) कोई करमी (२४) आदि कितने ही शब्दों का यत्र तत्र प्रयोग हुआ है इसी तरह नेह (२०५) जैहैं (८) जाके (१११) कितउ (१४४) किततें (२११) आदि ब्रज भाषा के शब्दों का कहीं कहीं प्रयोग मिलता है।

कुछ पदों पर पंजाबी भाषा का भी प्रभाव है। सर्वत्र की दा विभक्ति जोड़ कर हिन्दी के शब्दों को पंजाबी रूप देने की जो प्रथा मध्य युग में प्रचलित थी उसको जैन कवियों ने भी अच्छी तरह अपनाया। इसके कुछ उदाहरण नीचे दिये जाते हैं —

१ सुपनेदा संसार जन्या है इन्द्रजालदा मेला (३५८)

२ प्राणी में निस दिन ध्यावांदी यदि तू थांदी रहदी मन में
 तुझ बिन मधु और न दिसदा चित रहदा दरसण में (२२६)

३ इन करमों ते मेरा जीव डरदा हो (१६८)

४ हो मन मेरा तू धरम ने जांचदा।

शैली

जैन कवियों की वर्णन शैली अपनी ही एक शैली है। कबीर, मीरा सूरदास तुलसीदास नानक आदि सभी कवि साधु थे और साधु होकर आत्मा परमात्मा भगवद् भक्ति तथा जगत की असारता की बात कही

लेकिन इस संग्रह में आये हुये रत्नकीर्ति एवं कुमुदचन्द आनन्द घन, आदि को छोड़कर शेष सभी कवि गृहस्थ थे फिर भी जिस शैली में उन्होंने पद लिखे हैं वह सब साधुओं के कहने की शैली है। गृहस्थ होते हुये भी वे वैराग्य तथा आत्मानुभव में इतने मस्त हो गये थे कि पदों में उनकी आत्मा की पुकार ही व्यक्त होती थी। उन्होंने जो कुछ कहा है वह विना किसी लाग लपेट के तथा निर्भिक होकर कहा है। जगत को जो भक्ति एवं वैराग्य का उपदेश दिया है उसमें किंचित अयथार्थ नहीं है तथा वह आत्मा तक सीधी चोट करने वाला है। रूपचन्द, बनारसीदास, भूधरदास, द्यानतराय, छत्रदास तथा दौलतराम सभी संत कवि थे इनको किसी का डर नहीं था तथा वे गृहस्थ होते हुए भी साधु जीवन व्यतीत करने वाले थे। उन्होने कितने ही पद तो अपने को ही सम्बोधित करके कहे हैं। बनारसीदास ने 'मौंदू' शब्द का कितने ही पदों में प्रयोग किया है जो उनके स्वयं के लिये भी लागू होता था, क्योंकि उन्हें सदा ही जीवन में असफलताओं का सामना करना पड़ा। वे न तो पूर्ण व्यापारी बन सके और न साधु जीवन ही धारण कर सके। इस तरह जैन कवियों की वर्णन शैली में स्पष्टता एवं यथार्थता दिखाई देती है। उसमें न पांडित्य का प्रदर्शन है और न अलंकारों की भरमार। शब्दाडम्बरों से वह एक दम परे है उन्होंने गागर में सागर भरा है।

काव्यत्व—लेकिन वर्णन शैली सरल तथा पांडित्य प्रदर्शन से रहित होने पर भी इन पदों में काव्यत्व के दर्शन होते हैं। इन पदों के पढने से ऐसा मालूम नहीं होता कि ये कवि अनपढ थे और उन्होंने पद न लिखकर केवल तुकबन्दी कर दी है। सरल एवं बोलचाल के

शब्दों का प्रयोग करके भी उन्होंने पदों को काव्यत्व से वंचित नहीं रखा है। इन कवियों ने लोक प्रचलित भाषा के रूप का इस प्रकार प्रयोग किया है जिससे भाषा की स्वाभाविकता में किंचित भी कमी नहीं हुई है। उन्होंने प्रसाद एवं माधुर्य गुण युक्त पद-योजना पर अधिक ध्यान दिया है। किसी २ पद में तो एक ही शब्द का प्रयोग किया है लेकिन उसके अर्थ भिन्न भिन्न हैं। कुमुदचन्द्र का राजुल गेहे नेमि आय हरिवदनी के मन भाय (१०) तथा रूपचन्द का चेतन भी चेतन लौं लाई इसके सुन्दर उदाहरण हैं। प्रथम पद में हरि शब्द तथा दूसरे पद में 'चेतन' शब्द भिन्न भिन्न अर्थों में प्रयुक्त हुए हैं। कविता वह जीवन तत्व है जिसमें साधारण अनुभूति को भी असाधारण अभिव्यक्तीकरण का बल मिलता है तथा जिसमें भावना एवं कल्पना के मिश्रण में सरसता का सन्निवेश किया जाता है। जैन कवियों की इन पदों में अपनी आत्मानुभूति के आधार पर उनका सुन्दर शब्द विन्यास पदों को पूर्णता सरसता और कोमलता से सजा देता है।

पूववर्ती आचार्यों का प्रभाव

जैन अध्यात्म के प्रस्तुतकर्ता या कुन्दकुन्द उमास्वाति योगीन्द्र गुणभद्राचार्य अमृतचन्द्र शुभचन्द्र मुनिरामसिंह आदि विद्वान हो चुके हैं जिन्होंने भगवान महावीर के पश्चात् अध्यात्म की अबाधित धारा बहाई और यही कारण है कि इन के बाद होने वाले प्रायः सभी कवि उसके अनुगामी बने रहे और उन्होंने अपने साहित्य में वही उपदेश प्रचारित किया जो पूर्ववर्ती आचार्यों ने किया था। इन

आचार्यों ने आत्मा एव परमात्मा का जो रूप प्रस्तुत किया है उसमें सकीर्णता, कट्टरता तथा अन्य धर्मों के प्रति जरा भी विद्वेष की गन्ध नहीं मिलती । इनका लक्ष्य मानव मात्र को सन्मार्ग पर लगा कर उसके जीवन को उच्चस्तर पर उठाना था। सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान एव सम्यक्-चारित्र मोक्ष प्राप्ति का उपाय है। जीव आत्मा का ही नामान्तर है जो आचार्य नेमिचन्द्र के शब्दों में उपयोगमय है अमूर्त है, कर्त्ता है, स्वदेहप्रमाण है, भोक्ता है, ससारी है, सिद्ध एव स्वभाव से उर्ध्वगामी है। आत्मा देह से भिन्न है किन्तु इसी देह में रहता है। इसी की अनुभूति से कर्मों का क्षय होता है[1]। योगीन्द्र के शब्दों में यह आत्मा अक्षय निरजन एव ज्ञानमय समचित्त में है[2]।

पाहुड दोहा में मुनि रामसिंह ने कहा कि जिसने आत्मज्ञान रूपी माणिक्य को पा लिया वह ससार के जजाल से पृथक होकर आत्मानुभूति में रमण करता है। [3]

आचार्य कुन्दकुन्द कृत समयसार का तो बनारसीदास के जीवन पर तो इतना प्रभाव पड़ा कि वे उसकी स्वाध्याय से पक्के अध्यात्मी बन

---

१. जीवो उवओगमओ अमुत्ति कत्ता सदेहपरिमाणो,
भोत्ता ससारत्थो सिद्धो सो विस्ससोड्ढगई ॥

२ अखउ णिरजणु णाणमउ सिउ संठिउ समचित्ति ।

३ जाइ लद्धउ माणिक्कडो जोइय पुहवि भमत,
बधिज्जइ णिय कप्पडइ जोइज्जइ एक्कत ।

मूर्ख प्राणियों को ललचाती रहती है। जो मनुष्य इसका जरा भी विश्वास कर लेता है उसे अन्त में पश्चाताप के अतिरिक्त कुछ हाथ नहीं लगता तथा वह नरक में गमन करता है। कबीर ने उसके कमला, भवानी, मूरति, पानी, आदि विचित्र नाम दिये है तो भूधरदास ने 'केते कथ किये तैं कुलटा तो भी मन न अघाया" कह करके सारे रहस्य को समझा दिया है। कबीर ने माया की अकथ कहानी लिखकर छोड़दी है लेकिन भूधरदास ने उसका "जो इस ठगनी को ठग बैठे मैं तिनको शिरनायौ" कहकर अच्छा अन्तकिया है। दोनों पद पाठकों के अवलोकनार्थ दिये जा रहे हैं।

कबीरदास :

माया महा ठगिनी हम जानी।
निरगुन फास लिये कर डोले, बोले मधुरी बानी,
केसव के कमला ह्वै बैठी, शिव के भवन शिवानी।
पंडा के मूरति ह्वै बैठी तीरथ में भई पानी,
जोगी के जोगिन ह्वै बैठी, राजा के घर रानी।
काहू के हीरा ह्वै बैठी, काहू के कौड़ी कानी,
भगतन के भगतिन ह्वै बैठी ब्रह्मा के ब्रह्मानी।
कहत कबीर सुनो हो संतो, यह सब अकथ कहानी।

भूधरदास:

सुनि ठगनी माया, तैं सब जग ठग खाया।
टुक विश्वास किया जिन तेरा, सो मूरख पछताया॥
आभा तनक दिखाय बिज्जु, ज्यों मूढमती ललचाया।
करि मद अंध धर्म हर लीनों, अन्त नरक पहुँचाया॥

यदि कबीरदास प्रभु के भजन करने में आनन्द का अनुभव करते हैं तो जगतराम कवि 'भजन सम नही काज दूजो" इसी की माला जपते रहते हैं। दोनों ही कवियों ने भगवद् भजन की अपूर्व महिमा गायी है। कबीर का पद देखिये

भजन में होत आनन्द आनन्द,
बरसै शब्द अमी के बादल, भींजै महरम सन्त
कर अस्नान मगन होय बैठे, चढा शब्द का रग,
अगर वास जहा तत की नदिया, बहत धारा गग
तेरा साहिब है तेरे माही, पारस परसे अग,
कहत कबीर सुनो भाई साधो जपले ओऽम् सोऽह

*　　　*　　　*　　　*

भजन सम नहीं काज दूजो ॥
धर्म अग अनेक यामें, एक ही सिरताज।
करत जाके दुरत पातक, जुरत सत समाज ॥
भरत पुण्य भण्डार यातैं, मिलत सब सुख साज ॥१॥
भक्त को यह इष्ट ऐसो, ज्यों क्षुधित को नाज।
कर्म ईधन को अगनि सम, भव जलधि को पाज ॥२॥
इन्द्र जाकी करत महिमा, कहो तो कैसी लाज ॥
जगतराम प्रसाद यातैं, होत अविचल राज ॥३॥

दौलतराम ने भगवान महावीर से ससार की पीर हरने तथा कर्म बेडी को काटने की प्रार्थना की है तो कबीरदास ने भगवान से निवेदन किया है कि उनके बिना भक्त की पुकार कौन सुन सकता है।

हमारी पीर हरो भव पीर   दौलतराम

आप बिन कौन सुने प्रभु मोरी   कबीरदास

इसी तरह यदि कबीरदास ने साधो भूमन बेटा जायो गुरु परताप साधु की संगत खोज कुटुम्ब सब खायो —के पद में बालक का नाम 'ज्ञान' रखा है तो बनारसीदास ने बालक का नाम भौंदू' रखकर नाम रखने वाले पंडित को ही बालक द्वारा खा लेने की अच्छी कल्पना की है। इसमें बनारसीदास की कल्पना निःसंदेह उच्चस्तर की है। दोनों पदों का अन्तिम भाग देखिये।

कबीरदास :

'ज्ञान' नाम धरयो बालक का शोभा बरनी न जाई
कहै कबीर सुनो भाई साधो घर घर रहा समाई।

बनारसीदास :

नाम धरयो बालक को 'भौंदू, रूप बरन कछु नाहीं।
नाम धरते पांडे खावे कहत बनारसी भाई।

मीरा ने एक ओर 'मेरे तो गिरधर गोपाल दूसरो न कोई' के रूप में जन साधारण को भक्ति की ओर आकर्षित किया तो बनारसीदास ने "जगत में सो देवन को देव जासु चरन परसैं इन्द्रादिक होय मुकति स्वयमेव" का आलाप लगाया। इसी तरह एक ओर मीरा ने प्रभु से होली खेलने के लिये निम्न शब्द लिखे।

होली पिया बिन लागत खारी सुनो री सखी मेरी प्यारी।
होरी खेलत है गिरधारी।

तो दूसरी ओर जैन कवि आत्मा से ही होली खेलने को आगे बढे और उन्होने निम्न शब्द में अपने भावों को प्रकट किया।

होरी खेलूंगी घर आए चिदानन्द।

शिशर मिथ्यात गई अब, आई काल की लब्धि बसत।

इसी प्रकार महाकवि तुलसीदास ने यदि,

राम जपु राम जपु राम जपु बावरे,
घोर भव नीर निधि नाम निज नाव रे।

का सन्देश फैलाया तो रूपचन्द ने जिनेन्द्र का नाम जपने के लिये तो प्रोत्साहित किया ही किन्तु अपने खराब परिणामों को पवित्र करने के लिये और मन में से काटे को निकाल कर उनके स्मरण के लिए भी कहा।

पद संग्रह के सम्बन्ध में—

प्रस्तुत पद सग्रह में ४०१ पदों का सकलन है। ये पद ४० जैन कवियों के हैं जिनमें १५ प्रमुख कवियों के ३४६ पद तथा शेष २५ कवियों के ५५ पद हैं। इन पदों का सग्रह प्राचीन ग्रन्थों एव गुटकों में से तथा कुछ पदों का प्रकाशित पुस्तकों के आधार पर किया गया है। ४० कवियों में बहुत से कवि तो ऐसे हैं जिनके पद पाठकों को प्रथम बार पढने को प्राप्त होंगे। ऐसे कवियों में

म रत्नकीर्ति कुमुदचन्द्र बुचराज बखतराम आदि के नाम प्रमुख रूप से गिनाये जा सकते हैं। सभी कवि साहित्य के महारथी थे। उन्होंने अपने अगाध ज्ञान से हिन्दी साहित्य के वृक्ष को पल्लवित किया था। पाहर कवियों का जिनके इस सग्रह में प्रमुख रूप से पद दिये हैं उनका संक्षिप्त परिचय भी पदों के साथ ही दे दिया गया है। परिचय के साथ २ उन कवियों का एक निश्चित समय भी देने का प्रयास किया गया है। जो जहाँ तक हो सका है निश्चित प्रमाणों के आधार पर ही आधारित है। १५ प्रमुख कवियों के अतिरिक्त शेष २५ कवियों में ठाकर, शुभचन्द्र मनराम साहिबराम आनन्दघन सुरेन्द्रकीर्ति देवाब्रह्म माणिकचन्द्र धर्मपाल देवीदास आदि के नाम उल्लेखनीय हैं। कवि ठाकर शाहजहां अकबर के उच्चपदस्थ अधिकारी थे। इन्हीं के पुत्र रिपिदास द्वारा लिख वाली हुई ज्ञानार्णव की संस्कृत टीका अभी हमें प्राप्त हुई है[१]। शुभचन्द्र भट्टारक सकलकीर्ति की परम्परा में होने वाले भ० विजयकीर्ति के शिष्य थे मनराम १७ वीं शताब्दी के हिन्दी के अच्छे विद्वान थे तथा जिनकी अभी ८ रचनायें प्रकाश में आ चुकी हैं। आनन्दघन देवाब्रह्म अपने समय के अच्छे विद्वान थे। इनके बहुत से पद एवं रचनायें मिलती हैं। सुरेन्द्रकीर्ति आमेर के भट्टारक थे जिनको साहित्य से विशेष अभिरुचि थी। इसी प्रकार धर्मपाल माणिकचन्द्र एवं देवीराम आदि भी अपने समय के अच्छे विद्वान् थे।

---

[१] देखिये लेखक द्वारा सम्पादित 'राजस्थान के जैन शास्त्र भण्डारों की ग्रन्थ सूची' चतुर्थ भाग पृष्ठ संख्या १२

राग रागनियों के नामों से पता चलता है कि सभी जैन कवि सगीत के अच्छे ज्ञाता थे। वे अपने पदों को स्वय गाते थे तथा जनता को अध्यात्म एव भगवद् भक्ति की ओर आकर्षित करते थे। प्राचीन काल में इन पदों के गाने का खूब प्रचार था तथा वे भजनानन्दियों को कटस्थ रहते थे। आज भी जयपुर में ७-८ शैलिया हैं जिनका कार्यक्रम सप्ताह में एक दिन सामूहिक रूप से पद एव भजनों के गाने का रहता है। सभी जैन कवि एक ही राग के गायक नही थे किन्तु उनकी अलग रागें थी। वैसे जैन कवियों ने केदार, सारंग, विलावल, सारट, माढ, आसावरी, रामकली, झिली, मालकोश, ख्याल, तमाशा आदि रागों में अधिक पद लिखे हैं

आभार—

सर्व प्रथम मैं क्षेत्र की प्रबन्ध कारिणी कमेटी के सभी माननीय सदस्यों एव मुख्यत. भूतपूर्व मत्री श्री केसरलाल जी बख्शी, बाबू सुमद्रकुमार जी पाटनी तथा वर्त्तमान मत्री श्री गैंदीलाल जी साह एडवोकेट का अत्यधिक आभारी हूँ जिनके सद् प्रयत्नों से श्री महावीर क्षेत्र की ओर से प्राचीन साहित्य की खोज एव उसके प्रकाशन जैसे महत्वपूर्ण कार्य का सम्पादन हो रहा है वास्तव में क्षेत्र कमेटी ने समाज को इस ओर नई दिशा प्रदान की है। आशा है भविष्य में साहित्य प्रकाशन का कार्य और भी शीघ्रता से कराया जावेगा। विश्वभारती शान्तिनिकेतन के हिन्दी विभाग के अध्यक्ष एव अपभ्रंश साहित्य के प्रसिद्ध विद्वान, डा. रामसिंह

तोमर का मैं पूर्णत आभारी हूँ जिन्होंने समय न होते हुये भी इस ग्रन्थ पर प्राक्कथन लिखने की कृपा की है। गुरुवर्य पं० चैनसुखदास जी सा० का भी मैं पूर्ण कृतज्ञ हूँ जिनके निर्देशन में जयपुर में साहित्य शोध का यह कार्य हो रहा है।

अन्त में मैं अपने सहयोगी भाई अनूपचंद जी न्यायतीर्थ एवं श्री सुगनचंद जी जैन का हृदय से आभारी हूँ जिन्होंने इसके सम्पादन एवं प्रकाशन में पूर्ण सहयोग दिया है।

कस्तूरचन्द कासलीवाल

पदानुक्रमणिका

पद	पद संख्या	पृष्ठ संख्या

भट्टारक रत्नकीर्ति व उनके पद

पद	पद सम्ख्या	पृष्ठ संख्या

बनारसीदास

जगजीवन

भूधरदास

बुधजन

दौलतराम

५८ महाचन्द

भागचन्द

विविध कवियों के पद

पद	पद संख्या	पृष्ठ संख्या

भट्टारक रत्नकीर्त्ति

(संवत् १५६०–१६५६)

रत्नकीर्त्ति जैन सन्त थे तथा सूरत गादी के भट्टारक थे। इनका जन्म सवत् १५६० के आसपास घोघा नगर (गुजरात) में हुआ था। इनके पिता का नाम देवीदास एव माता का नाम सहजलदे था। आरम्भ से ही ये व्युत्पन्न मति थे एम साहित्य की ओर इनका झुकाव था। भट्टारक अभयचन्द के पश्चात् सवत १६४३ में इनका पट्टाभिषेक हुआ। इस पद पर ये सवत् १६५६ तक रहे।

रत्नकीर्त्ति अपने समय के प्रसिद्ध कवि एव साहित्यिक विद्वान् थे। अब तक इनके ४० हिन्दी पद एव नेमिनाथ फाग, नेमिनाथ

राग-गुञ्जरी

वृषभ जिन सेवो बहु सुखकार ॥
परम निरजन भव भय भजन
ससारार्णवतार ॥ वृषभ० ॥१॥
नाभिराय कुल मडन जिनवर ।
जनम्या जगदाधार ॥
मन मोहन मरूदेवी नदन ।
सकल कला गुणाधार ॥ वृषभ० ॥२॥
कनक काति सम देह मनोहर ।
पांचसै धनुष उदार ॥
उज्वल रत्नचद सम कीरति ।
विस्तरी भवन मझार ॥ वृषभ० ॥३॥

[१]

राग-नट नारायण

नेम तुम कैसे चले गिरिनारि ॥
कैसे विराग धरयो मन मोहन, प्रीत[1] विसारि हमारी ॥१॥
सारग देखि सिधारे सारगु, सारग नयनि निहारी ॥
उनपे तत मत मोहन हे, वेसो नेम[2] हमारी ॥ नेम० ॥२॥
करो रे सभार सांवरे सुन्दर, चरण कमल पर वारि ॥
रतनकीरति प्रभु तुम विन राजुल विरहानलहु जारी ॥
॥ नेम० ॥३॥

[२]

---

१ मूलपाठ—परिति २ तेम

बारहमासा नेमीश्वर हिंडोलना एवं नेमिश्वर रास आदि रचनायें प्राप्त हो चुकी हैं। इनके पदों में नेमिनाथ के विरह से राजुल की दशा एवं उसके मनोभावों का अच्छा चित्रण मिलता है। हिन्दी के साथ में ये गुजराती मराठी एवं संस्कृत के भी अच्छे ज्ञाता थे। गुजराती का इनकी रचनाओं पर प्रभाव है एवं मराठी भाषा में इनके कुछ पद मिलते हैं।

इनके शिष्य परिवार में भ. कुमुदचन्द्र गणेश एवं राघव के नाम उल्लेखनीय हैं। इन विद्वानों ने इनके बारे में काफी लिखा है।

राग-गुज्जरी

वृषभ जिन सेवो बहु सुखकार ॥
परम निरंजन भव भय भजन
ससारार्णवतार ॥ वृषभ० ॥१॥
नाभिराय कुल मडन जिनवर ।
जनम्या जगदाधार ॥
मन मोहन मरूदेवी नदन ।
सकल कला गुणाधार ॥ वृषभ० ॥२॥
कनक काति सम देह मनोहर ।
पांचसै धनुष उदार ॥
उज्वल रतनचद सम कीरति ।
विस्तरी भवन मझार ॥ वृषभ० ॥३॥

[१]

राग-नट नारायण

नेम तुम कैसे चले गिरिनारि ॥
कैसे विराग धरयो मन मोहन, प्रीत[1] विसारि हमारी ॥१॥
सारग देखि सिधारे सारगु, सारग नयनि निहारी ॥
उनपे तत मत मोहन हे, वेसो नेम[2] हमारी ॥ नेम० ॥२॥
करो रे सभार सांवरे सुन्दर, चरण कमल पर वारि ॥
रतनकीरति प्रभु तुम बिन राजुल विरहानलहु जारी ॥
॥ नेम० ॥३॥

[२]

---

१ मूलपाठ—परिति २ तेम

राग–कनड़ा

कारण कउ पिया घर न आवे ॥
मन मोहन मंडप में पाउर पसु पोकार महान ॥ कारण० ॥१॥
मो ये पूरू पही नहि पसरति आन ताप के तान ॥
अपन उर की भासी परशी सजन रहे मन आन ॥ कारण ॥२॥
आप वहोत दिवाज राज मारंग मय भूली तान ॥
रतनकीरति प्रभु छोरी राजुल, सुगति वधू विरमान ॥ कारण० ॥३॥

[३]

राग–देशाख

सखी री नम न जानी पीर ॥
वहोत दिवाजे आय मेरे परि
संग मुरार हलधर वीर ॥ सखी० ॥ १ ॥
नेम मुख निरखी हरषीयन सू
अब तो होइ मन धीर ॥
तामें पशुय पुकार सुनि करि,
गयो गिरिवर के तीर ॥ सखी ॥ २ ॥
चन्दमनी पोकारती डारती
मंडन हार उर चीर ॥
रतनकीरति प्रभु भये बैरागी
राजुल चित कियो धीर ॥ सखी० ॥ ३ ॥

[४]

राग-देशाख

सखि को मिलावो नेम नरिंदा ॥

ता बिन तन मन योवन रजत है,

चारु चन्दन अरु चंदा ॥ सखि० ॥ १ ॥

कानन भुवन मेरे जीया लागत,

दुसह मदन को फंदा ।

तात मात अरु सजनी रजनी ॥

वे अति दुख को कंदा ॥ सखि० ॥ २ ॥

तुम तो संकर सुख के दाता,

करम काट किये मंदा ॥

रतनकीरति प्रभु परम दयालु,

सेवत अमर नरिंदा[1] ॥ सखि० ॥ ३ ॥

[५]

राग-मल्हार

सखी री सावनि घटा ई सतावे ।

रिमि झिमि बूंद बदरिया बरसत,

नेमि नेरे नहि आवे ॥ सखी री० ॥ १ ॥

कूंजत कीर कोकिला बोलत,

पपीया वचन न भावे ॥

---

[1] मूलपाठ–वरिंदा

दादुर मोर घोर घन गरजत
इंद्र-धनुष डरावै ॥ सखी री ॥ ॥
प्रसन्न लिख् री गुपति वचन कौ
जदुपति कु सु सुनावै ॥
रतनकीरति प्रभु भये निठोर भयो ।
अपनो वचन बिसरावै ॥ सखी री० ॥ ३ ॥

[६]

राग—केदार

बरज्यो न माने नयन निठोर ॥
सुमिरि सुमिरी गुन भये सजल घन
उमंगी[1] चले मति फोर ॥ बर० ॥ १ ॥
चंचल चपल रहत नहीं रोके
न मानत जु निहोर ॥
नित उठि चाहत गिरि को मारग
जेहि विधि चंद्र-चकोर ॥ बर० ॥ २ ॥
तन मन धन जोवन नहीं भावत
रजनी न भावत[2] भोर ॥
रतनकीरति प्रभु वेगें मिलो
तुम मेरे नयन के चोर ॥ बर० ॥ ३ ॥

[७]

---

१ उमागी २ भावत

राग-केदार

कहा थे मडन्न करू कजरा नैन भरू

होऊ रे वैरागन नेम की चेरी ॥

शीस न मजन देउ, माग मोती न लेउ ।

अब पोरहुँ तेरे गुननी बेरी ॥ १ ॥

काहू सू बोल्यो न भावे, जीया में जु ऐसी आवे ।

नहीं गमे तात मात न मेरी ॥

आली को कह्यो न करे, बावरी सी होइ फिरे ।

चकित कुरंगिनी यु सर घेरी ॥ २ ॥

निठुर न होइ ए लाल, वलिहुँ नैन विशाल ।

कैसे री तस दयाल भले भलेरी ॥

रतनकीरति प्रभु तुम्ह बिना राजुल ।

यों उदास गृहे क्यु रहेरी ॥ ३ ॥

[८]

राग-कंनडो

सुदर्शन[1] नाम के मैं वारी ॥

तुम बिन कैसे रहूँ दिन रयणी ।

मदन सतावे भारी ॥ सुदर्शन० ॥ १ ॥

जावो मनावो आनो गृह मोरे ।

यो कहे अभिया रानी ॥

---

१ सुदर्शण

रतनकीरति प्रभु भय जु विदा री ।
मिल रहे जीया प्यारे[1] ॥ सुदरशन ॥ ९ ॥

[९]

राग—कल्याण चर्चरी

राजुल गेहे नेमि आय ॥
हरि बदनी के मन भाय ।
हरि को तिलक हरि मोहाय ॥ राजुल० ॥ १ ॥
कंचरी को रंग हरी ताके संग सोहे हरी
तां गंध की तेज हरि बोह भवनि ॥ राजुल० ॥ ॥
हरि सम दो नयन सोहे हरि आता रंग अधर सोहे ।
हरि सुतासुत राजित द्विज चिबुक भवनि ॥
हरि सम दो मृनाल राजित इसी राजु धार ।
वेहरी को रंग हरि बिसार हरी गवनी ॥ राजुल० ॥ ३ ॥
सकल हरि अग करी हरि निरखती प्रेम भरी ।
तत नन नन नीर तब प्रभु आवनी ॥
हरि के कुवरि कु पेखि हरि लंकी कु वेघी ।
रतनकीरति प्रभु वेगें हरि अवनी ॥ राजुल ॥ ४ ॥

[१०]

राग—केदार

सुन्दरी सकल सिगार करे गोरी ॥
कनक वरन कंचुकी कसी तनि ।

---

१ भाई

पेनीले आदि नर पटोरी ॥ सुदरी० ॥ १ ॥

निरखती नेह भरि नेम नो साहू कु ।

रथ बैठे आये संग हलधर जोरी ॥

रतनकीरति प्रभु निरखि सारंग ।

वेग दे गिरि गये मानमरोरी ॥ सुदरी० ॥ २ ॥

(११)

राग-केदार

सरद की रयनि सुंदर सोहात ॥ टेक ॥

राका शशधर जारत या तन ।

जनक सुता विन भ्रात ॥ सरद० ॥ १ ॥

जव याके गुन आवत जीया मे ।

वारिज वारी बहात ॥

दिल बिदर की जानत सीआ ।

गुपत मते की बात ॥ सरद० ॥ २ ॥

या विन या तन सह्यो न जावत ।

दुसह मदन को जात ॥

रतनकीरति कहे विरह सीता के ।

रघुपति रह्यो न जात ॥ सरद० ॥ ३ ॥

(१२)

राग-केदार

राम सतावे रे मोहि रावन ॥

दस मुख दरस देखें डरती हूँ ।

बेग करो तुम आवन ॥ राम० ॥ १ ॥

निमिष पलक छिनु होत परिपमो ।
कोई सुनावो आवन ॥

सारंग धर सों इतनो कहियो ।
अब तो गयो है आवन ॥ राम० ॥ २ ॥

करुनासिंधु [1] निशाचर लागत ।
मेरे तन कु डरावन ॥

रतनकीरति प्रभु बेगे मिलो किम ।
मेरे जीया के भावन ॥ राम० ॥ ३ ॥

(१३)

राग—केदार

नेम तुम आवो[1] धरिय घरे ॥ टेक ॥

एक रयनि रही प्रात पियारे ।
बोहोरी चारित धरे ॥ नेम० ॥ १ ॥

समुद्र विजय नंदन रूप तुही बिन ।
मनमथ मोहो न र ॥

चंद्रमा चीर चाह इदु में ।
दाहत अंग धरे ॥ नेम ॥ २ ॥

विलसनी द्वारि अम मन मोहन ।
उज्ज्वल गिरि जा चरे ॥

रतनकीरति कहे सुगति सिधारे ।
अपना काज करे ॥ नेम० ॥ ३ ॥

(१४)

---

१ मूलपाठ—आवो

भट्टारक कुमुदचन्द्र

(सं० १६२५–१६८७)

कुमुदचन्द्र भट्टारक रत्नकीर्ति के शिष्य थे । इनके पिता का नाम 'सदाफल' एवं माता का नाम 'पद्माबाई' था । यह 'गोमण्डल' के रहने वाले थे तथा मोढ वंश में उत्पन्न हुये थे । बचपन से ये उदासीन रहने लगे और युवावस्था आने के पूर्व ही इन्होंने संयम ले लिया । ये शरीर से सुन्दर, वाणी से मधुर एवं मन से स्वच्छ थे । अध्ययन की ओर इनका प्रारम्भ से ही झुकाव था । इसलिये इन्होंने बाल्यावस्था में ही व्याकरण, छंद, नाटक, न्याय, आगम एवं अलङ्कार शास्त्र का गहरा अध्ययन कर लिया । कुछ समय के पश्चात् ये भट्टारक रत्नकीर्ति के शिष्य

बन गये और उन्हीं के साथ रहने लगे। इनकी विद्वता एवं अगाध ज्ञान को देखकर रत्नकीर्ति इन पर मुग्ध होगये और इन्हें अपना प्रमुख शिष्य बना लिया। संवत् १६५६ में बारडोली नगर में इन्हें भट्टारक दीक्षा दी गई।

कुमुदचन्द्र अपने समय के बड़े भारी विद्वान थे। हिन्दी में इनकी कितनी ही रचनायें मिलती हैं। इनकी प्रमुख रचनाओं में- नेमिनाथ बारहमासा नेमीश्वर गीत हिन्दोलना गीत वणजारा गीत दशधर्म गीत वसन्तस्तन गीत पार्श्वनाथ गीत चिन्तामणि पार्श्वनाथ गीत आदि के नाम उल्लेखनीय हैं। इसी तरह इनके ५ से अधिक छोटे बड़े पद भी अब तक मिल चुके हैं।

कुमुदचन्द्र की भाषा राजस्थानी है तथा उस पर कहीं कहीं मराठी एवं गुजराती का प्रभाव है। इन्हें सीधी-सादी भाषा में लिखने का अधिक चाव था। इनके पद अध्यात्म स्तवन शृंगार एवं विरह पर मिलते हैं। कुछ पद तो इनके बहुत ही ऊँची श्रेणी के हैं।

राग-नट नारायण

आजु मैं देखे पास जिनेंदा ॥
सांवरे गात सोदामनि मूरति, शोभित शीस फणेंदा ॥
आजु० ॥ १ ॥
कमठ महामद भजन रंजन भविक चकोर सुचंदा ।
पाप तमोपह भुवन प्रकाशक, उदित अनूप दिनेंदा ॥
आजु ॥ २ ॥
भुविज-दिविज पति दिनुज दिनेसर सेवितपद अरविन्दा ।
कहत कुमुदचन्द्र होत सबे सुख, देखत वामानंदा ॥
आजु० ॥ ३ ॥
[१५]

राग-सारंग

जो तुम दीन दयाल कहावत ॥
हमसे अनाथनि हीन दीन कू काहे न नाथ निवाजत ।
जो तुम० ॥ १ ॥
सुर नर किन्नर असुर विद्याधर सब मुनिजन जस गावत ॥
देव महीरुह कामधेनु ते अधिक जपत सच पावत ॥
जो तुम० ॥ २ ॥
चंद चकोर जलद जु सारग मीन सलिल ज्यु ध्यावत ॥
कहत कुमुद पति पावन तूहि, तुहिं हिरदे मोहि भावत ॥
जो तुम० ॥ ३ ॥
[१६]

राग-धन्यासी

मैं तो नरभव वाधि गमायो ॥
न कियो तप जप व्रत विधि सुन्दर ॥
काम भलो न कमायो ॥ मैं तो ॥ १ ॥
विकट लोभ तें कपट कूट करी ।
निपट विषै लपटायो ॥
विटल कुटिल शठ संगति बैठो ।
साधु निकट विपटायो ॥ मैं तो० ॥ २ ॥
कृपण भयो कछु दान न दीनों ।
दिन दिन दाम मिलायो ॥
जब जोवन जंजाल पड्यो तब ।
परत्रिया तनु चित लायो ॥ मैं तो० ॥ ३ ॥
अंत समै कोउ संग न आवत ।
झूठहिं पाप लगायो ॥
कुमुदचन्द्र कहे चूक परी मोही ।
प्रभु पद जस नहीं गायो ॥ मैं तो० ॥ ४ ॥

[१७]

राग-धन्यासी

प्रभु मेरे तुम कु ऐसी न चाहिये ॥
सघन विघन घेरत सेवक कु ।
मौन धरी किउ रहिये ॥ प्रभु ॥ १ ॥

विघन हरन सुख करन सबनिकु ।
चित चितामनि कहिये ॥
अशरण शरण अबधु बधु कृपासिधु-
को विरद निबहिये ॥ प्रभु० ॥ २ ॥
हम तो हाथ बिकाने प्रभु के ।
अब जो करो सोई सहिये ॥
नो फुनि कुमुदचन्द्र कहे शरणा-
गति की सरम जु गहिये ॥ प्रभु० ॥ ३ ॥

[१८]

राग-सारंग

नाथ अनाथनि कू कछु दीजे ॥
विरद सभारी वारी हठ मनतें, काहे न जग जस लीजे ।
नाथ० ॥ १ ॥
तुही निवाज कियो हू मानष, गुण अवगुणन गणीजे ।
व्याल बाल प्रतिपाल सविषतरु, सो नहीं आप हणीजे ॥
नाथ० ॥ २ ॥
मैं तो सोई जो ता दीन हूतो, जा दिन को न छूई जे ।
जो तुम जानत और भयो है, बांधि बाजार वेचीजे ॥
नाथ० ॥ ३ ॥
मेरे तो जीवन धन सब तुमहि, नाथ तिहारे जीजे ।
कहत कुमुदचंद्र चरण शरण मोहि, जे भावे सो कीजे ॥
नाथ० ॥ ४ ॥

[१९]

राग—मारग

सखीरी री अबतो रह्यो नहिं जात ।

प्राणनाथ की प्रीत न विसरत छण छण छीजत जात ॥

सखी० ॥ १ ॥

नहिं न भूख नहीं निंदु लागत परहि परहि सुरभात ।
मन तो उरभी रह्यो मोहन सु सेवन ही सुरभात ॥

सखी० ॥ २ ॥

नाहिं ने नींद परती निसिवासर होत विसुरत प्रात ।
चन्दन चन्द्र सजल नलिनी दल मन्द मरुत न सुहात ॥

सखी० ॥ ३ ॥

गृह आंगनु देख्यो नहीं भावत दीन भई बिललात ।
बिरही बावरी फिरत गिरि गिरि, लोकन ते न लजात ॥

सखी० ॥ ३ ॥

गृह आंगनु देख्यो नहीं भावत दीन भई बिललात ।
बिरही बावरी फिरत गिरि गिरि लोकन ते न लजात ॥

सखी० ॥ ४ ॥

पीउबिन पलक कल नहीं जीउ कु न रुचित रसिक जु बात ।
कुसुदचन्द्र प्रभु सरस दरस कु नयन चपल ललचात ॥

सखी० ॥ ५ ॥

राग-मलार

आली री अ विरखा ऋतु आजु आई।
आवत जात सखी तुम कितहु, पीउ आवन सुध पाई ॥
आली० ॥ १ ॥
देखत तस भर बादर दरकारे, बसत[1] हेम झर लाई।
बोलत मोर पपीईया दादुर, नेमि रहे कत छाई ॥
आली० ॥ २ ॥
गरजत मेह उदित अरु दामिनी, मोपे रह्यो नहीं जाई।
कुमुदचन्द्र प्रभु सुगति वधू सू, नेमि रहे विरमाई ॥
आली० ॥ ३ ॥

[२१]

राग-प्रभाति

आवो रे सहिय सहिलडी संगे।
विघन हरण पूजिये पास मन रंगे ॥ आवो० ॥
नील वरण तनु सुन्दर सोहे।
सुर नर किन्नर ना मन मोहे ॥ आवो० ॥ १ ॥
जे जिन वंदित वांछित पूरे।
नाम लेत सहू पातक चूरे ॥ आवो० ॥ २ ॥
सुप्रभाति उठि गुण जो गाये।
तेहने घरि नव निधि सुख थाये ॥ आवो० ॥ ३ ॥

---

१ मूलपाठ अमत

भव भय वारण त्रिभुवननायक।
दीन दयाल ए शिव सुख दायक ॥ आवो० ॥ ४ ॥
अतिशयवंत ए जग मांहि गाजे।
विघन हरण वाको बिरद बिराजे ॥ आवो० ॥ ५ ॥
अहनी सेव करे धरणेंद्र ।
जय जिनराज तु कहे कुमुदचन्द्र ॥ आवो० ॥ ६ ॥

[२२]

राग-धन्यासी

आज सपनि मैं हुं बड भागी ॥
लोडणपास पाय परसन कु ।
मन मेरो अनुरागी ॥ आजु० ॥ १ ॥
वामा नंदन दुरिति विहंडन ।
जगदा नंदन जिनवर ।
जनम जरा मरणादि निवारण
करण सुख को सु धर ॥ आजु० ॥ २ ॥
नीरख चरण सुर नर मन रंजन
भव भंजन भगवंत ।
कुमुदचन्द्र कहे देव देवनि को
पास मजहु सब संत ॥ आजु० ॥ ३ ॥

[२३]

राग-कल्याण

जनम सफल भयो भयो सुकाज रे ॥
तन की तपत टरी सब मेरी,
देखत लोडणपास आज रे ॥ जनम०॥ १ ॥
मकट हर श्री पास जिनेसर,
वदत जिनि जिते रजनी राज रे ॥
अङ्क अनोपम अहिपति राजित,
श्याम वरन भव जलधिराज रे ॥ जनम०॥२॥
नरक निवारण शिव सुख कारण,
सब देवनि को है शिरताज रे ॥
कुमुदचन्द्र कहे वांछित पूरन,
दुख चूरन तुही गरीबनिवाज रे ॥जनम० ॥३॥

[२४]

राग-देशाख प्रभाति

जागि हो, भोर भयो कहा सोवत ॥
सुमिरहु श्री जगदीश कृपानिधि,
जनम वाधि क्यों खोवत ॥ जागि हो ॥ १ ॥
गई रजनी रजनीस सिधारे,
दिन निकसत दिनकर फुनि डूबत ॥
सकुचित कुमुद, कमल वन विकसत,

संपति विपति नयननि दोउ जोवत ॥ जागि हो० ॥ २ ॥
सज्जन मित्ते सब आप सवारथ ।
तूहिं बुराई आप शिर ढोवत ।
कहत कुमुदचन्द्र यान भयो तूहि,
निकसत घीउ न नीर विलोयत ॥ जागि हो ॥३॥

[२५]

राग—कल्याण

चेतन चेतत किउ बावरे ॥
विषय विषे लपटाय रह्यो कहा
दिन दिन छीजत जात आपरे ॥१॥
तन धन योवन चपल सपन को
योग मिल्यो जेस्यो नदी नाउ रे ॥
काहे रे मूढ न समझत अजहू
कुमुदचन्द्र प्रभु पद यश गाउ रे ॥२॥

[२६]

पं० रूपचन्द

(संवत् १६३०–१७००)

पं० रूपचन्द १७ वीं शताब्दी के प्रसिद्ध अध्यात्मिक विद्वान् थे कविवर बनारसीदास ने अर्द्धकथानक में इनका अपने गुरु के रूप में उल्लेख किया है। कवि आगरे के रहने वाले थे और वहीं अपने मित्रों के साथ मिल कर अध्यात्म चर्चा किया करते थे। उन्होंने किस कुल में जन्म लिया एवं उनके माता पिता कौन थे इस सम्बन्ध में इनकी रचनायें मौन है।

रूपचन्द अध्यात्म रसिक थे। इनकी अधिकांश रचनायें इसी रस से ओतप्रोत हैं। अब तक इनके विभिन्न पदों के अतिरिक्त परमार्थ-दोहाशतक, परमार्थ गीत, पचमगल, नेमिनाथरासो, अध्यात्मदोहा,

अध्यात्मसवैया परमार्थ हिंडोलना अटेलना गीत आदि कितनी ही रचनायें उपलब्ध हो चुकी हैं। बनारसीदास का अध्यात्मवाद की ओर झुकने का प्रमुख कारण संभवतः इनकी रचनायें एवं आत्मिक चर्चायें थी। कवि ने जो कुछ लिखा है वह अपने अन्तःकरण की प्रेरणा से ही लिखा है। इनकी आन्तरिक अभिलाषा स्वोद्बोधन के अतिरिक्त मनुष्य मात्र को आत्मा-परमात्मा के चिन्तन एवं जड़ चेतन के वास्तविक भेद को समझाना रहा है। वे नहीं चाहते थे कि कठिनता से प्राप्त नर भव को वह मनुष्य ऐसे ही गवां दे। इसलिए 'संपति सकल जीवन अरु जोवनु दस दिन की जैसी लहरी रे' आदि का सन्देश देना पड़ा। कवि के सभी पद एक से एक सुन्दर हैं। भाषा शैली एवं विषय वर्णन की दृष्टि से भी कवि की रचनायें हिन्दी की उच्चकोटि की रचनायें हैं।

राग-गूजरी

प्रभु तेरी महिमा जानि न जाई ॥
नय विभाग विन मोह मूढ जन मरत वहिर्मुख धाई ॥
प्रभु० ॥ १ ॥
विविध रूप तव रूप निरूपत, बहुतै जुगति बनाई ॥
कलपि कलपि गज रूप अध ज्यौं झगरत मत समुदाई ॥
प्रभु० ॥ २ ॥
विश्वरूप चिद्रूप एक रस, घट घट रह्यउ समाई ॥
भिन्न भाव व्यापक जल थल ज्यौं अपनी दुति दिनराई ॥
प्रभु० ॥ ३ ॥
मारयउ मन जारयउ मनमथु, अरु प्रति पाले खटुकाई ॥
पिनु प्रसाद विन सासत्ति सुर नर फणिपत सेवत पाई ॥
प्रभु० ॥ ४ ॥
मम वचं करन अलख निरजंन, गुण सागर अति साई ॥
रूपचन्द अनुभव करि देखहुँ, गगन मडल मनु लाई ॥
प्रभु० ॥ ५ ॥

[२७]

राग-देवगंधार

प्रभु तेरी परमविचित्र मनोहर मूरति रूप वनी ॥
अङ्ग अङ्ग की अनुपम सोभा, वरन न सकतु फनी ॥
प्रभु तेरी० ॥ १ ॥

मकल विकार रहित बिनु अम्बर सुन्दर सुभ करनी ।
निरामरण भासुर छवि छाजत कोटि तरुन तरनी ॥
प्रभु तेरी ॥ २ ॥

वसु रस रहित सांत रस राजित बसि इहि साधु पनी।
जाति विरोधि जंतु जिहि देखत तजत प्रकृति अपनी ॥
प्रभु तेरी० ॥ ३ ॥

दरसनु दुरितु हरे चिर संचितु, सुर नर मन मोहनी।
रूपचन्द कहा कहौं महिमा त्रिभुवन मुकुट मनी ॥
प्रभु तेरी० ॥ ४ ॥

[२८]

राग—रामकली

प्रभु मुख की उपमा किहि दीजै ॥
ससि अरु कमल दाप भ्रम दूषित ।
तिनकी यह सरभरि क्यौं कीजे ॥ प्रभु० ॥ १ ॥
यह जड़ रूप सदोष कलंकितु ।
कबहूँ घटे कबहूँ छिन छीजै ॥
यह पुनि जड़ पंकज रज रंजित ।
सकुचै बिगसी अरु हिम भीजै ॥ प्रभु० ॥ २ ॥
अनूपम परम मनोहर मूरति ।
अमृत बरसनि सिरि बमनि सहीजै ॥

रूपचन्द भव तपति तपनु जनु ।
दरसनु देखत ज्यों सुख लीजै ॥ प्रभु० ॥ ३ ॥

[२६]

राग-बिलावल

दरसनु देखत हीयौ सिराइ ॥
होइ परम आनदु अंतरगत ।
अरु मम नयन जुगलु सहृताइ ॥ दरसनु० ॥ १ ॥
सहज सकल संताप हरे तन,
भव भव पाप पराछित जाइ ।
दारुन दुसह दुसह दुख नासइ,
सुख सुख रासि हृदै समाइ ॥ दरसनु० ॥ २ ॥
श्री ह्री धृति कीरति मति विजया,
सो ति तुष्टि ए होइ सहाइ ।
सकल घोर उपसर्ग परीसह,
नासहि प्रभु के परम पसाइ ॥ दरसनु० ॥ ३ ॥
सकल विघन उपसर्गहि निरन्तर,
चोर मारि रिपु प्रमुख सुआइ ।
रूपचन्द प्रसन्न परिनामनि,
अशुभ करम निरजरहि न काइ ॥ दरसनु० ॥ ४ ॥

[३०]

राग—आसावरी

प्रभु के चरन कमल रमि रहिये ॥
सकल चक्रधर धरम प्रमुख सुख
जो मन वांछित चाहिये ॥ प्रभु० ॥ १ ॥
कर बहिरंग संग सब परिहरि,
तुमर चरन मन गहिये ।
अरु कछ बारह विधि तपु तप करि
दुसह परिसह सहिये ॥ प्रभु० ॥ २ ॥
परम विचित्र भगति की महिमा
कहत कहा लगि कहिये ।
रूपचन्द चित निरखै अैसो,
तुरित परम पद लहिये ॥ प्रभु० ॥ ३ ॥

[३१]

राग—कल्याण

प्रभु तेरी महिमा को पावै ॥
पंच कल्यानक समय सचीपति
ताकी करम महोत्सौ आवै ॥ प्रभु० ॥ १ ॥
तजि साम्राज्य जोगमुद्रा धरि
सिव मारगु को प्रगटि दिखावै ।

वसु दस दोष रहितु को इहि विधि,
को तेरी सरि और गनावै ॥ प्रभु० ॥ २ ॥
समोसरन सिरि राज विराजति,
और निरंजनु कौनु कहावै ।
केवल दृष्टि देखि चराचर,
तत्व भेद को [1]ज्ञान जनावै ॥ प्रभु० ॥ ३ ॥
को वरनै अनंत गुन गरिमा,
को जल निधि घट मांहि समावै ।
रूपचन्द भव सागर मज्जत,
को प्रभु विन पर तीर लगावै ॥ प्रभु० ॥ ४ ॥

[३२]

राग—गूजरी

प्रभु की मूरति विराजै, अनुपम सोभा यह और न छाजै ॥
निरवर मनोहर निराभरन भासुर,
विकार रहित मुनिजन मनु राजै ॥ प्रभु० ॥ ॥ १ ॥
सुन्दर सुभग सोहै सुर नर मनु मोहै,
रूप अनुपम मदन मद भाजै ॥ प्रभु० ॥ २ ॥
प्रहसित वन्यौ मुख भ्रकुटिन भ्रू धनुष,
तपन कटाख सर संधान न लाजै ॥ प्रभु० ॥ ३ ॥
तम तेज दूरि करै तपति जडता हरै,
चन्द्रमा सूरजु जाकी जोति करि लाजै ॥ प्रभु० ॥ ४ ॥

---

१ जनानि

रूपचन्द गुख घरो कहत कहां लौ,
    परसन करत सकल दुरित दुख भाजै ॥ प्रभु ॥ ५ ॥

[३३]

राग–सारग

हमहि कहा पती चूक परी ॥
सासति इतनी हमरी कीजै
    हमतै माय कहा बिगरी ॥ हमहि० ॥ १ ॥
किधौ जीव वधु कीयो किधौ–
    इस मोल्यो मृषा नीति बिमारी ॥
किधौ पर द्रव्य हरयो तृष्णा वस
    किधौ परमें नर तरुणि हरी ॥ हमहि० ॥ २ ॥
किधौ बहुत आरम्भ परिग्रह,
    कह कु हमारी दृष्टि पसरी ॥
किधौ सुरा मधु मांसु रम्यो
    किधौ चित्त वधू चित्त धरी ॥ हमहि० ॥ ३ ॥
अनादि अविमा संतान जनित
    राग द्वेष परनति न टरी ॥
सुनी सर्वे साधारन संसारी
    जीवनि काह परी परी ॥ हमहि० ॥ ४ ॥
तू समरथ दयालु जग जीवन
    असरण सरण संसार तरी ।

लीजे राखि सरन अपने प्रभु,
रूपचन्द जनु कृपा करी ॥ इमहि० ॥ ५ ॥

[३४]

राग-एही

प्रभु मुख चन्द अपूरब तेरो ॥
संतत सकल कला परिपूरन,
पारे तुम तिहुँ जगत उजेरो ॥ प्रभु० ॥ १ ॥
निरुप राग निरदोष निरजनु,
निरावरनु जड जाडय निवेरो ॥
कुमुद विरोधि कृसी कृत सागरु,
अहि निसि अमृत श्रवै जु घनेरो ॥ प्रभु० ॥ २ ॥
उदै अस्त घन रहितु निरन्तरु,
सुर नर मुनि आनन्द जनेरो ॥
रूपचन्द इमि नैनन देखति,
हरपित मन चकोर भयो मेरो ॥ प्रभु० ॥ ३ ॥

[३५]

राग-कान्हरो

मानस जनमु वृथा तैं खोयो ॥
करम करन करि आउ मिल्यौ हो,
निदा करम करि २ सु विगोयो ॥ मानस० ॥ १ ॥

माग विसेस सुधा रस पायो
सो तै चरननिकौ सुख धोयो ।
चिंतामनि फैंक्यौं वाइस को
कुंजर भरि भरि ई धन ढोयो ॥ मानस० ॥ २ ॥

धन की तृपा प्रीति वनिता की
भूखि रह्यो नृप तैं मुख गोयो ।
सुख के हेत विषय-रस सेये
घिरत कै कारन सलिल विलोयो ॥ मानस० ॥ ३ ॥

मातिं रह्यो प्रसाद मद मदिरा,
अरु कंदर्प सर्प विष भोयो ।
रूपचन्द चेत्यो न चितायो
मोह नींद निरचल ह्वै सोयो ॥ मानस० ॥ ४ ॥

[२६]

राग-कल्याण

चेतन काहे कौं अरसात ॥
सहज सकति सम्हारि आपनी काहे न सिवपुर जात ॥
चेतन० ॥ १ ॥
इहि चतुरगति विपति भीतरि रह्यो क्यों न सुहात ॥
अरु अचेतन अमुचि तन मैं कैसे रह्यौ विरमात ॥
चेतन० ॥ २ ॥
अमृत अनुपम रतन मांगत भीख क्यौं न लजात ।

तू त्रिलोकपति वृथा अब कत रक ज्यौं विललात ॥
चेतन० ॥ ३ ॥

सहज सुख विन, विषय सुख रस भोगवत न अघात ।
रूपचद चित चेत ओसनि प्यास तौं न वुझात ॥
चेतन० ॥ ४ ॥

[३७]

राग-कल्याण

चेतन सौं चेतन लौं लाई ॥
चेतन अपनु सु फुनि चेतन, चेतन सौं वनि आई ।
चेतन० ॥ १ ॥

चेतन तैं अब चेतन उपज्यौं सुचेतन कौं चेतन क्यों जाई ।
चेतन गुन अरु गुनि फुनि चेतन, चेतन चेतन रह्यो समाई ॥
चेतन० ॥ २ ॥

चेतन मौन वनैअब चेतन, चेतन मौं चेतन ठहराई ।
रूपचद चेतन भयो चेतन, चेतन गुन चेतन मति पाई ॥
चेतन० ॥ ३ ॥

[३८]

राग-केदार

जिय जिन करहि पर सौं प्रीति ।

एक प्रतीति न मिले जासों को मरे तिहि नीति ॥
जिय० ॥ १ ॥
तू महंत सुजान यह अब एक ठौर बसीति ।
मित्र मात्र रहै सदा पर, तऊ तोहि परतीति ॥
जिय० ॥ २ ॥
यह सुही अरु हौ सुपहु ऐसी भतीव सभीति ।
जोहि मोहि बसिकै जु राख्यौ सुतोहि पायो जीति ॥
जिय० ॥ ३ ॥
प्रीति आपु समान त्यों करि क्यों करन की रीति ।
रूपचंद चित चेत चेतन क्यों न बढ़कै प्रीति ॥
जिय० ॥ ४ ॥

[३६]

राग-कान्हरो

प्रभु तेरे पद कमल निज न जानै ॥
मन मधुकर रस रसि कुबसि कुमतो अब अनत न रति मानै ।
प्रभु० ॥ १ ॥
अब लगि लीन रह्यो कुवासना कुविसन कुसम सुहानै ।
लीभ्यो भगति वासना रस बरा अवस पर सयाहि मुहानै ॥
प्रभु० ॥ २ ॥
श्री निवास संताप निवारन निरुपम रूप सरूप बखानै ।
मुनि मन राजहंस सु सेवित सुर नर सिर सनमानै ॥
प्रभु० ॥ ३ ॥

भव दुख तपनि तपत जन पाए, अंग अंग सहताने।
रूपचंद चित भयो अनंदसु नाहि नै वनतु वखाने॥
प्रभु०॥ ४॥

[४०]

राग-कल्याण

चेतन परस्यौं प्रेम बढ्यो॥
स्वपर विवेक विना भ्रम भूल्यो, मै मै करत रह्यो।
चेतन०॥ १॥
नरभव रतन जतन बहु तैं करि, कर तेरे आइ चढ्यो।
सुक्यौं विषय-सुख लागि हारिए, सब गुन गढनि गढ्यो॥
चेतन०॥ २॥
आरंभ के कुसियार कीट ज्यौं, आपुहि आपु मढ्यो।
रूपचंद चित चेतत नाहितैं, सुक ज्यौं वादि पढ्यो॥
चेतन०॥ ३॥

[४१]

राग-विभास

चरन रस भीजे मेरे नैन॥
देखि देखि आनद अति पावत, श्रवन सुखित सुनि वैन।
चरन०॥ १॥
रसना रसि नाम रस भीजि, तन मन को अति चैन।

सब मिलि लखित जगत भूपन को अब लागे सुख देन ॥

चरन० ॥ २ ॥

[४२]

राग–केदार

मन मानहि किन समझायो रे ॥

जब तब आयु कलहि सु मरण दिन देखत सिरपर आयो रे।

मन० ॥ १ ॥

बुधिबल घटत जात दिन दिन सिथल होत यह कायो रे।
करि कछु लैं सु अरपत चाहत है फुनि रहि है पछितायो रे ॥

मन० ॥ २ ॥

नरभव रतन जतन बहुतनि तैं करम करम करि पायो रे।
विषय विकार काच मणि बदलैं सु अहलैं मान गमायो रे ॥

मन० ॥ ३ ॥

इत उत भ्रम मूल्यौ किम भटकत करहु आपनो भायो रे।
रूपचंद चलहि न तिहि पंथ जु, सद्गुर प्रगटि दिखायो रे ॥

मन० ॥ ४ ॥

[४३]

राग-सारग

हौं जगदीस की सरणानी ॥

संतत सरण रहौ चरननि की और प्रभु हिं न पिछानौ।

हौं जगदीश० ॥ १ ॥

मोह शत्रु जिहि जीत्यो, तप बल त्रासनि मदनु छपानौ।
ग्यान राजु निकंटकु पायौ, सिवपुरि अविचल थानौं॥
हौं जगदीश० ॥ २ ॥

वसु प्रतिहार जु प्रभु लच्छण कै मेरे हृदै समानौं।
अनत चतुष्टय श्रीपति चौतिस अतिसय गुन जु खानौं॥
हौं जगदीश० ॥ ३ ॥

समोसरन राउर सुर नर मुनि सोभत सभहि सुहानौं।
धर्म नीति सिव मारगु चाल्यो तिहूं भुवन कौ रानौं॥
हौं जगदीश० ॥ ४ ॥

दीन दयाल भगत जन वच्छल जिहि प्रभु कौ यह बानौं।
रूपचद जन होइ दुखी क्यों मनु इह भरम भुलानौ॥
हौं जगदीश० ॥ ५ ॥

[४४]

राग-सारंग

कहा तू वृथा रह्यो मन मोहि॥
तू सरवग्य सरवदरसी कों कहि समुझावहि तोहि।
कहा० ॥ १ ॥

तजि निज सुख स्वाधीनपनौ कत, रह्यो पर वस जड जोहि।
घर पचामृत मागतु भीख जु, यह अचिरज चित मोहि॥
कहा० ॥ २ ॥

सुख अपलेस छाड़त न कहूं फिरि देखे सब पद टोहि।
रूपचंद चित चेति चतुर मधि रत पद लीन किन होहि ॥
कहा० ॥ ३ ॥

[४५]

राग-विभास

प्रभु मोकौं अब शुभमाव भयो ॥
तुम दरिसन दिनकर उग्यो अनुपम मिथ्या ससि बिसयो।
प्रभु० ॥ १ ॥
सुपर प्रकास भयो जिन स्वामी भ्रम तम दूरि गयो।
मोह नींद गई कल मिसानई, कुनय भगमु अथयो ॥
प्रभु० ॥ २ ॥
अशुभ चोर क्रोधादि पिशाचादि गंवर गमनु ठयो।
जति मांगई तप तेज प्रबल बस काम विकार भयो ॥
प्रभु० ॥ ३ ॥
चेतन चकवाक मति चकई विषय विरहु विछयो।
रूपचंद चित कमल प्रफुल्लित सिव सिरि पास लयो ॥
प्रभु ॥ ४ ॥

[४६]

राग-जैतश्री

चेतन अनुभव घट प्रतिभारयौ ॥
अनय पच की मोह अंधियारो जारौ सारौ नास्यौ।
चेतन० ॥ १ ॥

अनेकांत किरना छबि राजि, विराजत भान विकास्यो ॥
सत्तारूप अनूपम अद्भुत ज्ञेयाकार विकास्यौं ॥
चेतन० ॥ २ ॥
आनद कद अमद अमूरति सूरति मैं मन वास्यो ॥
चतुर 'रूप' के दरसत जो सुख, जाने वाकू वास्यो ॥
चेतन० ॥ ३ ॥

[४७]

राग-जैतश्री

चेतन अनुभव घन मन भीनौं ॥
काल अनादि अविद्या वधन सहज हुवौ वल छीनौ।
चेतन० ॥ १ ॥
घट घट प्रकट अनत नट नाटक, एक अनेकन कीनौ।
अ ग अ ग रग विरग विराजत, वाचक वचन विहीनौ ॥
चेतन० ॥ २ ॥
आपुन भोगी भुगतिन मुगता, करता भाव बिलीनौं।
चतुर 'रूप' की चित्र चतुरता चीन्ही चतुर प्रवीनो ॥
चेतन० ॥ ३ ॥

[४८]

प्रभु मेरो अपनी खुशी को दानि ॥
सेवा करि कैसी उमरो कोऊ, काहू को नहीं कानि।
प्रभु० ॥ १ ॥

स्वान समान ध्याम को पापी देखहु प्रभु की बानि।
भयो निहाल अमर पदु पायो छिन इक की पहिचानि॥
प्रभु० ॥ २ ॥

सिगरो जनमु करी प्रभु सेवा औ थिक वन प्रिय जानि।
इतनी चूक न बकसी साहिब भई मूल पद हानि॥
प्रभु० ॥ ३ ॥

ऐसे प्रभु को कौन भरोसो कीजे हरषु मन मानि॥
जगचंद चित सावधान पै रहिबै प्रभुहि पिछानि॥
प्रभु० ॥ ४ ॥

[४९]

राग—केदार

नरक दुख क्यों सहिहै तू गंवार॥
पंच पाप नित करत न संकहु, तज परत्र की मार।
नरक० ॥ १ ॥

किंचित असुभ करय तब आवत होति कछ न पीर।
सोक न सहिन सकतु अति बिलपतु दुख हरे सरीर॥
नरक० ॥ २ ॥

पूरब कृत सुभ असुभ तनी फलु, देखत दृष्टि तु हार।
तदपि न असुभ बुद्धि तु अनहितु मोह मदनक ज्ञार॥
नरक० ॥ ३ ॥

गावनि संभारि सारस घन, नम घटा घनु गंभीर ।
रूपचंद त्रि सकल परिवार, संयत भूर भर भीर ॥
नगर० ॥ ४ ॥

[५०]

राग-केदार

जिन जिन जपति किनि दिन राति ॥
जाति कलुष परिनाम निर्मल, सरल मन्त्रनिपाति ।
जिन० ॥ १ ॥

जपति जिहि वसु सिद्धि नव निधि, संपदा बहु भाति ।
हरइ विघन अरु हरइ पातकु, होइ नित सुभ साति ॥
जिन० ॥ २ ॥

कहा किंचित पाइ संपति, रहे वसु मदमाति ।
रूपचंद चित चेति निज हित, पर हरहि परतीति ॥
जिन० ॥ ३ ॥

[५१]

राग-केदार

गुसइयां तोहि कहा जनु जाचे ॥
तूं दाता समरथु प्रभु ऐसो, जाकै लोक सबु राचै ।
गुसइयां० ॥ १ ॥

लसुन कै पात्र कि वास कपूर की, कपूर के पात्र कि लसुन की होइ।
जो कछु सुभासुभ रचि राख्यौ है, वर वस अपुन ही है सोइ॥
अपनौ० ॥ २ ॥

वाल गोपाल सबै कोइ जानत, कहा काहू कछु राख्यौ गोइ।
रूपचद दिष्टान्त देखियत, लुनियै सोई जु राख्यौ वोइ॥
अपनौ० ॥ ३ ॥

[५४]

राग–कल्याण

तोहि अपनपौ भूल्यौ रे भाई॥
मोह मुगुधु हुइ रह्यौ निपट ही, देखि मनोहर वस्तु पराई॥
तोहि० ॥ १ ॥

तैं परु, मूढ आपु करि जान्यौ, अपनी सब सुधि बुधि बिसराई।
सधन दारादि कनक करि देखत, कनक मत्तु ज्यउ जनु बौराई॥
तोहि० ॥ २ ॥

परि हरि सहज प्रकृति अपनी ते, परहि मिले जड जाति न साई।
भयो दुखी गुणु सीलु गवायौ, एको कछू भई न भलाई॥
तोहि० ॥ ३ ॥

एक मेक हुई रह्यउ तोहि मिलि, कनक रजत व्यवहार की नाई।
लछन भेद भिन्न यह पुदगल, कस न तेरी कसठ हराई॥
तोहि० ॥ ४ ॥

आमि बूम्हि तू इत कत खोमत मस्तु मूठि ते करी दिपाई।
रूपचंद पधिये अपने मद्दे, इमी कही कहा चतुराई॥
तोहि॰॥५॥

[५५]

राग-सारग

देखि मनोहर प्रभु मुख चंदु॥
लोचन नील कमल प बिगसे,
मु चत है मकरंदु॥ देखि॰॥१॥
देखत देखत तृपति होत नहिं,
चितु चकोरु अति करतु आनन्दु।
मुख समुद्र बारुनी सुन आनो,
कहाँ गयो ता महि दुख दंदु॥ देखि॰॥२॥
क मकार जु हुतो क तरगत,
सोक निपट परयो घट मंदु।
मुपर प्रकास भयो सबसु मन्यौ
मेरो बन्यौ सबहि बिधि चंदु॥ देखि॰॥३॥
बरसतु बचन सुधारस बूंदनि
भयो सकल संताप निकंदु।
रूपचन्द तन मन सहतानै
सु मङ्गल बनाई यह सबु दंदु॥ देखि॰॥४॥

[५६]

राग–गूजरी

तरसत हैं ए नैननि नारे ॥

कबसु महूरत ह्वै है जिहि हो,

जागि देखि हों जगत उजारे ॥ तरसत० ॥ १ ॥

कैसी करो करम इहि पापी,

क्षेत्र छुडाइ दूरि करि डारे ।

जो लगि आउ प्रतिबंधक–

तौ लगि प्रभु परनाम न रहत हमारे ॥ तरसत ॥ २ ॥

अतरंग मौजूद विराजत,

ज्ञान परोक्ष न देखत सारे ।

मनु अकुलात प्रतिक्ष दरिस कहु,

कैसी करौ अवरन है भारे ॥ तरसत० ॥ ३ ॥

धन्य वह क्षेत्र काल धन्य ह्वांके,

प्रभु जे रहत समीप सुखारे ।

रूपचन्द चिंताव कहा मोहि,

पायो है मारगु जिहि जन तारे ॥ तरसत० ॥ ४ ॥

[५७]

राग–सारंग

भरयौ मद करतु बहुत अपराध,

मूढ जन नाहि न करतु कह्यौ ।

धरत कलप वर तोरन करि
क्यों फिरत कुमह निबह्यो ॥ मरथौ० ॥ १ ॥
सील साख अरु संजम मन्दिर,
दर दस मारि ढयो ।
विविध इंद्रिनि के सुख अरुण,
भव युग भूख रह्यो ॥ मरथौ० ॥ २ ॥
नरक निगोद धारि बंधन परि
दारुण दुःख सह्यो ।
करम महारथ कर चढि परवश,
चवि संताप सह्यो ॥ मरथौ० ॥ ३ ॥
सुमिरि सुमिरि स्वाधीन सहज,
अम्बर अधिक कह्यो ।
रूपचन्द प्रभु पद देखा यद
इहि दुख भाजि गयौ ॥ मरथौ० ॥ ४ ॥

[५८]

राग–गौरी

राखि हो प्रभु राखिबे बडे भाग तू पायौ ॥
नाथ अनाथ भए भव तोई
आदि अनादि गवायौ ॥ राखिबे० ॥ १ ॥
मिथ्या देव बहुत, मैं सेये

मिथ्या गुरु भरमायौ ।
काज कछू ना सरयौ काहू तैं,
चित्त रह्यौ परिभायौ ॥ राखिलै० ॥ २ ॥
सुख की करै लालसा भ्रम तैं,
जहां तहां ढहकायौ ।
सुख कौ हेतु एक तू साहिब,
ताहि न मैं मनि लायौ ॥ राखिलै ॥ ३ ॥
हौं प्रभु परम दुखी इहि-
करम कुसंगति बहुत सतायौ ।
रूपचन्द प्रभु दुख निवेरहि,
तेरै सरनै अब आयौ ॥ राखिलै० ॥ ४ ॥

[५६]

राग-एही

असदस बदन कमल प्रभु तेरौ ॥
अमलिनु सदा सहज आनन्दितु,
लछमी कौ जु विलास वसेरौ ॥ असदस० ॥ १ ॥
राजसु अति रज रहितु मनोहरु,
ताप विधि प्रताप बडेरौ ।
सीतल अरु जन जडता नासुन,
कोमल अति तप तेज करेरौ ॥ असदस० ॥ २ ॥
नहि जड जनिनु नहीं पुन पकजु,

करन कलप तर तोरन करि
क्यों फिरयु कुमाइ निवहयो ॥ मरयौ० ॥ १ ॥
सील सास्त्र अरु संजम मन्दिर,
बर बस मारि दयौ ।
किंचित इंद्रिनि के सुख कारण,
भव वनु भूल रह्यौ ॥ मरयौ० ॥ २ ॥
नरक निगोद बारि बंधन परि
दारुण दुःख सह्यौ ।
करम महारथ कर चढ़ि परवश,
अति संताप लह्यौ ॥ मरयौ० ॥ ३ ॥
सुमिरि सुमिरि स्वाधीन सहज,
अन्तर अधिक दह्यौ ।
रूपचन्द प्रभु पद रेखा तट,
इहि दुख भाजि गयौ ॥ मरयौ० ॥ ४ ॥

[५८]

राग—गौरी

राखि लै प्रभु राखिले बड़े भाग तू पायौ ॥
नाथ अनाथ भ्रम भ्रम तांई
याहि अनादि गवायौ ॥ राखिलै० ॥ १ ॥
मिथ्या देव बहुत मैं सेये,

मिथ्या गुरु भरमायौ ।
काज कछू ना सर्यौ काहू तैं,
चित्त रह्यौ परिभायौ ॥ राखिलै० ॥ २ ॥
सुख की करै लालसा भ्रम तैं,
जहां तहां डहकायौ ।
सुख कौ हेतु एक तू साहिब,
ताहि न मैं मनि लायौ ॥ राखिलै ॥ ३ ॥
हौं प्रभु परम दुखी इहि-
करम कुसंगति बहुत सतायौ ।
रूपचन्द प्रभु दुख निवेरहि,
तेरै सरनै अब आयौ ॥ राखिलै० ॥ ४ ॥

[५६]

राग-एही

असदस बदन कमल प्रभु तेरौ ॥
अमलिनु सदा सहज आनन्दितु,
लछमी कौ जु बिलास बसेरौ ॥ असदस० ॥ १ ॥
राजसु अति रज रहितु मनोहरु,
ताप विधि प्रताप बडेरौ ।
सीतल अरु जन जडता नासुन,
कोमल अति तप तेज करेरौ ॥ असदस० ॥ २ ॥
नहि जड जनिनु नहीं पुन पकजु,

पसरपउ बस परिमसु खिस केरी ।
रूपचन्द रस रमि रहे ओोचन
अति द बम करत नही फेरी ॥ बसरस० ॥ ३ ॥

[६०]

राग-कल्याण

काहे रे भाई भूल्यौ स्वारथ ॥
प्याउ प्रमाण घटति दिन हूँ दिन
बातु जु है अब अमसु अकारथ ॥ काहे० ॥ १ ॥
काम पाइ बीते कितने नर
सुर नर फनिपति प्रमुख महारथ ।
इमं तुम सो सु बापुरो आपु,
तिहि सुमिर मन तन गुनत परमारथ ॥ काहे० ॥ २ ॥
कुसुमित फलि समि देखत सुन्दर
जांनि अनित्य ति सकल पदारथ ।
रूपचन्द नर भव फल लीजै
कीजै जानि कछु परमारथ ॥ काहे० ॥ ३ ॥

[६१]

राग-केदार

चेतन अति चतुर सुजान ॥
कहा रंग रचि रह्यो परसों
प्रीति करि अति बान ॥ चेतन० ॥ १ ॥

तू महंतु त्रिलोकपति जिय,
जान गुन परधानु ।
यह अचेतन हीन पुदगलु,
नाहि न तोहि समान ॥ चेतन० ॥ २ ॥
हुइ रह्यो असमरथु आपुनु,
परु कियौ पजवान ।
निज सहज सुख छोडि परवस,
परयौ है किहि जान ॥ चेतन० ॥ ३ ॥
रह्यौ मोहि जु मूढ यामैं,
कहा जानि गुमान ।
रूपचन्द चित चेति नर,
अपनौ न होइ निदान ॥ चेतन० ॥ ४ ॥

[६२]

राग-बिलावल

मूरति की प्रभु सूरति तेरी, कोउ नहिं अनुहारी ॥
रूप अनुपम सोभित सुंदर,
कोटि काम बलिहारी ॥ मूरति० ॥ १ ॥
सांत रूप मुनि जन मनु मोहिति,
सोहति निज उजियारी ।
जाकी जोति सूर ससि जीते,
सुर नर नयन पियारी ॥ मूरति० ॥ २ ॥

दरिसन करत पातग मासै
मन पंछित मुक्मरी ।
रूपचन्द त्रिभुवन चूडामनि
पन्तिर फंमु सिहारी ॥ मूरति० ॥ ३ ॥

[६३]

राग—आसावरी

हो नटवा मूं मोह मेरी नाइक ।
सो न मिल्यो मू पूरे बेई लाइक ॥ हो० ॥ १ ॥
मद विषस सर मोहि फिरावै
बहु विधि काछ कछाइन नाचे ।
ज्यौं ज्यौं करम पखावजु बाजै
त्यौं त्यौं नटव मोहि पे छाजै ॥ हो० ॥ २ ॥
करम सुरंग रंग रस राच्यौ
अस चौरासी स्वांग धरि नाच्यौ ॥
धरत स्वांग दारुणु दुख पायो,
नटत नटत कछु हाथ न आयो ॥ हो० ॥ ३ ॥
रागादिक पर परिनति संगै
नटत बीरु भूल्यो भ्रम रंगै ।
हरि हरादि कु नृपति भुलाम्यौ
बिन स्वामी तेरौ मरमु न जाम्यो ॥ हो० ॥ ४ ॥

अब मोहि सदगुरु कहि समझायौ,
तो सौ प्रभु बडे भागनि पायौ।
रूपचन्द नटु विनवै तोही,
अब दयाल पूरौ दै मोही ॥ हौं० ॥ ५ ॥

[६४]

राग–गंधार

मन मेरे की उलटी रीति ॥
जिनि जिनि तें तू दुख पावत है,
तिन हीं सौ पुनि प्रीति ॥ मन० ॥ १ ॥
वर्ग विरोधउ होइ आपुसौ,
परुसौ अधिक समीति ।
डहकतु वीर वारजि परिग्रह,
तिन ही की परतीति ॥ मन० ॥ २ ॥
गफिल भयौ रहतु यह सतत,
बहुतै करतु अनीति ।
इतनी सका मानतु नाही,
जु वैरनि माहि वसीति ॥ मन० ॥ ३ ॥
मेरे कहै सुने नहीं मानतु,
हौ इहि पायौ जीति ।
रूपचन्द अब हारि दाउ दयौ,
कहा बहुत कैफीति ॥ मन० ॥ ४ ॥

[६५]

राग—नट नारायण

जपतु मोह प्रभु प्रबल प्रताप ॥
उछरत बढत गुननि प्रति गुनि
पुनि जाके चरित्र ताप ॥ जपतु० ॥ १ ॥
जीते जिहि सुर नर फणपति
सब पि भसि बिनु सरचाप ।
हरि हर ब्रह्मादिक पुनि जाके
ते वजत निज थाप ॥ जपतु० ॥ २ ॥
जाके बस वस प्रमुख पुरुष
बहु बिधि करत विलाप ।
रूपचन्द्र जिन देव एक तजि
कीनु दुखित इहि पाप ॥ जपतु० ॥ ३ ॥

[६६]

राग—नट नारायण

हौ वसि पास जिन दातार ॥
पास बिस हरत सहु जिनवर
जगत माया आधार ॥ हौ० ॥ १ ॥
थावर जंगम रूप बिसहर
मूल मन्तर सार ।
भूत प्रेत पिसाच डाकिनि
साकिनी भयहार ॥ हौ० ॥ २ ॥

रोग सोग वियोग भयहर,
मोह मल्ल विदार ।
कमठ कृत उपसर्ग सर्गनि,
अचलित योग विचार ॥ हौं० ॥ ३ ॥
फणिप पद्मावती पूजित,
पाद पद्म दयालु ।
रूपचन्द जनु राख लीजें,
सरण ऊभो बालु ॥ हौं० ॥ ४ ॥

[६७]

राग–नट नारायण

मोहत है मनु सोहत सुन्दर ।
प्रभु पद कमल तिहारो ॥
पाटल छवि सुर नर नत सेखर
पदुम राग मनुहारे ॥ सोहत० ॥ १ ॥
जाड्य दमन सताप निवारन,
तिमिर हरन गुन भारे ।
वचन मनोहर वर नख की दुति,
चद सूर वलि डारे ॥ मोहत० ॥ २ ॥
दरिसन दुरित हरै चिर सचित,
मुनि हसनि मन प्यारे ।
रूपचन्द ए लोचन मधुकर,
दरिसन होत सुखारे ॥ मोहत० ॥ ३ ॥

[६८]

बनारसीदास

(संवत् १६४३–१७०१)

बनारसीदास १७ वीं शताब्दी के कवि थे। इनका जन्म संवत् १६४१ में जौनपुर नगर में हुआ था। इनके पिता का नाम खरगसेन था। प्रारम्भिक शिक्षा प्राप्त करने के पश्चात् ये व्यापार करने लगे। कभी कपड़े का, कभी जवाहरात का एवं कभी किसी वस्तु का लेन देन किया लेकिन उसमें इन्हें कभी सफलता नहीं मिली। इसीलिए डा० मोतीचन्द ने इन्हें असफल व्यापारी के नाम से सम्बोधित किया है। दरिद्रता ने इनका कभी पीछा नहीं छोड़ा और अन्त तक ये इससे जूझते थे।

साहित्य की ओर इनका प्रारम्भ से ही झुकाव था। सर्व प्रथम ये शृंगार रस की कविता करने लगे और इसी चक्कर में

इश्कबाजी में भी फसे लेकिन अचानक ही इनके जीवन में एक मोड आया और उन्होंने श्रृगार रस पर लिखी हुई सभी कविताओं की पाडुलिपि को गोमती में बहा दिया। इश्कबाजी से निकल कर ये अध्यात्मी बन गये और जीवन भर अध्यात्म के गुण गाते रहे। ये अपने समय में ही प्रसिद्ध कवि हो गये और समाज में इनकी रचनाओं की माग बढने लगी। इनकी रचनाओं में नाममाला, नाटक समयसार, बनारसी विलास, अर्द्धकथानक, माझा आदि के नाम उल्लेखनीय हैं। नाटक समयसार कवि की प्रसिद्ध अध्यात्मिक रचना है। बनारसी विलास इनकी छोटी छोटी रचनाओं का सग्रह ग्र थ है। अर्द्धकथानक में इनका स्वय का आत्मचरित है।

बनारसीदास प्रतिभा सपन्न एव धन के पक्के कवि थे। हिन्दी साहित्य को इनकी देन निराली है। कवि की वर्णन करने की शक्ति अनूठी है। इनकी प्रत्येक रचना में अध्यात्म रस टपकता है इसलिए इनकी रचनायें समाज मे अत्यधिक आदर के साथ पढी जाती हैं।

राग-सारग वृंदावनी

जगत में सो देवन को देव ॥
जासु चरन परसै इन्द्रादिक होय मुकति स्वयमेव ॥
जगत में० ॥ १ ॥
जो न छुधित न तृषित न भयाकुल इन्द्री विषय न वेव ॥
जनम न होय जरा नहिं व्यापै मिटी मरन की टेव ॥
जगत में० ॥ २ ॥
जाके नहिं विषाद नहिं विस्मय नहिं आठों अहमेव ॥
राग विरोध मोह नहिं जाकें, नहिं निद्रा परसेव ॥
जगत में० ॥ ३ ॥
नहिं तन रोग न श्रम नहिं चिंता दोष अठारह भेव ॥
मिटे सहज जाके ता प्रभु की करत 'बनारसि' सेव ॥
जगत में० ॥ ४ ॥

[६६]

राग—रामकली

म्हारे प्रगटे देव निरंजन ॥
अटको कहा कहा सर भटकत कहा कहूँ जन रंजन ॥
म्हारे० ॥ १ ॥
खंजन दृग दृग नयनन गाऊं चाऊं चितवत रंजन ॥
मजन घट अंतर परमात्म सकल दुरित भय भंजन ॥
म्हारे० ॥ २ ॥

वोही कामदेव होय काम घट वोही सुधारस मजन ॥
और उपाय न मिले बनारसी, सकल करमखप खजन ॥
म्हारे० ॥ ३ ॥

[७०]

राग–सारंग

किते गये पच किसान हमारे ॥ किते० ॥
बोयो बीज खेत गयो निरफल, भर गये खाद पनारे ॥
कपटी लोगों से साझा कर कर हुये आप विचारे ॥
किते० ॥ १ ॥

आप दिवाना गह गह बैठो, लिख लिख कागद डारे ॥
बाकी निकसी पकरे मुकद्दम, पाचो होगये न्यारे ॥
किते० ॥ २ ॥

रूक गयो शबद नहिं निकसत, हा हा कर्म सों हारे ॥
बनारसि या नगर न बसिये, चल गये सीचन हारे ॥
किते० ॥ ३ ॥

[७१]

राग–जंगला

या दिन को कर सोच जिय मनमें ॥
बनज किया व्यापारी तूने, टांडा लादा भारी रे ।
ओछी पूंजी जूआ खेला, आखिर बाजी हारी रे ॥

आखिर बाजी हारी करले चलन की तय्यारी ।
इक दिन डेरा होयगा बन में ॥ बा दिन० ॥ १ ॥
झूठे नैना उलफत बांधी किसका सोना किसकी चांदी ॥
इक दिन पवन चलेगी आंधी किसकी बीबी किसकी बांदी ॥
नाहक चित्त लगावै धन में ॥ बा दिन ॥ २ ॥
मिट्टी सेती मिट्टी मिलियो पानी से पानी ।
मूरख सेती मूरख मिलियो, ज्ञानी से ज्ञानी ॥
यह मिट्टी है तेर तन में ॥ बा दिन० ॥ ३ ॥
कहत बनारसि सुनि भवि प्राणी यह पद है निरवाना रे ॥
जीवन मरन क्रिया मो नांही सिर पर काल निशाना रे ॥
सूझ पड़गी बुढ़ापे पन में ॥ बा दिन० ॥ ४ ॥

[७२]

मूलन बेटा आयो रे साधो मूलन० ॥
जाने खोज कुटुम्ब सब खायो रे साधो० ॥
मूलन ॥ १ ॥
जन्मत माता ममता खाई मोह लोभ दोई भाई ।
काम क्रोध दोई काका खाये खाई तृषना दाई ॥
साधो ॥ २ ॥
पापी पाप परोसी खाया अशुभ करम दाद माया ।

मान नगर को राजा खायो, फैल परो सब गामा ॥
साधो० ॥ ३ ॥

दुरमति दादी खाई दादो, मुख देखत ही मूओ ।
मंगलाचार बधाये बाजे, जब यो बालक हूओ ॥
साधो० ॥ ४ ॥

नाम धरयों बालक को भोंदू, रूप बरन कछु नाहीं ।
नाम धरते पांडे खाये, कहत 'बनारसि' भाई ॥
साधो० ॥ ५ ॥

[७३]

रागअष्ट-पदी मल्हार

देखो भाई महाविकल संसारी ॥
दुखित अनादि मोह के कारन, राग द्वेष भ्रम भारी ॥
देखो भाई० ॥ १ ॥

हिंसारंभ करत सुख समझैं, मृषा बोलि चतुराई ।
परधन हरत समर्थ कहावै, परिग्रह बढत बढाई ॥
देखो भाई० ॥ २ ॥

वचन राख काया दृढ राखै, मिटै न मन चपलाई ।
यातैं होत और की औरैं, शुभ करनी दुख दाई ॥
देखो भाई० ॥ ३ ॥

जोगासन करि कर्म निरोधै, आतम दृष्टि न जागै ।
कथनी कथत महंत कहावै, ममता मूल न त्यागै ॥
देखो भाई० ॥ ४ ॥

आगम वेद सिद्धान्त पाठ सुनि हिये आठ मद आनै ।
जाति लाभ कुल बल तप विद्या प्रभुता रूप बखानै ॥
देखो भाई० ॥ ५ ॥

जड़ सौं राचि परम पद साधै आतम शक्ति न सूझै ।
बिना विवेक विचार दरब के गुण परजाय न बूझै ॥
देखो भाई० ॥ ६ ॥

जस वाले जस सुनि संतोषे तप वाले तन सोखै ।
गुन वाले परगुन को दोषैं, मतवाले मत पोखैं ॥
देखो भाई० ॥ ७ ॥

गुरु उपदेश सहज उदयागति मोह विकलता छूटै ।
कहत 'बनारसि' है करुनारसि अलख अखय निधि लूटै ॥
देखो भाई० ॥ ८ ॥

[७४]

राग-काफी

चिन्तामन स्वामी सांचा साहिब मेरा ॥
शोक हरै तिहुँ लोक को उठ लीजतु नाम सवेरा ॥
चिन्तामन० ॥ १ ॥

सूरसमान उदोत है, जग तेज प्रताप घनेरा ।
देखत मूरत भाव सौं मिट जात मिथ्यात अंधेरा ॥
चिन्तामन० ॥ २ ॥

दीनदयाल निवारिये, दुख संकट जो निस वेरा।
मोहि अभय पद दीजिये, फिर होय नहीं भव फेरा॥
चिन्तामन० ॥ ३ ॥

बिंब विराजत आगरे, थिर थान थयो शुभ वेरा।
ध्यान धरै विनती करैं, 'बनारसि' बंदा तेरा॥
चिन्तामन० ॥ ४ ॥

[७५]

राग–गौरी

भौंदू भाई, देखि हिये की आंखैं॥
जे करषैं अपनी सुख संपति, भ्रम की संपति नाखैं॥
भौंदू भाई० ॥ १ ॥

जे आखैं अमृतरस बरसैं, परखैं केवलि वानी।
जिन्ह आखिन विलोकि परमारथ, होहि कृतारथ प्रानी॥
भौंदू भाई० ॥ २ ॥

जिन आखिन्ह मैं दशा केवलि की, कर्म लेप नहि लागै।
जिन आखिन के प्रगट होत घट, अलख निरंजन जागै॥
भौंदू भाई० ॥ ३ ॥

जिन आंखिन सों निरखि भेद गुन, ज्ञानी ज्ञान विचारै।
जिन आखिन सौं लखि स्वरूप मुनि, ध्यान धारणा धारै॥
भौंदू भाई० ॥ ४ ॥

जिन आंखिन के लगे जगत के, लगैं काज सब झूटैं।
जिन सौं गमन होइ शिव सनमुख विषय-विकार अपूठ॥
मैंनू माई० ॥ ५ ॥

जिन आंखिन में प्रभा परम की पर सहाय नहिं लेखैं।
जे समाधि सौं तकै अमरित, ढकै न पलक निमेखैं॥
मैंनू माई० ॥ ६ ॥

जिन आंखिन की ज्योति प्रगटिकै, इन आंखिन मैं भासैं।
तब इनहूं की मिटै विषमता, समता रस परगासैं॥
मैंनू माई० ॥ ७ ॥

जे आंखैं पूरन स्वरूप धरि लोकालोक लखावैं।
अब यह वह सब विकलप तजिकैं निरविकलप पद पावै॥
मैंनू माई० ॥ ८ ॥

[७६]

राग-गौरी

मैंनू माई समुझ सबद यह मेरा॥
जो तू देखे इन आंखिन सौं, तामैं कछू न तेरा॥
मैंनू माई० ॥ १ ॥

ए आंखैं भ्रम ही सौं उपजी, भ्रम ही के रस पागी।
जहं जहं भ्रम तहं तहं इनको श्रम तू इनही की रागी॥
मैंनू माई० ॥ २ ॥

ए आंखें दोउ रची चामकी, चामहि चाम विलोवै।
ताकी ओट मोह निद्रा जुत, सुपन रूप तू जोवै ॥
भौंदू भाई० ॥ ३ ॥

इन आंखिन को कौन भरोसो, ए विनसै छिन माहीं।
है इनको पुदगल सौ परचै, तू तो पुद्गल नाहीं ॥
भौंदू भाई० ॥ ४ ॥

पराधीन वल इन आखिन कों, विनु प्रकाश न सूझै।
सो परकाश अगनि रवि शशि को, तू अपनों कर बूझै ॥
भौंदू भाई० ॥ ५ ॥

खुले पलक ए कछु इक देखहि, मु दे पलक नहि सोऊ।
कबहूँ जाहि होंहि फिर कबहूँ, भ्रामक आंखें दोऊ ॥
भौंदू भाई० ॥ ६ ॥

जगम काय पाय ए प्रगटै, नहि थावर के साथी।
तू तो मान इन्हें अपने दृग, भयौ भीमको हाथी ॥
भौंदू भाई० ॥ ७ ॥

तेरे दृग मुद्रित घट-अन्तर, अन्ध रूप तू डोलै।
कै तो सहज खुलै वे आंखें, कै गुरु सगति खोलै ॥
भौंदू भाई, समुझ शवद यह मेरा ॥ ८ ॥

राग–सारग वृन्दावनी

विराजै रामायण घटमाहिं ॥

मरमी होय मरम सो जान मूरख माने नाहिं ।

विराजै० ॥ १ ॥

आतम 'राम' ज्ञान गुन 'लछमन' 'सीता' सुमति समेत ।
शुभपयोग 'वानरदल' मंडित वर विवेक 'रण खेत' ॥

विराजै० ॥ २ ॥

ध्यान 'धनुष टंकार' शोर सुनि गई विषय दिति भाग ।
भई भस्म मिथ्यामत 'लंका' उठी धारणा 'आग' ॥

विराजै० ॥ ३ ॥

जरे अज्ञान भाव 'राक्षसकुल' लरे निकांक्षित 'सूर' ।
जूझे रागद्वेष सेनापति संसै 'गढ' चकचूर ॥

विराजै ॥ ४ ॥

बिलखत 'कुम्भकरण' भव विभ्रम पुलकित मन 'दरयाव' ॥
थकित उदार वीर 'महिरावण' सेतुबंध सम भाव ॥

विराजै ॥ ५ ॥

मूर्छित 'मंदोदरी' दुराशा सजग चरन 'हनुमान' ।
घटी चतुर्गति परणति 'सेना' छुटे छपक गुण 'बान' ॥

विराजै० ॥ ६ ॥

निरखि सकति गुन 'चक्र सुदर्शन' उदय 'विभीषण' दीन ।
फिरै 'कबंध' मही 'रावण की' प्राण भाव शिरहीन ॥

विराजै० ॥ ७ ॥

इह विधि सकल साधु घट, अन्तर होय सहज 'सग्राम'।
यह विवहार दृष्टि 'रामायण' केवल निश्चय राम॥
विराजै० ॥ ८ ॥

[७८]

राग-सारंग

हम वैठे अपनी मौन सौं॥
दिन दस के मिहमान जगत जन, वोलि विगारै कौनसौं।
हम० ॥ १ ॥
गये विलाय भरम के वादर, परमारथ-पथ-पौनसौं॥
अव अन्तर गति भई हमारी, परचे राधारौनसौं॥
हम० ॥ २ ॥
प्रगटी सुधापान की महिमा, मन नहि लागै वौनसौं।
छिन न सुहाय और रस फीके, रुचि साहिव के लौनसौं॥
हम० ॥ ३ ॥
रहे अघाय पाय सुख सपति, को निकसै निज भौनसौं।
सहज भाव सदगुरु की सगति, सुरझै आवागौनसौं॥
हम० ॥ ४ ॥

[७९]

राग-सारंग

दुविधा कव जैहै या मन की॥
कव निजनाथ निरंजन सुमिरौं, तज सेवा जन-जन की॥
दुविधा० ॥ १ ॥

कब रुचि सौं पीवैं दृग चातक, बूंद अखयपद घन की।
कब शुभ ध्यान धरौं समता गहि, करूं न ममता तन की॥
दुविधा० ॥ २ ॥

कब घट अन्तर रहै निरन्तर दिढ़ता सुगुरु-वचन की।
कब सुख लहौं भेद परमारथ मिटै धारना धन की॥
दुविधा० ॥ ३ ॥

कब घर छांडि होऊं एकाकी लिये लालसा वन की।
ऐसी दशा होय कब मेरी हौं बलि बलि वा छन की॥
दुविधा० ॥ ४ ॥

[८०]

राग-धनाश्री

चेतन तोहि न नेक संभार॥
नख सिख लौं दिढ़ बंधन बैढ़े कौन करै निरवार॥
चेतन ॥ १ ॥

जैसें आग पखान काठ में लखिय न परत लगार।
मदिरापान करत मतवारो ताहि न कछू विचार॥
चेतन० ॥ २ ॥

ज्यों गजराज पखार आप तन आपहि डारत छार।
आपहि उगलि पाट को कीरा तनहि लपेटत तार॥
चेतन० ॥ ३ ॥

सहज कबूतर लोटन को सो, खुले न पेच अपार।
और उपाय न बनै बनारसि सुमिरन भजन अधार॥
चेतन०॥ ४॥

[८१]

राग–आसावरी

रे मन! कर सदा सन्तोष,
जातैं मिटत सब दुख दोष॥ रे मन०॥ १॥

बढत परिग्रह मोह बाढत,
अधिक तृषना होति।
बहुत ईंधन जरत जैसै,
अगनि ऊंची जोति॥ रे मन०॥ २॥

लोभ लालच मूढ जन सो,
कहत कंचन दान।
फिरत आरत नहिं विचारत,
धरम धन की हान॥ रे मन०॥ ३॥

नारकिन के पाय सेवत,
सकुचि मानत संक।
ज्ञान करि बूझै 'बनारसी'
को नृपति को रंक॥ रे मन०॥ ४॥

[८२]

राग–आसावरी

तू आतम गुण जानि रे जानि
साधु वचन मनि आनि रे आनि ॥ तू आतम० ॥ १ ॥
भरत चक्रवर्ति षटखंड साधि
भावना भावति लही समाधि ॥ तू आतम० ॥ २ ॥
प्रसन्नचन्द्र-रिषि भयो सरोष
मन फरत फिर पायो मोक्ष ॥ तू आतम० ॥ ३ ॥
रावन समकित भयो उदोत
तब बांध्यो तीर्थंकर गोत ॥ तू आतम० ॥ ४ ॥
सुकल ध्यान धरि गयो सुकुमाल
पहुच्यो पंचमगति तिहिं काल ॥ तू आतम० ॥ ५ ॥
दिढ आहार करि हिंसाचार
गये मुकति निज गुण अवधार ॥ तू आतम० ॥ ६ ॥
देखहु परतछ भृंगी ध्यान
करत कीट भयो ताहि समान ॥ तू आतम० ॥ ७ ॥
कहत 'बनारसि बारम्बार
और न तोहि छुड़ावन हार ॥ तू आतम० ॥ ८ ॥
[८३]

राग–विलावल

ज्यौं मौं प्रभु पाइये सुन पंडित प्रानी।
ज्यौं मथि माखन काढ़िये दधि मेलि मथानी ॥
ज्यौं० ॥ १ ॥

ज्यों रसलीन रसायनी, रसरीति अराधै ।
त्यों घट मे परमारथी, परमारथ साधै ॥
ऐसैं० ॥ २ ॥

जैसे वैद्य विथा लहै, गुण दोष विचारै ।
तैसे पडित पिंड की, रचना निरवारै ॥
ऐसैं० ॥ ३ ॥

पिंड स्वरूप अचेत है, प्रभुरूप न कोई ।
जानै मानै रवि रहै, घट व्यापक सोई ॥
ऐसैं० ॥ ४ ॥

चेतन लच्छन जीव है, जड लच्छन काया ।
चचल लच्छन चित्त है, भ्रम लच्छन माया ॥
ऐसैं० ॥ ५ ॥

लच्छन भेद विलोकिये, सुविलच्छन वेदै ।
सत्तसरूप हिये धरै, भ्रमरूप उछेदै ॥
ऐसैं० ॥ ६ ॥

ज्यों रज सोधै न्यारिया, धन सौं मनकीलै ।
त्यों मुनिकर्म विपाक मे, अपने रस भीलै ॥
ऐसैं० ॥ ७ ॥

आप लखै जब आपको, दुविधा पद मेटै ।
सेवक साहिब एक हैं, तब को किहि भेंटै ॥
ऐसैं० ॥ ८ ॥

राग–बिलावल

ऐसें क्यों प्रभु पाइये सुन मूरख प्राणी।
जैसे निरख मरीचिका मृग मानत पानी॥
ऐसें० ॥ १ ॥

ज्यों पकवान चुरैल का विषयारस त्यों ही।
ताके लालच तू फिरै भ्रम भूलत यों ही॥
ऐसें० ॥ २ ॥

देह अपावन अथिरकी अपनी करि मानी।
भाषा मनसा करम की तैं निज कर जानी॥
ऐसें० ॥ ३ ॥

नाथ कहावत लोक की सो तो नहीं सूझै।
जाति जगत की कल्पना तामें तू जूझै॥
ऐसें० ॥ ४ ॥

माटी भूमि पहार की तुह संपति सूझै।
प्रगट पहेली मोह की तू तउ न बूझै॥
ऐसें० ॥ ५ ॥

तैं कबहूँ निज गुण विषै निज दृष्टि न दीनी।
पराधीन परवस्तुसों अपनायत कीनी॥
ऐसें० ॥ ६ ॥

ज्यों मृगनाभि सुवास सों ढूँढत वन दौरे।
त्यों तुझ में तेरा धनी तू खोजत औरे॥
ऐसें ॥ ७ ॥

करता भरता भोगता, घट मो घट माहीं।
ज्ञान विना सद्गुरु विना, तू समुझत नाहीं ॥
ऐसें० ॥ ८ ॥

[८५]

राग–रामकली

मगन ह्वै आराधो साधो अलख पुरष प्रभु ऐसा।
जहा जहा जिस रस सौं राचै, तहां तहा तिस भेसा ॥
मगन ह्वै० ॥ ॥ १ ॥

सहज प्रधान प्रधान रूप मे, ससै मे ससैसा।
धरै चपलता चपल कहावै, लै विधान में लैसा ॥
मगन ह्वै० ॥ २ ॥

उद्यम करत उद्यमी कहिये, उदयसरुप उदैसा।
व्यवहारी व्यवहार करम में, निहचै मे निहचैसा ॥
मगन ह्वै० ॥ ३ ॥

पूरण दशा धरै सम्पूरण, नय विचार में तैसा।
दरवित सदा अखै सुखसागर, भावित उतपति खैसा ॥
मगन ह्वै० ॥ ४ ॥

नाहीं कहत होइ नाहींसा, है कहिये तो हैसा।
एक अनेक रूप है वरता, कहौं कहां लौं कैसा ॥
मगन ह्वै० ॥ ५ ॥

वह अपार ज्यों रतन अमोलिक बुद्धि विवेक ज्यों ऐसा
कल्पित वचन विलास 'बनारसि' वह जैसे का तैसा ॥
मगन ॥ ६ ॥

[८६]

राग–रामकली

चेतन तू तिहुकाल अकेला

नदी नाव संजोग मिले ज्यों
ज्यों कुटंब का मेला ॥ चेतन० ॥ १ ॥

यह संसार असार रूप सब
ज्यों पटपेखन खेला ।
सुख सम्पति शरीर जल बुद बुद
विनसत नाहीं बेला ॥ चेतन० ॥ २ ॥

मोह मगन आतम गुन भूलत
परि तोहि गल जेला ॥
मैं मैं करत चहूँ गति डोलत
बोलत जैसे छेला ॥ चेतन० ॥ ३ ॥

कहत बनारसि मिथ्यामत तज
होइ सुगुरु का चेला ।
तास वचन परतीत आन जिय
होइ सहज सुरझेला ॥ चेतन० ॥ ४ ॥

[८७]

राग-भैरव

या चेतन की सब सुधि गई,
व्यापत मोहि विकलता गई॥
है जड रूप अपावन देह,
तासौं राखै परम सनेह ॥ १ ॥
आइ मिले जन स्वारथ बंध,
तिनहि कुटम्ब कहै जा बंध॥
आप अकेला जनमै मरै,
सकल लोक की ममता धरै ॥ २ ॥
होत विभूति दान के दिये,
यह परपच विचारै हिये ॥
भरमत फिरै न पावइ ठौर,
ठानै मूढ और की और ॥ ३ ॥
बंध हेत को करै जु खेद,
जानै नहीं मोक्ष को भेद ।
मिटै सहज संसार निवास,
तब सुख लहै बनारसीदास ॥ ४ ॥

[८८]

राग-धनाश्री

चेतन उलटी चाल चले ॥
जड संगत तैं जडता व्यापी निज गुन सकल टले ।
चेतन० ॥ १ ॥

हित सों विरचि ठगनि सों रचि मोह पिशाच छले।
हंसि हंसि फंद सवारि आप ही मेलत आप गले॥
चेतन० ॥ २॥

आय निकसि निगोद सिंधुतें फिर तिह पंथ टले।
कैसे परगट होय आग जो दबी पहार तले॥
चेतन० ॥ ३॥

भूले भव भ्रम बीचि बनारसी तुम सुरज्ञान भले।
धर शुभ ध्यान ज्ञान नौका चढ़ि बैठे ते निकले॥
चेतन ॥ ४॥

[८६]

राग आसावरी

साधो छीज्यो सुमति अकेली
जाके समता संग सहेली॥ साधो०॥
ये हैं सात नरक दुख हारी
तेरे तीन रतन सुखकारी।
ये हैं अष्ट महा मद त्यागी
तज सात व्यसन अनुरागी॥ साधो०॥१॥
तजै क्रोध कषाय निशानी
य हैं मुक्तिपुरी की रानी॥
ये हैं मोहसौं नह निसारै
तजै लोभ जगत उजारै॥ साधो०॥२॥

ये हैं दर्शन निरमल कारी,
गुरू ज्ञान सदा सुभकारी ॥
कहे बनारसी श्रीजिन भजले,
यह मति है सुखकारी ॥ साधो० ॥३॥
[६०]

जगजीवन

(संवत् १६५०–१७२०)

कवि जगजीवन आगरे के रहने वाले थे। ये अग्रवाल जैन थे तथा गर्ग इनका गोत्र था। इनके पिता का नाम अभयराज एवं माता का नाम मोहनदे था। अभयराज जाफरखा के दीवान थे जो बादशाह शाहजहा के पाच हजारी उमराव थे। ये बड़े कुशल शासक थे। इनके पिता अभयराज सर्वाधिक सुखी व्यक्ति थे इनके अनेक पत्नियां थी जिनमें से सबसे छोटी मोहनदे से जगजीवन का जन्म हुआ था।

जगजीवन स्वय विद्वान् थे और बनारसीदास के प्रसशकों में से थे इनकी एक शैली भी थी जो अध्यात्म शैली कहलाती थी। प० हेमराज रामचन्द्र, सघी मथुरादास, भवालदास, भगवतीदास एव प० जगजीवन

इस शैली के प्रमुख सदस्य थे। पं हीरानन्द ने समवसरणविधान की रचना सम्वत् १७०१ में की थी। उन्होंने अपनी रचना में जगजीवन का परिचय निम्न प्रकार लिखा है—

अब सुनि नगरराज आगरा सकल सोभ अनुपम सागरा।
साहजहां भूपति है जहां राज करै नयमारग तहां ॥ ७५ ॥
* * * * *
ताको जाफरखां उमराउ पंच हजारी प्रगट कराउ।
ताको अगरवाल दीवान गरग गोत सब विधि परधान ॥७८॥
संघही अभैराज जानिए, सुखी अधिक सब करि मानिए।
वनितागण नाना परकार, तिनमें लघु मोहनदे सार ॥ ८० ॥
ताको पूत पूत सिरमौर जगजीवन जीवन की ठौर ॥
सुन्दर सुभगरूप अभिराम परम पुनीत धरम धन-धाम ॥८१॥

जगजीवन ने सम्वत् १७०१ में बनारसीविलास का सम्पादन किया। इसमें बनारसीदास की छोटी-छोटी रचनाओं का संग्रह है। ये स्वयं भी अच्छे कवि थे और अब तक इनके ४५ पद उपलब्ध हो चुके हैं। इन छोटे छोटे पदों में ही इन्होंने अपने संक्षिप्त भावों को लिखने का प्रयास किया है। अधिकांश पद स्तुति परक है। समय सब हीलत बनं की छाया' इनका बहुत ही प्रिय पद है। कवि ने और कितनी रचनायें लिखी यह अभी खोज का विषय है।

राग-मल्हार

जगत सब दीसत घन की छाया ॥
पुत्र कलत्र मित्र तन सपति,
उदय पुद्गल जुरि आया।
भव परनति वरषागम सोहै,
आश्रव पवन वहाया ॥ जगत० ॥ १ ॥
इन्द्रिय विषय लहरि तडता है,
देखत जाय विलाया ।
राग दोष वगु पकंति दीरघ,
मोह गहल घरराया ॥ जगत० ॥ २ ॥
सुमति विरहनी दुख दायक है,
कुमति सजोग ति भाया।
निज सपति रतनत्रय गहि कर,
मुनि जन नर मन भाया ॥
सहज अनत चतुष्टय मदिर,
जगजीवन सुख पाया ॥ जगत० ॥ ३ ॥

[६१]

राग-रामकली

आछी राह बताई, हो राज म्हाने ॥ आछी० ॥
निपट अन्धेरो भव वन मांही।
ज्ञान दीपका दिखाई ॥ हो राज० ॥ १ ॥

समकित तो बटसारी कीनी ।
चारित्र सिवपद दिवाइ ॥ हो राज० ॥ २ ॥
पार्श्वे प्रभु अब सिवपुर पाम्यां ।
जगजीवण सुखदाई ॥ हो राज० ॥ ३ ॥

[६२]

राग-रामकली

आजि मैं पायो प्रभु दरसण सुखकार ॥
दरसि दरस जीव चैसी आई ।
कबहूँ न छांडू बार ॥ आजि मैं० ॥ १ ॥
दरसण करत महा सुख उपजत ।
तवज्ञिन कटै भी भार ॥
वैन विजय करता दुख हरता ।
जगजीवण आधार ॥ आजि मैं० ॥ २ ॥

[६३]

राग-बिलावल

करिये प्रभु ध्यान पाप कटै भव भव के ।
या मैं बहोत भलाई हो ॥ करिये । ० ॥
धरम कारिज की या बिरिया है वो प्यारे ।
आलसी नीद निवारी हो ॥ करिये प्रभु० ॥ १ ॥

तन सुध करिकै, मन थिर कीज्ये हो प्यारे।
जिन प्रभु का नाम उचारी हो ॥ करिये प्रभु० ॥ २ ॥
जगजीवन प्रभु को, या विधि ध्यावो हो प्यारे।
येही शिव सुखकारी हो ॥ करिये प्रभु० ॥ ३ ॥

[६४]

राग-सिन्दूरिया

थे म्हारै मन भाया जी, नेम जिनद ॥
अद्भुत रूप अनूपम राजित।
कोटि मदन किये मद ॥ थे म्हारै मन० ॥ १ ॥
राग दोप तैं रहित हो स्वामी।
तारे भविजन वृन्द ॥ थे म्हारै मन७ ॥ २ ॥
जगजीवण प्रभु तेरे गुण गावै।
पावै सिव सुखकंद ॥ थे म्हारै मन० ॥ ३ ॥

[६५]

राग-सिन्दूरिया

दरसण कारण आया जी महाराज,
प्रभूजी थाका दरसण कारण आया जी महाराज ॥
दरसण की अभिलाष भई जब,
पुन्य वृक्ष उपजाया जी ॥
प्रभू जी० ॥ १ ॥

तुम समीप आय कू आयो
कुपथ पुण्य सुधाया जी ॥
प्रभू जी० ॥ २ ॥

तुम मुखचन्द विलोकत जाके,
फल अमृत फलि आया जी ॥
प्रभू जी० ॥ ३ ॥

जगजीवण पावै शिव सुख लहै,
निश्चै मेँ सरै न्याया जी ॥
प्रभू जी० ॥ ४ ॥

[६६]

राग-रामकली

निस दिन ध्याइजो जी प्रभु को
जो नित मंगल गाइजो जी ॥

अष्ट द्रव्य उत्तम कू लेकरि
प्रभु पद पूज रचाइजो जी ॥
निस दिन० ॥ १ ॥

अति उछाह मन वच तन सेती
हरषि हरषि गुण गाइजो जी ॥
निस दिन० ॥ २ ॥

इनही सू सुरपदवी पावै
अनुक्रम सिवपुर जाइजो जी ॥
निस दिन ॥ ३ ॥

श्री गुरुजी ये सिक्षा वताई,
जगजीवण सुखदाइलोजी ॥
निस दिन० ॥ ४ ॥

[६७]

राग-मल्हार

प्रभूजी आजि मैं सुख पायो
अघ नाशन छवि समता रस भीनी,
सो लखि मैं हरपायो ॥
प्रभु जी० ॥ १ ॥
भव भव के मुझि पाप कटे हैं,
ज्ञान भान दरसायो ॥
प्रभु जी० ॥ २ ॥
जगजीवण के भाग जगे हैं,
तुम पद सीस नवायो ॥
प्रभु जी० ॥ ३ ॥

[६८]

राग-मल्हार

प्रभु जी म्हारो मन हरष्यो छै आजि ॥
मोह नींद मैं सूतो छो मै,
थे जगायो आजि प्रभु जी ।

धरम सुनायो मेरा चित हुलसायो
ये कीनू उपगार ॥
प्रभु जी० ॥ १ ॥

निज परणति प्रभू भेद बतायो जी
भरम मिटायो सुख पायो ये कीनू हितसार
प्रभु जी० ॥ २ ॥

निज चरणा को ध्यान धारयो जी
करम नसाये सिवपाये जगजीवण सुखकार ॥
प्रभु जी० ॥ ३ ॥

[६४]

राग—कनड़ो

हो मन मेरा तू धरम नैं जाणदा
जा सेये तैं सिव सुख पावै
सो तुम मोहि पिछाणदा ॥
हिंसा कर फुनि परधन चोरा
पर त्रिय सौं रति चांहणा ॥ हो मन० ॥ १ ॥
झूठ वचनि करि बुरो कियो पर
परिग्रह भार बंधावणा ॥
आठ पहर रुण्या पर संकल्पैं
रूद्र भाव मैं विहरावणा ॥ हो मन० ॥ २ ॥

क्रोध मान छल लोभ करवो हो,
मद मिथ्यातैं न छांडिदा ॥
यह अघकरि सुख सम्पति चाहै,
सो कबहूँ न लहांवदा ॥ हो मन० ॥ ३ ॥
इनकूं त्यागि करो प्रभु सुमरण,
रतनत्रय उर लांवदा ॥
जगजीवण तैं वही सुख पावै,
अनुक्रम शिवपुर पांवदा ॥ हो० ॥ ४ ॥
[१००]

राग–बिलावल

मूरति श्री जिनदेव की
मेरै नैंनन माहि वसी जी ॥
अद्भुत रूप अनोपम है छवि,
रागदोष न तनकसी ॥
मूरति० ॥ १ ॥
कोटि मदन वारू या छवि पर,
निरखि निरखि आनन्द भर वरसी ॥
जगजीवन प्रभु की सुनि वांणी,
सुरग मुकति मगदरसी ॥
मूरति० ॥ २ ॥
[१०१]

राग—विलावल

जिन थांको दरस करयो जी
म्हारे आजि भयो छी आनन्द ॥
आजि ही नैन सुफल भये मेरे,
मिटे सकल दुख दंद ॥
मोह सुभट सब दूरि भगे हैं
उपज्यो ग्यान अमंद ॥ जिन थांको० ॥ १ ॥
कुमि प्रभू पूजा रची अब तेरी
नसे कम सब विघ्न ॥
जगजीवण प्रभु सरण गही मैं,
दीजे सिव सुख वृंद ॥ जिन थांको० ॥ २ ॥
[१०२]

राग—मल्हार

जनम सफल कीजो जी प्रभुजी
अब थांका चरणां आया ॥
म्हे तो म्हाको जनम ॥
अमृतुत कल्पवृक्ष चिंतामणि
सो अब मैं हम पाया ॥
तीन लोक नायक सुखदायक,
आदिनाथ पद ध्याया ॥
जिनजी अब० ॥ १ ॥

दरस कीयो सब वाञ्छापूरी,
तुम पद शीश नवाया ॥
जिनवांणी सुणि कै चित हरण्यो,
तत्व भेद दरसाया ॥
जिनजी अब० ॥ २ ॥

यातैं मो हिय सरधा उपजी,
रहिये चरण लुभाया ॥
जगजीवण प्रभु उचित होय सो
जो कीज्ये मन भाया ॥
जिनजी अब० ॥ ३ ॥

[१०३]

राग–बिलावल

जामण मरण मिटावो जी,
महाराज म्हारो जामण मरण० ॥
भ्रमत फिरयो चहुगति दुख पायो,
सोही चाल छुडावो जी ॥
महाराज म्हारो जामण मरण० ॥ १ ॥
विनही प्रयोजन दीनबन्धु तुम,
सोही विरद निवाहो जी ॥
महाराज म्हारो० ॥ २ ॥

जगजीवन प्रभु तुम सुखदायक
मोक्ष शिवसुख दयाजो जी ॥
महाराज म्हारो० ॥ ३ ॥

[१०४]

राग–रामकली

हो दयाल दया करियो ॥
तनक बूंद ने यह छवि कीनी
जाकी लाज गहियो ॥ हो० ॥ १ ॥
मैं अजान कछु जानत नाही
गुन औगुन सब सम्भारियो ॥
राखो लाज सरन आपकी
रविसुत त्रास मिटइयो ॥ हो ॥ २ ॥
मैं अजान भगत नहीं कीनी
तुम दयाल नित रहियो ॥
जगजीवन की है यह बिनती
आप अनन्य कहियो ॥ हो ॥ ३ ॥

[१०५]

राग–बिलावल

ये ही चित धारणां जपिये श्री अरिहंत ॥
भ्रमत फिरै भवि जग में जियरा
जिन चरण संग लागणां ॥
यही ॥ १ ॥

जिन वृप तैं जो तप व्रत सजय
सोही निति-प्रति पालणा ॥
येही० ॥ २ ॥

जगजीवण प्रभु के गुण गाकरि
मुक्ति वधू सुख जाचणां ॥
येही० ॥ ३ ॥

[१०६]

राग-मल्हार

भला तुम सुं नैंनां लगे ॥
भाग बडे मैंरे साइया
तुम चरणन मैं पगे ॥ भला० ॥ १ ॥
तिहारो दरस जवलू नहि पायो,
दुष्ट करम मिलि ठगे ॥ भला० ॥ २ ॥
प्रभु मूरति समता रस भीनीं,
लखि लखि फिर उमगे ॥ भला० ॥ ३ ॥
जगजीवण प्रभु ध्यान तिहारो,
दीजे सिव सुख मगे ॥ भला० ॥ ४ ॥

[१०७]

राग–सारग

अहोव काल बीते पाये हो मेरे प्रभुरा
थारण तरण जिहाज ॥
दोउ आनन्द भयें इक दरसण
अर धर्म श्रवण सुख साजै ॥
अहोव० ॥ १ ॥
दोउ मारग बसे, इक श्रावग
अर धरम महा मुनिराज ॥
अहोव० ॥ २ ॥
जगजीवण मोरी इह भवसुख
अर परभव शिवको राज ॥
अहोव० ॥ ३ ॥
[१ ८]

जगतराम

(संवत् १६८०-१७४०)

जगतराम का दूसरा नाम जगराम भी था। पद्मनन्दि पचविंशति भाषा के कर्ता जगतराम भी समवत ये जगतराम ही थे जिन्होंने अपनी रचनाओं में विभिन्न नामों का उपयोग किया है। इनके पिता का नाम नदलाल एव पितामह का नाम माईदास था। ये सिंघल गोत्रीय अग्रवाल थे। पहिले ये पानीपत में रहते थे और बाद में आगरा आकर रहने लगे। आगरा उस समय प्रसिद्ध साहित्यिक केन्द्र था तथा कुछ समय पूर्व ही वहा बनारसीदास जैसे उच्च कवि हो चुके थे।

जगतराम हिन्दी के अच्छे कवि थे। इनका साहित्यिक जीवन सम्वत् १७२० से १७४० तक रहा होगा। सम्वत् १७२२ में इन्होंने

पद्मनन्दि पंचविंशति भाषा की रचना आगरे में ही समाप्त की और इसके पश्चात् सम्यक्त्वकौमुदी कथा आगमविलास आदि ग्रन्थों की रचना की। पदों के निर्माण की ओर इनकी रुचि कब से हुई इसका तो कोई उल्लेख नहीं मिलता लेकिन सम्भवतः ये अपने अन्तिम जीवन में भजनानन्दी हो गये थे इसलिए इन्होंने 'भजन सम नहीं काज दूजो' पद की रचना की थी। ये पद रचना एवं पद पाठ में इतने तल्लीन हो गये कि इन्हें भजन पाठ के सदृश अन्य कार्य फीके नजर आने लगे।

कवि के पद साधारण स्तर के हैं। ये अधिकांशतः स्तुति परक हैं एवं स्तोत्रोपक हैं। पदों की भाषा पर राजस्थानी एवं ब्रज भाषा का प्रभाव है। अब तक इनके १५२ पद प्राप्त हो चुके हैं।

राग-सोरठ

रे जिय कौन सयाने कीना ।
पुद्गल कै रस भीना ॥
तुम चेतन ये जड जु विचारा,
काम भया अतिहीना ॥ रे जिय० ॥ १ ॥
तेरे गुन दरसन ग्यानादिक,
मूरति रहित प्रवीना ।
ये सपरस रस गध वरन मय,
छिनक थूल छिन हीना ॥ रे जिय० ॥ २ ॥
स्वपर विवेक विचार विना सठ,
धरि धरि जनम ठगीना ॥
जगतराम प्रभु सुमरि सयानैं,
और जु कछू कमीना ॥ रे जिय० ॥ ३ ॥

[१०६]

राग-रामकली

जतन बिन कारज विगरत भाई ॥
प्रभु सुमरन तें सब सुधरत है,
ता मैं क्यों अलसाई ॥ जतन० ॥ १ ॥
विषै लीनता दुख उपजावत,
लागत जहां ललचाई ॥

पद्गुलन को व्योहार नय सहो,
समझ न परत ठगाई ॥ जतन० ॥ २ ॥
सतगुरु शिक्षा अमृत पीवो
अब करन कठोर सगाइ ॥
ज्यों अजरामर पद को पावो
जगतराम सुखदाई ॥ जतन० ॥ ३ ॥

[११०]

राग-ललित

कैसे होरी खेलो खेलि न आवै ॥
प्रथम ही पाप हिंसा जा मांही
दूजै झूठ सपावै ॥ कैसे० ॥ १ ॥
तीजे चोर कसायिन जामें
नैंक न रस उपजावै ॥
चौथें परनारी सौं परचे
सीख करत मन लावै ॥ कैसे ॥ २ ॥
त्रसना पाप पांचवां जामें
छिन छिन अधिक बढावै ॥
सब विधि अशुभ रूप जो फागिज
करत ही चित्त अपसावै ॥ कैसे० ॥ ३ ॥
अवर भव खेल अति नीके
खेलत हो सुखसावै ॥

जगतराम सोई ध्यलिये,
जो जिन धरम बढावैं ॥ कैसें० ॥ ४ ॥
[१११]

राग-कनडो

गुरु जी म्हारो मनरो निपट अजान ॥
वार वार समझावत हौं तुम,
तोऊ न धरत सरधान ॥ गुरु० ॥ १ ॥
विषै भोग अभिलाषा लागी,
सहत काम के बान ॥
अनरथ मूल क्रोध सो लिपटयो,
बहोरि धरै बहु मांन ॥ गुरु० ॥ २ ॥
छल को लिये चहत कारज को,
लोभ पग्यो सब थान ॥
विनासीक सब ठाठ बन्या है,
ता परि करइ गुमान ॥ गुरु० ॥ ३ ॥
गुरु प्रसाद तै सुलट होयगो,
दयो उपदेस सुदान ॥
जगतराम चित को इत ल्यावो,
सुनि सिद्धान्त बखान ॥ गुरु० ॥ ४ ॥
[११२]

राग-विलावल

जिनकी वानी भव मनमानी ॥
जाके सुनत मिटत सब दुविधा,
प्रगटत निज निधि छानी ॥ जिनकी० ॥ १ ॥
तीर्थंकरादि महापुरुषनि की
जामें कथा सुहानी ॥
प्रथम वेद यह भेद जास की,
सुनत होय अघ हानी ॥ जिनकी० ॥ २ ॥
जिनकी लोक अलोक काल-
कृत व्यारौं गति सहनानी ॥
दुतिय वेद इह भेद सुनत होय
मूरख हू सरधानी ॥ जिनकी० ॥ ३ ॥
मुनि श्रावक आचार यताव्रत
तृतीय वेद यह ठांनी ॥
जीव अजीवादिक तत्वनि की
चतुरथ वेद कहानी ॥ जिनकी० ॥ ४ ॥
मम्य पंच करि रासी जिम तें
धन्य धन्य गुरु ध्यांनी ॥
जाके पढत सुनत कछु सममत
जगतराम से प्रानी ॥ जिनकी० ॥ ५ ॥

राग-ईमन

कहा करिये जी मन वस नांही ॥

ऐंचि खैंचि तुम चरनन लाऊं,

छिन लागत छिन फिरि जाही ॥ कहा० ॥ १ ॥

नैंक असाता कर्म झकोरै,

सिथिल होत अति मुरझाही ॥ कहा० ॥ २ ॥

साता उदय तनक जव पावत,

तव हरषित ह्वै विकसाहीं ॥ कहा० ॥ ३ ॥

जगतराम प्रभु सुनौ वीनती,

सदा वसौ मेरे उर माही ॥ कहा० ॥ ४ ॥

[११४]

राग-ईमन

औसर नीको वनि आयो रे ॥

नरभव उत्तम कुल सुभ सगति,

जैन धरम तैं पायो रे ॥ औसर० ॥ १ ॥

दीरघ आयु समझि हूँ पाई,

गुरु निज मन्त्र बतायो रे ॥

वानी सुनत सुनत सहजै ही,

पुन्य पदारथ भायो रे ॥ औसर० ॥ २ ॥

कमी नहीं कारण मिलिवे की

अब करि क्यों मुरझायो रे ॥

विषम कषाय त्यागि घर सेती

पूजा दान लुभायो रे ॥ औसर० ॥ ३ ॥

देव धरम गुरु हो सरधानी

स्वपर विवेक मिलायो रे ॥

बगतराम मति है गति माफिक,

परि उपदेश बतायो रे ॥ औसर० ॥ ४ ॥

[११५]

राग—रामकली

अब ही हम पायौ विसराम ॥

गृह कारिज को चितवन भूले

जब आये जिन धाम ॥ अब० ॥ १ ॥

दरसन करियौ नैननि सौं

मुख उचरे जिन नाम ॥

कर जुग जोरि अमय पानी सुनि

मस्तग करत प्रनाम ॥ अब० ॥ २ ॥

सन्मुख रहें रहत चरननि मुख

हृदय सुमरि गुन धाम ॥

नरभव सफल भयो या विधि सौं

मन वांछित फल

पुन्य उद्योत होत जिय जाके,
सो आवत इह ठाम ॥
साधरमी जन सहज सुखकारी,
रलि मिलि है जगराम ॥ अब० ॥ ४ ॥

[११६]

राग–ईमन

अहो, प्रभु हमरी विनती अब तो अवधारोगे ॥
जामन मरन महा दुख मोकों सो तुम ही टारोगे ॥
अहो० ॥ १ ॥
हम टेरत तुम हेरत नाही, यौं तो सुजस बिगारोगे ॥
हम हैं दीन, दीन बन्धू तुम यह हित कब पारोगे ॥
अहो० ॥ २ ॥
अधम उधारक विरद तुम्हारो, करणी कहा विचारोगे ॥
चरन सरन की लाज यही है जगतराम निसतारोगे ॥
अहो० ॥ ३ ॥

[११७]

राग–सिन्दूरिया

कैसा ध्यान धरा है, री जोगी ॥
नगन रूप दोऊ हाथ झुलाये,
नासा दृष्टि खरा है ॥
री जोगी० ॥ १ ॥

क्षुधा तृषादि परीसह विजयी
आतम रंग पग्या है ॥
विषय कषाय त्यागि धरि धीरज
अमन संग अड्या है ॥
री जोगी० ॥ २ ॥

बाहिर तन मलीन सा दीसत
अन्तरंग उजला है ॥
अगरचन्द छवि ध्यान साधु को
नमो नमो उचरा है ॥
री जोगी० ॥ ३ ॥

[११८]

राग–विलावल

चिरंजीवो यह बालक री
जो भक्तन को आधार करी ॥ चिरं० ॥
समदृष्टिजैनन्दन जग वंदन
श्रीहरिचंदा कुमार करी ॥ चिरं० ॥ १ ॥
आठो गरभ समै सुर पूज्यो
तब ही प्रजा समाल करी ॥
पन्द्रह मास रतन के बरषे
प्रगटयो तिनकी भास करी॥ चिरं० ॥ २ ॥

तब सुरगिरि पर देवोंने जाकी,
कलश हजार प्रक्षाल करी ॥
शची इन्द्र दोऊ नांचैं गावै,
उनको थो वहताल करी ॥ चिर० ॥ ३ ॥
जाकै बालपने की महिमा,
देखन ही इति हाल करी ॥
वय लघु लऊ सबनि के गुरु प्रभु,
जगतराम प्रतिपाल करी ॥ चिर० ॥ ४ ॥

[११६]

राग-सिन्दूरिया

ता जोगी चित लावो मोरे वाला ॥
सजम डोरी शील लगोटी घुलघुल, गाठ लगावे मोरे वाला ।
ग्यान गुदड़िया गल विच डाले, आसन दृढ जमावे ॥ १ ॥
अलखनाथ का चेला होकर मोहका कान फड़ावे मोरेवाला ।
धर्न शुक्ल दोऊ मुद्राडाले, कहत पार नहीं पावे मोरे ॥ २ ॥
क्षमा की सौति गलैं लगावै, करुणा नाद बजावे मोरेवाला ।
ज्ञान गुफा में दीपक जोके चेतन अलख जगावे मोरेवाला ॥ ३ ॥
अष्टकर्म काठ की धूनी ध्यानकी अगनि जलावै मोरेवाला ।
उत्तम क्षमा जान भस्मीको, शुद्ध मन अ ग लगावे मोरेवाला ॥४॥
इस विधि जोगी बैठ सिंहासन, मुक्तिपुरी की धावे मोरेवाला ।
वीस आभूषणधार गुरु ऐसे फेरे न जगमें आवे मोरेवाला ॥ ५ ॥

राग–दरबारी कान्हरो

तुम साहिब मैं चेरा मेरा प्रभुजी हो ॥
चूक चाकरी मो चेरा की साहिब जी चित मेरा ॥१॥
टहल यथाविधि बन नहीं आवे करम रहे कर घेरा ।
मेरो अवगुण इतनो ही लीजे निश दिन सुमरन तेरा ॥२॥
करो अनुग्रह अब मुझ ऊपर मेटो भव भवफेरा ।
'जगतराम' कर जोड़ वीनवै राखो चरणन नेरा ॥३॥

[१२१]

राग–जंगला

नहिं गोरो नहिं कारो चेतन अपनो रूप निहारो ॥
दर्शन ज्ञान मई चिन्मूरत सकल करमतें न्यारो रे ॥१॥
जाके बिन पहिचान जगत में सह्यो महा दुख भारो रे ।
जाके लखे उदय हो तत्क्षण केवल ज्ञान उज्यारो रे ॥२॥
कर्मजनित पर्याय पायके कीनों तहां पसारो रे ।
आपापरको रूप न जान्यो तातें भव उरझारो रे ॥३॥
अब निजमें निजकूं अवलोकूं जो हो भव सुरझारो रे ।
'जगतराम' सब विधि सुख सागर पद पाऊं अविकारो रे ॥४॥

[१२२]

राग-मल्हार

प्रभु विन कौन हमारो सहाई ॥
और सबै स्वारथ के साथी,
तुम परमारथ भाई ॥ प्रभु० ॥ १ ॥
भूलि हमारी ही हमको इह
भई महा दुखदाई ॥
विषय कषाय सरप सग सेयो,
तुमरी सुधि विसराई ॥ प्रभु० ॥ २ ॥
उन डसियो विष जोर भयो तब,
मोह लहरि चढि आई ॥
भक्ति जडी ताके हरिवे कौं,
गुरु गारुड वताई ॥ प्रभु० ॥ ३ ॥
यातैं चरन सरन आये हैं,
मन परतीति उपाई ॥
अव जगराम सहाय किये ही,
साहिव सेवक तांई ॥ प्रभु० ॥ ४ ॥

[१२३]

राग-जौनपुरी

भजन सम नहीं काज दूजो ॥
धर्म अग अनेक यामें, एक ही सिरताज ।

करत जाके दुरत पातक, जुरत संत समाज ॥
मरत पुरय मरवार पावै मिलत सब सुन्न साज ॥१॥
मक्त को यह इष्ट ऐसो ज्यों क्षुधित को नाज ।
कर्म ईंधन को अगनि सम भव जलधि को पाज ॥२॥
इन्द्र जाकी करत महिमा कहो तो कैसी लाज ॥
जगतराम प्रसाद पावै होत अविचल राज ॥३॥

[१२४]

राग–रामकली

मेरी कौन गति होसी हो गुसाई ॥
पंच पाप मोसौं नहीं छूटे
बिकथा चारयौं माई ॥ नेरी ॥ १ ॥
तीन जोग मेरे बस नांही
रागद्वेष दोऊ भाई ॥
एक निरंजन रूप विहारो
ताकी खबर न पाई ॥ मेरी० ॥ २ ॥
एक वार कबहूं लिहुं सेती
मन परतीति न आई ॥
याही तैं भव दुख भुगते
बहु विधि आपद पाई ॥ मेरी० ॥ ३ ॥
मो सौं पतित निकट अब टेरत
कहा अन्तर को काई ॥

पतित उधारक राखति तुम अपनी,
राखी पाय के गाई ॥ मेरी० ॥ ४ ॥
यह कलिकाल दोष व्यापक है,
सो तुम जानत साँई ॥
जगतराम प्रभु रीति विचारी,
तुम हूँ दयाप्यो काँई ॥ मेरी० ॥ ५ ॥

[१२५]

राग–बिलावल

सखी री बिन देखे रह्यो न जाय ॥
ये री मोहि प्रभु को परस कराय ॥
सुन्दर स्याम सलोनी मूरति,
नैन रहे निरखन ललचाय ॥ सखी री० ॥ १ ॥
तन सुकमाल मार जिह मार्यो,
तासों मोह रह्यो थरराय ॥
जग प्रभु नेमि संग तप करनों,
अब मोहि और न कछु सुहाय ॥ सखी री० ॥ २ ॥

[१२६]

राग–बिलावल

समझि मन यह औसर फिरि नाही ॥
नर भव पाय कहा कहिये तोहि,
रतन दिये गुरु माही ॥ समझि० ॥ १ ॥

जा तन सौं तप तपै सुगति है
दुरगति दूरि नसाही ॥
वाहू तू नित पोषत है रे
आप अकाज कराही ॥ समझि० ॥ २ ॥
धन को पाय धरम कारिज
करि उपम लाही ॥
जोवन पाय सील मधिमाई
ज्यौं अमरापुर जाही ॥ समझि० ॥ ३ ॥
तन धन जोवन पाय साय इम
सुमरि देव निज जाही ॥
ज्यौं जगराम अचल पद पावो
सद्गुरु यौं समझाही ॥ समझि० ॥ ४ ॥

[१२७]

राग—रामकली

मुनि हो अरज तेरे पाय परौं ॥
तुमको दीन दयाल जान्यौ मैं
तातैं अपनौं दुख उचरौं ॥ मुनि० ॥ १ ॥
अष्ट कर्म मोहि घेरि रहत है
हौं इनसौं कछु नाहि करौं ।
ज्यौं ज्यौं अति पीरै
दुष्टनि सौं कहीं क्यौ उबरौं ॥ मुनि० ॥ २ ॥

चहुगति मैं मो सौं जो कीनी,
सुनि सुनि कहा लौं हृदै धरौं ॥
साथि रहैं अरु दगो देय जे,
तिन संगि कैसैं जनम भरौं ॥ सुनि० ॥ ३ ॥
मदीत रावरी सौं करूना निधि,
अब हो इनकौ सिथिल करौं ॥
जगतराम प्रभु न्याय नवेरौं,
कृपा तिहारी मुकति वरौं ॥ सुनि० ॥ ४ ॥

[१२८]

द्यानतराय

(संवत् १७३३-१७८३)

कविवर द्यानतराय उन प्रसिद्ध कवियों में से हैं जिनके पद, भजन, पूजा पाठ एवं अन्य रचनायें जन साधारण में अत्यधिक प्रिय हैं तथा जो सैकड़ों हजारों स्त्री पुरुषों को कण्ठस्थ हैं। कवि आगरे के रहने वाले थे किन्तु बाद में देहली आकर रहने लगे थे। इनके बाबा का नाम वीरदास एव पिता का नाम श्यामदास था। कवि का जन्म सम्वत् १७३३ में आगरे में हुआ था।

आगरा एव देहली में जो विभिन्न आध्यात्मिक शैलिया थी उनसे कवि का घनिष्ट सम्बन्ध था। ये बनारसीदासजी के समान विशुद्ध आध्यात्मिक विद्वान् थे तथा इसी की चर्चा में अपने जीवन को लगा

रचा था। हिन्दी के ये बड़े भारी विद्वान थे तथा काव्य रचना की ओर इनकी विशेष रुचि थी। धर्मविलास में इनकी प्राय: सभी रचनाओं का संग्रह है। कवि ने इसे करीब १० वर्ष में पूर्ण किया था। इसमें उनके ३ से अधिक पद विभिन्न पूजा-पाठ एवं ४५ अन्य छोटी बड़ी रचनायें हैं। सभी रचनायें एक से एक सुन्दर एवं उत्तम भावों के साथ गुम्फित हैं।

इनके पद आध्यात्मिक रस से ओतप्रोत हैं। कवि ने आत्म तत्व को पहिचान लिया था इसीलिए उन्होंने अपने एक पद में 'अब हम आतम को पहचाना' लिखा है। आत्मा को पहचान कर उन्होंने 'अब हम अमर भये न मरेंगे' का सन्देश जगत को सुनाया। इनके स्तुति परक पद भी बहुत सुन्दर हैं। 'तुम प्रभु कहियत दीन दयाल आप न जाय मुकति में बैठे हम जु रुलत जग जाल' पद कवि के मानसिक भावों का पूर्णत: द्योतक है। कवि के प्रत्येक पद का भाव, शब्द चयन एवं वर्णन शैली अति सुन्दर है। इन पदों में मनुष्य मात्र को सुमार्ग पर चलने के लिये कहा गया है।

राग–मल्हार

हम तो कबहूँ न निज घर आए ॥
पर घर फिरत बहुत दिन बीते
नाव अनेक धराये ॥ हम० ॥ १ ॥
पर पद निज पद मानि मगन ह्वै,
पर परिणति लपटाये ।
शुद्ध बुद्ध सुख कन्द मनोहर,
आतम गुण नहिं गाये ॥ हम० ॥ २ ॥
नर पसु देवन कौ निज मान्यो,
परजै बुद्धि कहाये ।
अमल अखड अतुल अविनासी,
चेतन भाव न भाये ॥ हम० ॥ ३ ॥
हित अनहित कछु समझ्यौ नाहीं,
मृग जल वुध ज्यौं धाए ॥
द्यानत अब निज निज पर ह्वै,
सतगुरु बैन सुनाये ॥ हम० ॥ ४ ॥

[१२६]

राग–जंगला

मैं निज आतम कब ध्याऊंगा ॥
रागादिक परिणाम त्याग कै, समता सौं लौ लगाऊंगा ॥
मैं निज० ॥ १ ॥

मन वच काय जोग थिर करके ज्ञान समाधि लगाऊंगा।
कब हौं क्षपक श्रेणि चढ़ि ध्याऊं चारित मोह नशाऊंगा॥
मैं निज० ॥ २ ॥

चारों करम घातिया हन करि परमातम पद पाऊंगा॥
ज्ञान दरश सुख बल भण्डारा चार अघाति बहाऊंगा॥
मैं निज० ॥ ३ ॥

परम निरंजन सिद्ध शुद्ध पद परमानन्द कहाऊंगा॥
द्यानत यह सम्पति जब पाऊं बहुरि न जग में आऊंगा॥
मैं निज ॥ ४ ॥

[१२०]

राग—सारग

हम लाग आतमराम सौं॥
विनाशीक पुद्गल की छाया कौन रमैं धन–धाम सौं॥
हम० ॥ १ ॥

समता–सुख घट में परगास्यो कौन काज है काम सौं।
दुविधाभाव जलांजुलि दीनों मेल भयो निज आतम सौं॥
हम० ॥ २ ॥

भेद ज्ञान करि निज–पर देख्यौ, कौन बिलोकै चाम सौं।
उरे–परे की बात न भावै लौ लागी गुणग्राम सौं॥
हम० ॥ ३ ॥

विकलप भाव रक सब भाजे, झरि चेतन अभिराम सों ।
द्यानत आतम अनुभव करिके छूटै भवदुख धाम सों ॥
इम० ॥ ४ ॥

[१३१]

राग–आसावरी

आतम अनुभव करना रे भाई ॥

जब लौं भेद-ज्ञान नहिं उपजै, जनम मरण दुख भरना रे ॥ १ ॥

आगम-पढ नव तत्त्व वखानै, व्रत तप संजम धरना रे ।
आतम-ज्ञान बिना नहिं कारज, जोनी संकट परना रे ॥ २ ॥

सकल ग्रन्थ दीपक हैं भाई, मिथ्या तमको हरना रे ।
कहा करैं ते अन्ध पुरुषको, जिन्हें उपजना मरना रे ॥ ३ ॥

द्यानत जे भवि सुख चाहत हैं, तिनको यह अनुसरना रे ।
'सोहं' ये दो अक्षर जपकै, भव-जल पार उतरना रे ॥ ४ ॥

[१३२]

राग–आसावरी

आतम जानो रे भाई ॥

जैसी उज्वल आरसी रे, तैसी आतम जोत ।
काया करमन सौं जुदी रे, सबको करै उदोत ॥
आतम ॥ १ ॥

शयन दशा जागृत दशा रे दोनों विकलप रूप।
निर विकलप शुद्धातमारे, चिदानन्द चिद्रूप॥
आतम० ॥ २॥

तन वच सेती भिन्न कर रे, मनसों निज लवलाय।
आप आप जब अनुभवै रे तहां न मन वचकाय॥
आतम० ॥ ३॥

छहों द्रव्य नव तत्त्वतैं रे न्यारो आतम राम।
द्यानत जे अनुभव करैं रे ते पावैं शिव धाम॥
आतम० ॥ ४॥

[१९३]

राग-सारंग

कर कर आतमहित रे प्रानी॥
जिन परिणामनि बंध होत सो परनति तज दुखदानी॥ १॥
कौन पुरुष तुम कहां रहत हो किहिकी संगति रति मानी॥
जे परजाय प्रकट पुद्गलमय ते तैं क्यों अपनी जानी॥
कर कर० ॥ २॥

चेतनजोति झलक तुझ मांही अनुपम सो तैं विसरानी।
जाकी पटतर लगत आन नहिं, दीप रतन शशि सूरानी॥
कर कर० ॥ ३॥

आपमें आप लखो अपनो पद 'द्यानत' करि तन मन वानी।

परमेश्वर पद आप पाइये, यौं भापैं केवल ज्ञानी ॥
कर कर० ॥ ४ ॥

[१३४]

राग–गौरी

देखौ भाई आतम राम विराजै ॥
छहों दरब नव तत्त्व गेय है, आपसु ग्यायक छाजै ॥
देखौ भाई० ॥ १ ॥

अरिहंत सिद्ध सूरि गुरु मुनिवर, पाचौं पद जिह माहिं ।
दरसन ग्यान चरन तप जिस मैं पटतर कोऊ नाहीं ॥
देखौ भाई० ॥ २ ॥

ग्यान चेतना कहियै जाकी, बाकी पुदगल केरी ।
केवल ग्यान विभूति जासकै, आतम विभ्रम चेरी ॥
देखौ भाई० ॥ ३ ॥

एकेंद्री पंचेन्द्री पुद्गल, जीव अतिंद्री ग्याता
द्यानत ताही सुद्ध दरब कौ, जान पनो सुख दाता ॥
देखौ भाई० ॥ ४ ॥

[१३५]

राग–मांढ

अब हम आतम को पहिचाना ॥
जैसा सिद्ध क्षेत्र में राजै, तैसा घट में जाना ॥ १ ॥

इहादिक परद्रव्य न मर भरा चतन माना ॥
'द्यानत' जो जानै सो सयाना नहिं जानै सो अयाना ॥ २ ॥
॥ अब हम० ॥

[१३६]

राग—माढ

अब हम अमर भए न मरेंगे ॥
तन कारन मिथ्यात दियो तजि क्यों करि देह धरेंगे ॥
अब हम० ॥ १ ॥

उपजै मरै काल तै प्रानी तातै काल हरेंगे ।
राग दोष जग बंध करत है इनकौ नास करेंगे ॥
अब हम० ॥ २ ॥

देह बिनासी मैं अबिनासी भेद ग्यान करेंगे ।
नासी जासी हम थिर वासी चोखे हो निखरेंगे ॥
अब हम ॥ ३ ॥

मरे अनंतबार बिन समझे अब सब दुख बिसरेंगे ।
द्यानत निपट निकट दो अक्षर बिन सुमरे सुमरेंगे ॥
अब हम ॥ ४ ॥

[१३७]

राग—श्याम कल्याण

तुम प्रभु कहियत दीन दयाल ॥
आपन जाय मुकति मैं बैठे हम जु रुलत जग जाल ॥
तुम ॥ १ ॥

तुमरो नाम जपै हम नीके, मन वच तीनों काल ।
तुम तो हमको कछू देत नहिं, हमरो कौन हवाल ॥
तुम० ॥ २ ॥
बुरे भले हम भगत तिहारे, जानत हो हम चाल ।
और कछू नहिं यह चाहत हैं, राग-दोष को टाल ॥
तुम० ॥ ३ ॥
हमसौं चूक परी सो बकसो, तुम तो कृपा विशाल ।
द्यानत एक बार प्रभु जगतैं, हमको लेहु निकाल ॥
तुम० ॥ ४ ॥

[१३८]

राग–विहागडी

जानत क्यों नहिं रे, हे नर आतम ज्ञानी ॥
राग दोष पुद्गल की संगति,
निहचै शुद्ध निशानी ॥ जानत० ॥ १ ॥
जाय नरक पशु नर सुर गति मे,
ये परजाय विरानी ॥
सिद्ध स्वरूप सदा अविनाशी,
जानत विरला प्रानी ॥ जानत० ॥ २ ॥
कियो न काहू हरै न कोई,
गुरु शिष्य कौन कहानी ॥
जनम मरन मल रहित अमल है,
कीच विना ज्यों पानी ॥ जानत० ॥ ४ ॥

सार पदारथ है तिहुँ जग में
नहि क्रोधी नहि मानी ॥
द्यानत सो घट माहि विराजै
ह्वै हूजै शिवथानी ॥ आनत० ॥ ४ ॥

[१३६

राग-सोरठ

नही ऐसो जनम बारम्बार ॥
कठिन कठिन लह्यो मानुष-भव विषय तजि मतिहार ॥
॥ नहि० ॥ १ ॥

पाय चिन्तामन रतन शठ छिपत उदधि मंझार ।
अंध हाथ बटेर आई तजत ताहि गंवार ॥
॥ नहि० ॥ २ ॥

कबहुँ नरक तिरयञ्च कबहुँ, कबहुँ सुरग विहार ।
जगत माहिं चिरकाल भ्रमियो दुलभ नर अवतार ॥
॥ नहि० ॥ ३ ॥

पाय अमृत पांव धोवे कहत सुगुरु पुकार ।
तजो विषय कषाय द्यानत ज्यौं लहो भवपार ॥
॥ नहि० ॥ ४ ॥

१४०]

राग-सारंग

मोहि कब ऐसा दिन आय है ॥
सकल विभाव अभाव होहिंगे,
विकलपता मिट जाय है ॥ मोहि० ॥ १ ॥
परमातम यह मम आतम,
भेद बुद्धि न रहाय है ॥
औरन की कौ बात चलावै,
भेद विज्ञान पलाय है ॥ मोहि० ॥ २ ॥
जानै आप आप मे आपा,
सो व्यवहार वलाय है ॥
नय परमाण निक्षेपनि मांही,
एक न औसर पाय है ॥ मोहि० ॥ ३ ॥
दर्शन ज्ञान चरण को विकलप,
कहो कहां ठहराय है ॥
द्यानत चेतन चेतन ह्वै है,
पुदगल पुदगल थाय है ॥ मोहि० ॥ ४ ॥

[१४१]

राग-मांढ

अब हम आतम को पहिचान्यौ ॥
जब ही सेती मोह सुभट बल,
छिनक एक मे भान्यो ॥ अब० ॥ १ ॥

राग विरोध विभाव भजे झर
ममता भाव पलान्यौ ॥
दरसन ज्ञान चरन मैं चेतन
भेद रहित परवान्यौ ॥ अब० ॥ २ ॥
जिहि देखें हम और न देख्यो
देख्यो सो सरधान्यौ ॥
ताको कहो कहैं कैसें करि,
जा जाने जिम जान्यौ ॥ अब० ॥ ३ ॥
पूरब भाव सुपनवत देखे
अपनो अनुभव तान्यो ॥
द्यानत ता अनुभव स्वादत ही
जनम सफल करि मान्यो ॥ अब० ॥ ४ ॥
[१४२]

राग-सोरठ

अनहद शबद सदा सुन रे ॥
आप ही जानैं और न जानै
कान बिना सुनिये धुन रे ॥ अनहद० ॥ १ ॥
भमर गुंज सम होत निरन्तर,
ता अन्तर गति चितवन रे ॥
द्यानत तब लौं जीवन मुकता
लागत नाहिं करम धुन रे ॥ अनहद० ॥ २ ॥
[१४३]

राग-भैरु

अैसो सुमरन करिये रे भाई।
पवन थमै मन कितहु न जाई॥
परमेसुर सौं साचौं रहीजै।
लोक रजना भय तजि दीजै ॥ अैसो० ॥ १ ॥
यम अरु नियम दोऊ विधि धारौं।
आसन प्राणायाम सभारौं ॥
प्रत्याहार धारना कीजै।
ध्यान समाधि महारस पीजै ॥ अैसो० ॥ २ ॥
सो तप तपौं वहुरि नहि तपना।
सो जप जपौं वहुरि नही जपना ॥
सो व्रत धरौ वहुरि नही धरना।
अैसैं मरौं वहुरि नही मरना ॥ अैसो० ॥ ३ ॥
पच परावर्तन लखि लीजै।
पांचौ इद्री कौं न पतीजै ॥
द्यानत पाचौ लखि लहीजै।
पंच परम गुरु सरन गहीजै ॥ अैसो० ॥ ४ ॥

[१४४]

राग-मांढ

आयो सहज वसन्त खेलैं सब होरी होरा ॥
उत बुधि दया छिमा वहु ठाढी,
इत जिय रतन सजे गुन जोरा ॥ आयो० ॥ १ ॥

ज्ञान ध्यान डफ ताल बजत हैं
अनहद शब्द होत घनघोरा ॥
धरम सुराग गुलाल उड़त है,
समता रंग दुहूँनें घोरा ॥ आयो० ॥ ३ ॥
परसन उत्तर भरि पिचकारी
छोरत दोनों करि करि जोरा ॥
इततैं कहैं नारि तुम काकी,
उततैं कहैं कौन को छोरा ॥ आयो० ॥ ३ ॥
आठ काठ अनुभव पावक में
जल बुझ शांत भई सब ओरा ॥
द्यानत शिव आनन्द चन्द छवि
देखैं सज्जन नैन चकोरा ॥ आयो० ॥ ४ ॥

[१४५]

राग—कन्नडो

सखि देखैं प्यारी नेम नवल व्रत धारी ॥
राग दोष बिन सोभित मूरति ।
मुकति नाथ अविकारी ॥ सखि ॥ १ ॥
क्रोध बिना किम करम विनासे ।
इह अचिरज मन भारी ॥ सखि० ॥ २ ॥
वचन अनक्षर सब जीव समझै ।
भाषा न्यारी न्यारी ॥ सखि० ॥ ३ ॥

चतुरानन सब खलक विलोकै।
पूरब मुख प्रभुकारी ॥ चलि० ॥ ४ ॥
केवल ज्ञान आदि गुन प्रगटे।
नैकु न मान कीयारी ॥ चलि० ॥ ५ ॥
प्रभु की महिमा प्रभु न कहि सकै।
हम तुम कौन विचारी ॥ चलि० ॥ ६ ॥
द्यानत नेम नाथ विन आली।
कहि मोकौ को प्यारी ॥ चलि० ॥ ७ ॥

[१४६]

राग–आसावरी

चेतन खेलै होरी ॥
सत्ता भूमि छिमा वसन्त में, समता प्रान प्रिया सग गोरी
चेतन० ॥१॥
मन को माट प्रेम को पानी, तामे करुना केसर घोरी,
ज्ञान ध्यान पिचकारी भरि भरि, आप में छारै होरा होरी
चेतन० ॥२॥
गुरु के वचन मृदङ्ग बजत हैं, नय दोनों डफ ताल टकोरी,
सजम अतर विमल व्रत चोवा, भाव गुलाल भरै भर मोरी
चेतन० ॥३॥
वरस मिठाई तप बहुमेवा, समरस आनन्द अमल कटोरी,

भानत सुमति कहै सखियन सों चिरजीवो यह जुग
जुग जोरी ॥ चलन ॥ ४ ॥

[१४७]

राग–सोरठ

ग्यान विना सुख पाया रे, भाई ॥
भौ दस आठत स्वास सास मैं
साधारन लपटाया रे ॥ भाई० ॥ १ ॥
काल अनन्त यहां तोहि बीते
जब भई मंद कषाया रे ॥
तब तू निकसि निगोद सिंधु तैं
थावर होय न सारा रे ॥ भाई० ॥ २ ॥
क्रम क्रम निकसि भयौ विकलत्रै,
सो दुख जात न गाया रे ॥
भूख प्यास परवस सही पशुगति
वार अनेक बिकाया रे ॥ भाई० ॥ ३ ॥
नरक मांहि छेदन भेदन बहु
पुतरी अगनि जलाया रे ॥
सीत तपत दुरगंध रोग दुख
जानै श्री जिनराया रे ॥ भाई ॥ ४ ॥
भ्रमत भ्रमत संसार महावन
कबहूं देव कहाया रे ॥

लखि पर विभव, सह्यौ दुख भारी,
मरन समै विललाया रे ॥ भाई० ॥ ५ ॥
पाप नरक पशु पुन्य सुरग वसि,
काल अनन्त गमाया रे ॥
पाप पुन्य जब भए बराबर,
तब कहुँ नर भौ जाया रे ॥ भाई० ॥ ६ ॥
नीच भयौ फिरि गरभ पड्यौ,
फिरि जनमत काल सताया रे ॥
तरुन पनौ तू धरम न चेतौ,
तन धन सुत लौ लाया रे ॥ भाई० ॥ ७ ॥
दरब लिंग धरि धरि मरि मरि तू,
फिरि फिर जग भज आया रे ॥
द्यानत सरधा जु गहि मुनिव्रत,
अमर होय तजि काया रे ॥ भाई० ॥ ८ ॥

[१४८]

राग–रामकली

जिय को लोभ महादुखदाई ॥
जाकी सोभा वरनी न जाई ॥
लोभ करै मूरख ससारी ।
छाडै पडित सिव अधिकारी ॥ जिय० ॥१॥
तजि घर वास फिरै वन मांही ।
कनक कामिनी छाडै नाही ॥

लोक रिझावन कौं व्रत लीना ।
व्रत न होय ठगि ऐसा कीना० ॥जिय० ॥२॥
लोभ वसात जीव हति डारै ।
झूठ बोलि चोरी चित धारै ॥
नारि गहै परिग्रह विसतारै ।
पांच पाप करि नरक सिधारै ॥ जिय० ॥३॥
जोगी जती गृही बन वासी ।
वैरागी दरवेस संन्यासी ॥
अजस खानि जस की नहीं रेखा ।
द्यानत जिनके लोभ विसेखा ॥ जिय० ॥४॥

[१४६]

राग—सोरठ

प्रभु तेरी महिमा किह मुख गावै ॥
गरभ छमास अगाऊ कनक नग
सुरपति नगर बनावै ॥ प्रभु० ॥१॥
क्षीर उदधि जल मेरु सिंहासन
मल मल इन्द्र न्हुलावै ॥
दीक्षा समय पालकी बैठे
इन्द्र कहार कहावै ॥ प्रभु० ॥२॥
समोसरन रिधि ग्यान महातम
किहि विधि सर्व बतावै ॥

आपन जात की बात कहा सिव,
बात सुनै भवि जावै ॥ प्रभु० ॥३॥

पचकल्याणक थानक स्वामी,
जो तुम मन वच ध्यावै ॥
द्यानत तिनकी कौन कथा है,
हम देखैं सुख पावै ॥ प्रभु० ॥४॥

[१५०]

राग–रामकली

रे मन भज भज दीन दयाल ॥
जाके नाम लेत इक खिन मे,
कटै कोटि अघ जाल ॥ रे मन० ॥ १ ॥

पार ब्रह्म परमेश्वर स्वामी,
देखत होत निहाल।
सुमरण करत परम सुख पावत,
सेवत भाजै काल ॥ रे मन० ॥ २ ॥

इन्द्र फणिंद्र चक्रधर गावैं,
जाको नाम रसाल ॥
जाके नाम ज्ञान प्रकासे,
नासै मिथ्या चाल ॥ रे मन० ॥ ३ ॥

जाके नाम समान नही कछु,
ऊरध मध्य पताल ॥

सोई नाम जपो नित द्यानत,
छांडि विषै विकरारा ॥ रे मन० ॥ ४ ॥

[१५१]

राग–सोरठ

साधो छांडो विषै विकारी ॥
जातैं तोहि महादुख भारी ॥
जो जैन धरम कौं ध्यावै।
सो आतमीक सुख पावै ॥ ॥ १ ॥
गज फरस विषै दुख पाया।
रस मीन गंध अलि पाया ॥
लखि दीप सलभ हित कीना।
मृग नाद सुनत विष लीना ॥ २ ॥
ये एक एक दुखदाई।
तू पञ्च रमत है भाई ॥
ये कौने सीख बताई।
तुमरे मन कैसें आई ॥ ३ ॥
इन मांहि लोभ अधिकाई।
यह लोभ कुगति को भाई ॥
सो कुगति मांहि दुख भारी ॥
तू त्यागि विषै मतिधारी ॥ ४ ॥

ए सेवत सुख से लागै ।
फिर अन्त प्राण कौं त्यागै ॥
तातैं ए विषफल कहिये ।
तिन कौं कैसें करि गहिये ॥ ५ ॥
तब लौं विषया रस भावै ।
जब लो अनुभौ नहि आवै ॥
जिन अमृत पान नहि कीना ।
तिन और रस भवि चित दीना ॥ ६ ॥
अब बहुत कहा लौ कहिये ।
कारज कहि चुप ह्वै रहिये ॥
यह लाख बात की एकै ।
मति गहौ विषै का टेकै ॥ ७ ॥
जो तजै विषै की आसा ।
द्यानत पावै सिववासा ॥
यह सतगुरु सीख बताई ।
काहूँ विरलै के जिय आई ॥ ८ ॥

[१५२]

राग—गौरी

हमारो कारज कैसे होय ॥
कारण पच मुकति के तिन मैं के है दोय ॥
॥ हमारो० ॥ १ ॥

हीन संहनन लघु आउखा अलप मनीषा जोइ।
कम्पै भाव न सधै साखी सब जग देख्यौ होइ॥
॥ हमारो० ॥ २ ॥

इन्द्री पंचसु विषयनि दौरे मानै कह्या न कोइ।
साधारन चिरकाल वस्यौ मैं, धरम बिना फिर सोइ॥
॥ हमारो० ॥ ३ ॥

चिन्ता तजै न ध्यानु धन आवै अब सब चिन्ता खोई।
द्यानत एक शुद्ध निज पद लखि आप मैं आप समोई॥
॥ हमारो ॥ ४ ॥

[१५३]

राग—गौरी

हमारो कारज ऐसे होइ।
आतम आतम पर पर जानै तीनौं संसै खोइ॥
हमारो ॥ १ ॥

अन्त समाधि मरन करि तन तजि होहि सक्र सुर लोइ।
विविध भोग उपभोग भोगवै धरम तना फल सोइ॥
हमारो० ॥ २ ॥

पूरी आउ विदेह भूप ह्वै राज संपदा भोग।
कारन पंच लहै गहै दुधर पंच महाव्रत जोइ॥
हमारो ॥ ३ ॥

तीन जोग थिर सहै परीसह, आठ करम मल धोइ।
द्यानत सुख अनन्त सिव विलसै, जनमै मरै न कोइ॥
हमारो० ॥ ४ ॥

[१५४]

राग–सोहनी

हम न किसी के कोई न हमारा, झूठा है जग का व्योहारा॥
तन संबंधी सब परिवारा, सो तन हमने जाना न्यारा॥ १ ॥
पुन्य उदय सुख का बढवारा, पाप उदय दुख होत अपारा।
पाप पुन्य दोऊ संसारा, मैं सब देखन जानन हारा॥ २ ॥
मैं तिहुँजग तिहुँकाल अकेला, पर संबंध हुआ बहु मेला॥
थिति पूरी कर खिर खिर जाई, मेरे हरप शोक कछु नाहीं॥ ३ ॥
राग-भाव ते सज्जन मानै, द्वेप-भाव ते दुर्जन मानै।
राग दोप दोऊ मम नाहीं, 'द्यानत' मैं चेतन पद माहीं॥ ४ ॥

[१५५]

राग–आसावरी

कोई निपट अनारी देख्या आतम राम॥
जिन सौं मिलना फेर बिछुरना तिनसौं कैसी यारी।
जिन कामौं मैं दुख पावै है तिनसौं प्रीत करारी॥
वे कोई० ॥ १ ॥

बाहिर चतुर मूढ़ता घर में लाज सबै परिहारी ।
ठग सौं नेह बैर साधुनिसौं ए बातैं विसतारी ॥
रे कोई० ॥ २ ॥

सिंहदशा भीतर सुख मानै अक्षकला सबै विसारी ।
जा तरु आग लगी चारों दिस बैठ रह्यौ तिह डारी ॥
रे कोई ॥ ३ ॥

हाड़ मांस लोहू की थैली तामैं चेतन धारी ।
द्यानत तीन लोक को ठाकुर क्यों हो रहा भिखारी ॥
रे कोई० ॥ ४ ॥

[१५६]

राग—आसावरी

मिथ्या यह संसार है रे झूठा यह संसार है रे ॥
जो देही षट् रस सौं पोषै सो नहिं संग चलै रे,
औरन कौं तोहि कौन भरोसो, नाहक मोह करै रे ॥
मिथ्या ॥ १ ॥

सुख की बातैं बूझै नाहीं दुख कौं सुख लेखै रे ।
मूढ़ौ मांही माता डोलै साधौं पास डरै रे ॥
मिथ्या ॥ २ ॥

झूठ कमाता झूठी खाता झूठी जाप जपै रे ।
सच्चा सांई सूझै नाहीं क्यौं कर पार लगै रे ॥
मिथ्या ॥ ३ ॥

जम सौं डरता फूला फिरता, करता मैं मैं मेरे ।
द्यांनत स्याना सोइ जाना, जो जप ध्यान धरै रे ॥
मिथ्या ॥ ४ ॥

[१५७]

राग-आसावरी

भाई ज्ञानी सोई कहिये ।
करम उदै सुख दुख भोगतै, राग विरोध न लहियै ॥
भाई० ॥ १ ॥

कोऊ ज्ञान क्रिया तै कोऊ, सिव मारग वतलावै ।
नय निहचै विवहार साधिकै, दोनु चित्त रिझावै ॥
भाई० ॥ २ ॥

कोऊ कहै जीव छिन भगुर, कोई नित्य वखानै ।
परजय दरवित नय परमानै दोऊ समता आनै ॥
भाई० ॥ ३ ॥

कोई कहै उदै है सोई, कोई उद्यिम बोलै ।
द्यानति स्यादवाद सुतुला मै, दोनौं वस्तै तोलै ॥
भाई० ॥ ४ ॥

[१५८]

राग—आसावरी

माई कौन भरम हम चाले ॥
एक कहै जिह कुल मे आप, ठाकुर को कुल गाले ॥
माई० १ ॥
सिवमत बोद्ध सुवद नैयायक मीर्मांसक अर जना।
आप सराहै आगम गाहै काकी सरधा ऐना ॥
भाई० ॥ २ ॥
परमेसर पै ही आया हो ताकी बात सुनीजे ॥
पूछे बहु जन पोर्खे कोइ पकी फिकर क्या कीजे ॥
माई० ॥ ३ ॥
जिन सब मत के न्याय साधकरि करम एक बताया।
यांनति सो गुरु पूरा पाया भाग हमारा आया ॥
माई ॥ ४ ॥
[१५६]

राग—उमाज जोगीरासा

दुनिया मतलब की गरजी अब मोहे जान पड़ी।
हरा वृक्ष पे पंछी बैठा रटता नाम हरी।
प्रात भये पछी उड चाले जग की रीति खरी ॥ १ ॥
जब लग मैल पड़े बनिया को तब लग बाइ धनी।
पर्के मैल को कोई न पूछैं फिरता गली गली ॥ २ ॥

सत्त वांध सती उठ चाली मोह के फद पडी।
'द्यानत' कहे प्रभु नही सुमरयो मुर्दा सग जली ॥ ३ ॥

[१६०]

राग–विहाग

तू तो समझ समझ रे भाई ॥
निश दिन विषय भोग लिपटाता धरम वचन ना सुहाई ॥१॥
कर मनका ले आसन माड्यो वाहिर लोक रिझाई।
कहा भयो वक ध्यान धरेतै जो मन थिर ना रहाई ॥२॥
मास मास उपवास किये तैं काया बहुत सुखाई।
क्रोध मान छल लोभ न जीत्यो कारज कौन सराई ॥३॥
मन वच काय जोग थिर करके त्यागो विषय कषाई।
'द्यानत स्वर्ग मोक्ष सुखदाई संत गुरु सीख बताई ॥४॥

[१६१]

राग-रामकली

झूठा सुपना यह ससार।
दीसत है विनसत नही हो वार ॥
मेरा घर सब तैं सिरदार।
रहे न सकै पल एक मझार ॥ झूठा ॥ १ ॥
मेरे धन सम्पति अतिसार।
छांडि चलै लागै न अवार ॥ झूठा ॥ २ ॥

इन्द्री विषै विषै फल धार ।
मीठे लगैं अन्त खयकार ॥ झूठा० ॥ ३ ॥
मेरी देह काम धनहार ।
सो तन भयौ छिनक में छार ॥ झूठा० ॥ ४ ॥
जननी तात भ्रात सुत नारि ।
स्वारथ बिना करत है धार ॥ झूठा ॥ ५ ॥
भाई सत्रु होंहिं अनिवार ।
सत्रु भई भाई बहु प्यार ॥ झूठा ॥ ६ ॥
द्यानत सुमरन भजन अधार ।
आगिलगे कछु लेहु निकार ॥ झूठा ॥ ७ ॥

[१६२]

राग—गाढ

जो तैं आतम हित नहीं कीना ॥
रामा रामा धन धन कारजै नर भव फल नहीं लीना ॥
॥ जो० ॥ १ ॥
जप तप करि के लोक रिझाये प्रभुता के रस भीना ।
अंतरगति परनमन (न) सोधे एको गरज सरीना ॥
॥ जो० ॥ २ ॥
बैठि सभा मैं बहु उपदेशे आप भए परवीना ।
ममता डोरी तोरी नाहीं उत्तम तैं भए हीना ॥
॥ जो ॥ ३ ॥

द्यानत मन वच काय लगाके जिन अनुभौ चितदीना।
अनुभौ धारा ध्यान विचारा मंदर कलस नवीना ॥
॥ जो० ॥ ४ ॥

[१६३]

राग–सोरठ

कहा देखि गरवाना रे भाई ॥
गहि अनन्त भवतैं दुख पायो,
सो नहि जात वखाना रे ॥ भाई० ॥ १ ॥
माता रूधिर पिता को वीरज,
तातैं तू उपजाना रे ॥
गरभ वास नौ मास सहे दुख,
तल सिर पाउ उचाना रे ॥ भाई० ॥ २ ॥
मास आहार विगल मुख निगल्यौ,
सो तू असन गहाना रे ॥
जती तार सुनार निकालैं,
सो दुख जनम सहाना रे ॥ भाई० ॥ ३ ॥
आठ पहर तन मल मल धोयो,
पोल्यौं रैंन विहाना रे ॥
सो शरीर तेरे संग चल्यो नहि,
खिन मैं खाक समाना रे ॥ भाई० ॥ ४ ॥

जनमत नारी पांदत जोषन
समरथ द्रव नसाना रे ॥
सो सुत तू अपनी करि जानैं
अन्त जलावैं प्राणा रे ॥ माई० ॥ ५ ॥
देखत विष गिलाय हरै धन
मैथुन प्राण पसाना रे ॥
सो नारी तेरी ह्वै कैसैं
मूये प्रेत प्रवांना रे ॥ माई० ॥ ६ ॥
पांच चार तेरे अन्दर पैठैं
तैं बाना मिजाना र ॥
खाइ पीय धन ग्यान अटकै
दोष तेरे सिर ठाना रे ॥ माई० ॥ ७ ॥
वेध भरम गुरु रतन अमोलक
कर अन्तर सरधाना रे ॥
धानत ब्रह्म ग्यान अनुभौ करि
जो चाहै कल्याना रे ॥ माई ॥ ८ ॥

[१६४]

राग—आसावरी

कर कर सपत संगत र माई ॥
पान परत नर नरपत कर सो तौ पांननि सौ कर कमताई ॥
चन्दन पास नीम चन्दन ह्वै कन्चन अरपा लोह तरजाई ॥

पारस परस कुधात कनक ह्वै बूंद उदधि पदवी पाई ॥

करई तौवर संगति के फल मधुर मधुर सुर कर गाई ।
विष गुन करत संग औषध के ज्यों वच खात मिटै वाई ॥

दोष घटैं प्रगटैं गुन मनसा निरमल ह्वै तज चपलाई ।
द्यानत धन्न धन्न जिनकैं घट संत संगति सरधाई ॥

[१६५]

राग–सोरठ

आतम रूप अनुपम है घट माहि विराजै ॥
जाके सुमरन जाप सो, भव भव दुख भाजै हो ॥

॥ आतम० ॥१॥

केवल दरशन ज्ञान मैं, थिरता पद छाजै हो ॥
उपमा को तिहुँ लोक मे, कोउ वस्तु न राजै हो ॥

॥ आतम० ॥२॥

सहे परीषह भार जो, जु महाव्रत साजै हो ॥
ज्ञान विना शिव ना लहे, बहु कर्म उपाजैं हो ॥

॥ आतम० ॥३॥

तिहु लोक तिहु काल में, नहि और इलाजैं हो ॥
द्यानत ताको जानिये, निज स्वारथ काजैं हो ॥

॥ आतम० ॥४॥

[१६६]

राग-रामकली

देख्या मैंने नेमि जी प्यारा ॥

मूरति ऊपर करौं निछावर तन धन जोवन जीवन सारा
॥ देख्या० ॥१॥

जाके नख की शोभा आगैं कोटि काम छवि डारौं वारा।
कोटि संख्य रविचन्द छिपत हैं वपु की द्युति है अपरम्पार
॥ देख्या० ॥२॥

जिनके वचन सुने जिन भविजन तजि गृह मुनिवर को
व्रतधारा।
जाको जस इन्द्रादिक गावैं पावैं सुख नासैं दुख भारा ॥
॥ देख्या० ॥३॥

जाकै केवल ज्ञान विराजत लोकालोक प्रकाशन हारा।
चरन गहे की लाज निबाहो प्रभु जी द्यानत भगत तुम्हारा
॥ देख्या० ॥४॥

[१६७]

राग-सोरठ

जिन नाम सुमरि मन बावरे कहा इत उत भटके।
विषय प्रगट विष बेल है इनमें मत अटके ॥

दुरलभ नरभव पाय के नगसो मत पटकैं।
फिर पीछैं पछतायगा, अवसर जब सटकैं॥ निज० ॥१॥
एक घडी है सफल जो प्रभु-गुण रस गटकैं।
कोटि वरप जीवो वृथा जो थोथा फटकैं॥ निज० ॥२॥
'द्यानत' उत्तम भजन है कीजैं मन रटकैं।
भव भव के पातक सबै जैंहै तो कटकैं॥ निज० ॥३॥

[१६८]

राग–भैरवी

अरहत सुमरि मन बावरे ॥ भगवत० ॥
ख्याति लाभ पूजा तजि भाई।
अतर प्रभु लौ जाव रे॥ अरहत० ॥ १ ॥
नर भव पाय अकारथ खोवै,
विषै भोग जु घटाव रे।
प्राण गए पछितै है मनुवां,
छिन छिन छीजै आव रे॥ अरहत० ॥ २ ॥
जुवती तन धन सुत मित परिजन,
गज तुरग रथ चाव रे।
यह ससार सुपन की माया,
आखि मीच दिखराव रे॥ अरहंत० ॥ ३ ॥
ध्याव रे ध्याव रे अब यह दाव रे,
श्री जिन मगल गाव रे॥

द्यानत बहुत कहा लौं कहिये
फेर न कछु उपाय रे ॥ अरहंत० ॥ ४ ॥

[१६६]

राग—विहागडी

अब हम नेमि जी की शरन ।
और ठौर न मन लगत है,
छांडि प्रभु के शरन ॥ अब० ॥ १ ॥
सकल भवि-अघ-दहन बारिद
विरद तारन तरन ॥
इन्द्र चन्द फनिन्द ध्यावैं
पाय सुख दुख हरन ॥ अब० ॥ २ ॥
भरम-तम-हर-तरनि दीपति
करम गन खय करन ॥
गनधरादि सुरादि जाके
गुन सकत नहिं वरन ॥ अब० ॥ ३ ॥
जा समान त्रिलोक में हम
सुन्यौं और न करन ॥
दास द्यानत दयानिधि प्रभु,
क्यों तजैंगे परन ॥ अब० ॥ ४ ॥

[१७०]

राग-कान्हरौ

अब मोहे तार लेहु महावीर ॥

सिद्धारथ नदन जगवन्दन, पाप निकन्दन धीर ॥ १ ॥

ज्ञानी ध्यानी दानी जानी, बानी गहन गम्भीर ।
मोक्ष के कारण दोष निवारण, रोष विदारण वीर ॥२॥

समता सूरत आनन्द पूरत, चूरत आपद पीर ।
बालयती दृढव्रती समकिती दुख दावानल नीर ॥३॥

गुण अनन्त भगवन्त अन्त नहीं, शशि कपूर हिम हीर ।
'द्यानत' एकहू गुण हम पावें, दूर करै भव भीर ॥४॥

[१७१]

राग-सारंग

मेरी वेर कहा ढील करीजे ।

सूली सों सिंहासन कीना, सेठ सुदर्शन विपत हरीजे ।
॥ मेरी वेर० ॥

सीता सती अगनि मे बैठी, पावक नीर करी सगरी जी ।
वारिषेण पै खड्ग चलायो, फूलमाल कीनी सुथरीजी ।
॥ मेरी वेर० ॥

धन्या वापी पस्यो निकालों, ता घर रिद्ध अनेक भरीजी ।
सिरीपाल सागर तैं तारयो राजभोग कै मुकती वरी जी ॥
॥ मेरी वेर० ॥

सांप कियो फूलन की माला सामा पर तुम दया धरीजी।
द्यानत मैं कछु जांचत नाहीं कर वैराग्य-दशा हमरी जी॥
॥ मेरी बेर ॥

[१७२]

भूधरदास

(संवत् १७५०-१८०६)

आगरे को जिन जैन कवियों की जन्म भूमि होने का सौभाग्य मिला था उन कवियो में कविवर भूधरदास जी का उल्लेखनीय स्थान है। ये भी आगरे के ही रहने वाले थे। इनका जन्म खण्डेलवाल जैन जाति में हुआ था। ये हिंदी एव संस्कृत के अच्छे विद्वान् थे। अब तक इनकी तीन रचनायें उपलब्ध हो चुकी हैं जिनके नाम जैन शतक, पार्श्वपुराण एव पद संग्रह है। पार्श्वपुराण को हिन्दी के महाकाव्यों की कोटि में रखा जा सकता है। इसमें २३वें तीर्थंकर भगवान पार्श्वनाथ के जीवन का वर्णन है। पुराण सुन्दर काव्य है तथा प्रसाद गुण से युक्त है। कवि ने इसे सम्वत् १७८९ में आगरे में समाप्त किया था।

कवि के अब तक रचे १८ पद प्राप्त हो चुके हैं। कवि ने अपने पदों में अध्यात्म की उड़ान भरी है। मनुष्य को अपने जीवन को व्यर्थ में ही नहीं गंवाने के लिए इन्होंने काफी समझाया है। कोई भी पाठक इनके पदों को पढ़कर पाप अन्याय एवं अधर्म की ओर जाने से थोड़ा अवश्य हिचकेगा। अच्छे कार्यों को करने के लिए वृद्धावस्था का कभी इन्तजार नहीं करना चाहिये क्योंकि उसमें तो सभी इन्द्रियां शिथिल हो जाती हैं और वह स्वयं ही दूसरों के आश्रित हो जाता है। कवि की सभी रचनायें जैन समाज में अत्यधिक प्रिय रही हैं इस लिये आज भी इनकी हस्तलिखित प्रतियां प्राय सभी ग्रंथ भण्डारों में मिलती हैं।

राग–सोरठ

अंतर उज्जल करना रे भाई ॥
कपट कृपान तजै नहीं तब लौं,
करनी काज ना सरना रे ॥ अन्तर० ॥ १ ॥
जप तप तीरथ जाप व्रतादिक,
आगम अर्थ उचरना रे ॥
विषै कषाय कीच नही धोयौ,
यौ ही पचि पचि मरना रे ॥ अन्तर० ॥ २ ॥
बाहरि भेष क्रिया सुचि उर सौं,
कीये पार उतरना रे ॥
नाही है सब लोक रंजना,
ऐसे वेद उचरना रे ॥ अन्तर० ॥ ३ ॥
कामादिक मल सौं मन मैला,
भजन किये क्यों तिरना रे ॥
भूधर नील वस्त्र पर कैसे,
केसरि रंग उघरना रे ॥ अन्तर० ॥ ४ ॥

[१७२]

राग–ख्याल

गरब नहिं कीजे रे, ऐ नर निपट गंवार ॥
झूठी काया झूठी माया, छाया ज्यों लखि लीजे रे ॥
गरब० ॥ १ ॥

के छिन सांझ सुहागरू जोषन
कै विन जग में जीजे रे ॥ गरव० ॥ २ ॥
बगा फ्त विलम्ब तजो नर
बंध बढै थिति कीजे रे ॥ गरव० ॥ ३ ॥
मूधर पल पल हो है भारो
ज्यों ज्यों कमरी भीजे रे ॥ गरव ॥ ४ ॥
[१७४]

राग—मांढ

अज्ञानी पाप धतूरा न बोय।
फल चाखन की बार भरे दग मर है मूरख रोय ॥१॥
किंचित विषयनिके सुख कारण दुर्लभ देह न खोय।
ऐसा अवसर फिर न मिलेगा इस नींदडिया न सोय ॥
॥ अज्ञानी ॥ २ ॥
इस बिरियां में धरम कल्पतरु, सींचत स्याने लोय।
तू विष बोवन लागत तो सम और अभागा कोय ॥
॥ अज्ञानी० ॥ ३ ॥
जे जगमें दुख दायक बेरस इसही के फल सोय।
यों मन 'भूधर' जानि कै भाई, फिर क्यों भोंदू होय ॥
॥ अज्ञानी० ॥ ४ ॥
[१७५]

राग–मल्हार

अब मेरे समकित सावन आयो ॥
बीति कुरीति मिथ्यामति ग्रीषम, पावस सहज सुहायो ॥
॥ अब० ॥ १ ॥

अनुभव दामिनि दमकन लागी, सुरति घटा घन छायो ।
बोलैं विमल विवेक पपीहा, सुमति सुहागिन भायो ॥
॥ अब० ॥ २ ॥

गुरुधुनि गरज सुनत सुख उपजै, मोर सुमन विहसायो ।
साधक भाव अंकूर उठे बहु, जित तित हरष सवायो ॥
॥ अब० ॥ ३ ॥

भूल धूल कहिं मूल न सूझत, समरस जल झर लायो ।
भूधर को निकसै अब बाहिर, निज निरचू घर पायो ॥
॥ अब० ॥ ४ ॥

[१७६]

राग–विहाग

जगत जन जूवा हारि चले ॥
काम कुटिल संग बाजी मांडी,
उन करि कपट छले ॥ जगत० ॥ १ ॥
चार कषाय मयी जहँ चौपरि,
पासे जोग रले ।

के छिन सांझ सुहागरू जोबन,
के दिन जग में जीजे रे ॥ गरब० ॥ २ ॥

बेगा चेत बिलम्ब तजो नर
बंध बढ़ै थिति छीजे रे ॥ गरब० ॥ ३ ॥

भूधर पल पल हो है भारी
ज्यों ज्यों कमरी भीजे रे ॥ गरब ॥ ४ ॥

[१७४]

राग—माढ

अज्ञानी पाप धतूरा न बोय।
फल चाखन की बार भरे दृग मर है मूरख रोय ॥१॥

किंचित विषयनिके सुख कारण दुर्लभ देह न खोय।
ऐसा अवसर फिर न मिलेगा इस नींदड़िय न सोय॥
॥ अज्ञानी ॥ २ ॥

इस बिरियां में धरम कल्पतरु सींचत स्याने लोय।
तू विष बोवन लागत तो सम और अभागा कोय॥
॥ अज्ञानी० ॥ ३ ॥

जे जगमें दुखदायक बेरस इसही के फल सोय।
यों मन भूधर' जानि के भाई, फिर क्यों भोंदू होय॥
॥ अज्ञानी० ॥ ४ ॥

[१७५]

राग–मल्हार

अब मेरे समकित सावन आयो ॥
बीति कुरीति मिथ्यामति ग्रीषम, पावस सहज सुहायो ॥
॥ अब० ॥ १ ॥

अनुभव दामिनि दमकन लागी, सुरति घटा घन छायो ।
बोलैं विमल विवेक पपीहा, सुमति सुहागिन भायो ॥
॥ अब० ॥ २ ॥

गुरुधुनि गरज सुनत सुख उपजै, मोर सुमन विहसायो ।
साधक भाव अंकूर उठे बहु, जित तित हरष सवायो ॥
॥ अब० ॥ ३ ॥

भूल धूल कहि मूल न सूझत, समरस जल झर लायो ।
भूधर को निकसै अब बाहिर, निज निरचू घर पायो ॥
॥ अब० ॥ ४ ॥

[१७६]

राग–विहाग

जगत जन जूवा हारि चले ॥
काम कुटिल संग बाजी माडी,
उन करि कपट छले ॥ जगत० ॥ १ ॥
चार कषाय मयी जहँ चौपरि,
पासे जोग रले ।

कै छिन सांझ सुहागरु जोवन
कै दिन जग में जीजे रे ॥ गरब० ॥ २ ॥
बगा फल बिलम्ब तजो नर
बंध बढे थिति कीजे रे ॥ गरब० ॥ ३ ॥
भूधर पल पल हो है भारो,
ज्यों ज्यों कमरी भीजे रे ॥ गरब ॥ ४ ॥

[१७४]

राग—माढ

अज्ञानी पाप धतूरा न बोय।
फल चाखन की बार भरे दृग मर है मूरख रोय ॥१॥
किंचित विषयनिके सुख कारण दुलभ देह न खोय।
ऐसा अवसर फिर न मिलेगा इस नींदड़िय न सोय ॥
॥ अज्ञानी ॥ २ ॥
इस विरियां में धरम कल्पतरु, सींचत स्याने लोय।
तू विष बोवन लागत तो सम और अभागा कोय ॥
॥ अज्ञानी० ॥ ३ ॥
जे जगमें दुख दायक बेरस इसही के फल सोय।
यों मन 'भूधर' जानि कै भाई, फिर क्यों भोंदू होय ॥
॥ अज्ञानी० ॥ ४ ॥

[१७५]

राग–सोरठ

अहो दोऊ रग भरे खेलत होरी ॥
अलख अमूरति की जोरी ॥ अहो० ॥ १ ॥

इतमैं आतम राम रगीले,
उतमैं सुबुद्धि किसोरी ।
या कै ज्ञान सखा सग सुन्दर,
वाकै सग समता गोरी ॥ अहो० ॥ २ ॥

सुचि मन सलिल दया रस केसरि,
उदै कलस मैं घोरी ।
सुधी समभि सरल पिचकारी,
सखिय प्यारी भरि भरि छोरी ॥ अहो० ॥ ३ ॥

सत गुरु सीख तान धर पद की,
गावत होरा होरी ।
पूरव वध अबीर उडावत,
दान गुलाल भर भोरी ॥ अहो० ॥ ४ ॥

भूधर आजि बड़े भागिन,
सुमति सुहागिन मोरी ।
सो ही नारि सुलछिनी जगमैं,
जासौं पतिनै रति जोरी ॥ अहो० ॥ ५ ॥

इव सरवस ज्य कामिनी कौडी
इह विधि मटक चल ॥ जगत० ॥ २ ॥
कूर सिंगार विचार न कीन्हों
है है चयार मल ।
विना विवेक मनोरथ काके,
भूधर सफल फले ॥ जगत० ॥ ३ ॥
[१७७]

राग-विलावल

नैननि को बान परी दरसन की ॥
जिन मुखचन्द चकोर चित्त मुफ,
ऐसी प्रीति करी ॥ नैननि ॥ १ ॥
और अदेवन के चितवन को
अब चित चाह टरी ।
ज्यों सब भूख दबै दिरि दिरि की
लागत अंध झरी ॥ नैननि० ॥ २ ॥
छवी समाय रही लोचन में
विसरत नाहिं घरी ।
भूधर कह यह टेव रहो थिर,
जनम जनम हमरी ॥ नैननि० ॥ ३ ॥
[१७८]

राग–सोरठ

अहो दोऊ रंग भरे खेलत होरी ॥
अलख अमूरति की जोरी ॥ अहो० ॥ १ ॥

इतमें आतम राम रंगीले,
उतमें सुबुद्धि किसोरी ।
या कै ज्ञान सखा संग सुन्दर,
वाकै संग समता गोरी ॥ अहो० ॥ २ ॥

सुचि मन सलिल दया रस केसरि,
उदै कलस में घोरी ।
सुधी समझि सरल पिचकारी,
सखिय प्यारी भरि भरि छोरी ॥ अहो० ॥ ३ ॥

सत गुरु सीख तान धर पद की,
गावत होरा होरी ।
पूरब बंध अबीर उडावत,
दान गुलाल भर झोरी ॥ अहो० ॥ ४ ॥

भूधर आजि बड़े भागिन,
सुमति सुहागिन मोरी ।
सो ही नारि सुलछिनी जगमें,
जासौं पतिनै रति जोरी ॥ अहो० ॥ ५ ॥

राग—ख्याल तमाशा

ऐसो श्रावक कुल तुम पाय वृथा क्यों खोवत हो ॥

कठिन कठिन कर नर भव पाया तुम लखि आसान ।
धर्म बिसारि विषय में राचो मानी न गुरु की आन ॥
वृथा० ॥ १ ॥

चक्री एक मत गज पायो ता पर ईंधन ढोयो ।
बिना विवेक बिना मति ही को पाय सुधा पग धोयो ॥
वृथा० ॥ २ ॥

काहू सठ चिन्तामणि पायो मरम न जानो ताय ।
वायस देखि उदधि में फैंक्यो फिर पीछे पछताय ॥
वृथा० ॥ ३ ॥

सात विसन आठों मद त्यागों करुना चित्त विचारो ।
तीन रतन हिरदै में धारो आवागमन निवारो ॥
वृथा० ॥ ४ ॥

भूधरदास कहत भवि जन सौं चेतन अब तो सम्हारो ।
प्रभु को नाम तरन तारन जपि कर्म फंद निरवारो ॥
वृथा० ॥ ५ ॥

[१८०]

राग-ख्याल

और सब थोथी बातैं, भज ले श्री भगवान ॥
प्रभु बिन पालक कोई न तेरा,
स्वारथ मति जहान ॥ और० ॥ १ ॥
परविनिता जननी सम गिननी,
परधन जान पखान ।
इन अमलों परमेसुर राजी,
भाषै वेद पुरान ॥ और० ॥ २ ॥
जिस उर अन्तर बसत निरतर,
नारी औगुन खान ।
तहा कहां साहिब ।का वासा,
दो खाडे इक म्यान ॥ और० ॥ ३ ॥
यह मत सतगुरु का उर धरना,
करना कहि न गुमान ।
भूधर भजन न पलक विसरना,
मरना मित्र निदान ॥ और० ॥ ४ ॥

[१८१]

राग-भैरवी

गाफिल हुवा कहाॅ तू डोले दिन जाते तेरे भरती मे ॥
चोकस करत रहत है नाहीं, ज्यो अ जुलि जल झरती मे ।
तैसे तेरी आयु घटत है बचै न विरिया मरती मे ॥१॥

कंठ दबै तब नाहिं बनेगो धाज बनाले सरती में।
फिर पछताये कुछ नहिं होवै कूप खुदै नहीं जरती में ॥२॥
मानुष भव तेरा श्रावककुल यह कठिन मिला इस धरती में।
'भूधर' भव दधि चढनर उतरो समकित नवका तरती में ॥३॥
[१८२]

राग—आसावरी

चरखा चलता नाहीं (रे) चरखा हुआ पुराना (वे) ॥
पग खूटे दो हालन लागे उर मदरा खखरला।
छीदी हुई पांखड़ी पांसू, फिरै नहीं मनमाना ॥ १ ॥
रसना तकलीने बल खाया सो अब कैसें खूटे।
शबद सूत सूधा नहि निकसै घड़ी घड़ी पल टूटे ॥ २ ॥
आयु मालका नहीं भरोसा अंग चलाचल सारे।
रोज इलाज मरम्मत चाहे वैद बाढ़ही हार ॥ ३ ॥
नया चरखला रंगा चंगा सबका चित्त चुरावै।
पलटा बरन गये गुन अगले अब देखें नहिं भावै ॥ ४ ॥
मौटा मही कातकर भाई! कर अपना सुरमेरा।
अंत आग में ईंधन होगा 'भूधर' समझ सवेरा ॥ ५ ॥
[१८३]

राग—पालू

पानी में मीन पियासी मोहे रह रह आवे हांसी रे ॥
ज्ञान बिना भव वन में भटक्यो
कित जमुना कित काशी रे ॥ पानी० ॥१॥

जैसे हिरण नाभि किस्तूरी,
वन वन फिरत उदासीरे ॥ पानी० ॥२॥
'भूधर' भरम जाल को त्यागो,
मिट जाये जम की फांसी रे ॥ पानी० ॥३॥

[१८४]

राग–मल्हार

वे मुनिवर कब मिलि हैं उपगारी ॥
साधु दिगम्बर नगन निरम्बर,
सवर भूषणधारी ॥ वे मुनि० ॥ १ ॥
कचन काच बराबर जिनकैं,
ज्यों रिपु त्यौ हितकारी ॥
महल मसान मरन अरु जीवन,
सम गरिमा अरुगारी ॥ वे मुनि० ॥ २ ॥
सम्यग्ज्ञान प्रधान पवन बल,
तप पावक परजारी ॥
सेवत जीव सुवर्ण सदा जे,
काय-कारिमा टारी ॥ वे मुनि० ॥ ३ ॥
जोरि जुगल कर भूधर विनवै,
तिन पद ढोक हमारी ॥
भाग उदय दरसन जब पाऊ,
ता दिन की वलिहारी ॥ वे मुनि० ॥ ४ ॥

[१८५]

कंठ दबै तब नाहिं बागे काज बनाले सरती में।
फिर पछताये कुछ नहिं होवे कूप खुदै नहीं जरती में ।२।
मानुष भव तेरा श्रावक कुल यह कठिन मिला इस धरती में।
'भूधर' भव दधि चढ़नर उतरो समकित नवका तरती में ।।३।।

[१८२]

राग-ग्रासावरी

चरखा चलता नाहीं (रे) चरखा हुआ पुराना (वे) ॥
पग खूंटे दो हालन लागे उर मदरा खखरना।
छीदी हुई पांखड़ी पांसु, फिरै नहीं मनमाना ॥ १ ॥
रसना तकलीने बल खाया सो अब कैसें खूटे।
शबद सूत सुधा नहिं निकसै घड़ी घड़ी पल टूटै ॥ २ ॥
आयु मालका नहीं भरोसा अंग चलाचल सारे।
रोज इलाज मरम्मत चाहै, वैद बाढ़ही हारे ॥ ३ ॥
नया चरखला रंगा चंगा सबका चित्त चुरावै।
पलटा बरन गये गुन अगले अब देखें नहिं भावै ॥ ४ ॥
मौटा मही कातकर भाई ! कर अपना सुरमेरा।
अंत आग में ईंधन होगा 'भूधर' समझ सवेरा ॥ ५ ॥

[१८३]

राग-पालू

पानी में मीन पियासी मोहे रह रह आवे हांसी रे ॥
ज्ञान बिना भव बन में भटक्यो
कित जमुना कित काशी रे ॥ पानी० ॥१॥

जैसे हिरण नाभि किस्तूरी,
वन वन फिरत उदासीरे ॥ पानी० ॥२॥
'भूधर' भरम जाल को त्यागो,
मिट जाये जम की फांसी रे ॥ पानी० ॥३॥

[१८४]

राग–मल्हार

वे मुनिवर कव मिलि हैं उपगारी ॥
साधु दिगम्बर नगन निरम्बर,
सवर भूपणधारी ॥ वे मुनि० ॥ १ ॥
कचन काच वरावर जिनकैं,
ज्यों रिपु त्यौ हितकारी ॥
महल मसान मरन अरु जीवन,
सम गरिमा अरुगारी ॥ वे मुनि० ॥ २ ॥
सम्यग्ज्ञान प्रधान पवन वल,
तप पावक परजारी ॥
सेवत जीव सुवर्ण सदा जे,
काय-कारिमा टारी ॥ वे मुनि० ॥ ३ ॥
जोरि जुगल कर भूधर विनवै,
तिन पद ढोक हमारी ॥
भाग उदय दरसन जव पाऊ,
ता दिन की वलिहारी ॥ वे मुनि० ॥ ४ ॥

[१८५]

राग-माढ

सुनि ठगनी माया तैं सब जग ठग खाया।
टुक विश्वास किया जिन तेरा सो मूरख पछताया॥
सुनि० ॥१॥

आभा तनक दिखाय बिज्जु ज्यों मूढमती ललचाया।
करि मद अंध धर्म हर लीनों अन्त नरक पहुँचाया॥
सुनि० ॥२॥

केते कंथ किये तैं कुलटा तो भी मन न अघाया।
किसहीसौं नहिं प्रीति निभाई वह तजि और लुभाया॥
सुनि० ॥३॥

'भूधर' छलत फिरत यह सबकों भौंदू करि जग पाया।
जो इस ठगनी को ठग बैठे मैं तिनको सिर नाया॥४॥

[१८६]

राग-ख्याल तमाशा

देख्या बीच जहान के स्वपने का अजब तमाशा वे॥
एकोंके घर मंगल गावैं पूगी मन की आसा।
एक वियोग भरे बहु रोवैं भरि भरि नैन निरासा॥१॥
तेज तुरंगनिपै चढ़ि चलते पहरैं मलमल खासा।
रंक भये नागे अति डोलैं ना कोइ देय दिलासा॥२॥
तरकैं राज-तख्तपर बैठा था खुशवक्त खुलासा।
ठीक दुपहरी मुद्दत आई, जंगल कीना वासा॥३॥

तन धन अथिर निहायत जगमें, पानी माहि पतासा।
'भूधर' इनका गरव करैं जे फिट तिनका जनमासा ॥४॥

[१८७]

राग-ख्याल तमाशा

प्रभु गुन गाय रे, यह औसर फेर न पाय रे ॥
मानुष भव जौग दुहेला, दुर्लभ सतसगति मेला।
सब बात भली बन आई, अरहन्त भजौ रे भाई ॥१॥
पहलैं चित-चीर सभारो कामादिक मैल उतारो।
फिर प्रीति फिटकरी दीजे, तब सुमरन रंग रँगीजे ॥२॥
धन जोर भरा जो कूवां, परवार बढैं क्या हूवा।
हाथी चढि क्या कर लीया, प्रभु नाम विना धिक जीया ॥३॥
यह शिक्षा है व्यवहारी निहचै की साधनहारी।
'भूधर पैडी पग धरिये, तब चढनेको चित करिये ॥४॥

[१८८]

राग-काफी होरी

अहो वनवासी पीया तुम क्यों छारी अरज करै राजल नारी
॥ अरज० ॥
तुम तौ परम दयाल सबन के, सबहिन के हितकारी।
मो कठिन क्यों भये सजना, कहीये चूक हमारी॥
॥ अरज० ॥ १ ॥

तुम बिन ऐक पलक पीया मरे जाय पहर सम मारी।
क्यों करि निस दिन भर नेमजी तुम तो ममता मारी॥
॥ भरज० ॥ २ ॥

जैसे रैनि वियोगज चकई तो बिलपै निस सारी।
आसि बांधि अपनी जिय राखै भात मिलयों था प्यारा॥
मैं निरास निरधार निरमोही जिउ किम दुखधारी।
॥ अरज० ॥ ३ ॥

अब ही भोग जोग हो बालम देखो चित्त विचारी।
आगे रिषभ देव भी ब्याही कच्छ सुकच्छ कुमारी॥
सोही पंथ गहो पीया पाछे हो ज्यो संजम धारी॥
॥ अरज० ॥ ४ ॥

जैसे विरहे नदी मैं व्याकुल उग्रसेन की बारी।
धनि धनि समद विजै के नंदन बुधव पार उतारी॥
सो ही किरया करी हम ऊपरि भूधर सरण विहारी॥
॥ अरज० ॥ ५ ॥

[१८६]

राग–विहागरो

नमि बिना न रहे मेरो जियरा॥
हेर री हेली तपत उर कैसो
लावत क्यों निज हाथ न नियरा॥
नेमि बिना० ॥ १ ॥

करि करि दूर कपूर कमल दल,
लगत करूर कलाधर सियरा ॥
नेमि बिना० ॥ २ ॥

भूधर के प्रभु नेमि पिया बिन,
शीतल होय न राजुल हियरा ॥
नेमि बिना० ॥ ३ ॥

[१६०]

राग–सोरठ

भगवंत भजन क्यों भूला रे ॥
यह ससार रैन का सुपना, तन धन वारि–बबूला रे ॥
भगवन्त० ॥ १ ॥

इस जीवन का कौन भरोसा, पावक में तृणपूला रे।
काल कुदार लिये सिर ठाडा, क्या समझै मन फूला रे ॥
भगवन्त० ॥ २ ॥

स्वारथ साधै पाच पॉव तू, परमारथ को लूला रे।
कहु कैसे सुख पैहैं प्राणी काम करै दुखमूला रे ॥
भगवन्त० ॥ ३ ॥

मोह पिशाच छल्यो मति मारै निजकर कध वसूला रे।
भज श्रीराजमतीवर 'भूधर' दो दुरमति सिर धूला रे ॥
भगवन्त० ॥ ४ ॥

[१६१]

राग—मांढ़

आया रे बुढ़ापा मानी सुधि बुधि बिसरानी ॥
श्रवण की शक्ति घटी चाल चले अटपटी।
देह लटी भूख घटी लोचन झरत पानी ॥
आयारे० ॥ १ ॥

दांतन की पंक्ति टूटी हाड़न की संधि छूटी।
काया की नगरि लूटी जात नहीं पहिचानी ॥
आयारे ॥ २ ॥

बालों न वरण फेरा, रोग न शरीर घेरा।
पुत्रहू न आवै नेरा औरों की कहा कहानी ॥
आयार ॥ ३ ॥

'भूधर' समुझि अब स्वहित करोग कब।
यह गति ह्वै है जब तब पिछतैहैं प्राणी ॥
आयारे० ॥ ४ ॥

[१६२]

राग—सोरठ

होरी खेलूंगी घर आए चिदानंद ॥
शिशर मिथ्यात गई अब
आइ काल की लब्धि बसंत ॥ होरी० ॥१॥

पीय सग खेलनि कौं,

हम सइये तरसी काल अनन्त ॥

भाग जग्यो अब फाग रचानो,

आयौ विरह को अत ॥ होरी० ॥२॥

सरधा गागरि मे रुचि रूपो,

केसर घोरि तुरन्त ॥

आनन्द नीर उमग पिचकारी,

छोड़ूगी नीकी भत ॥ होरी० ॥३॥

आज वियोग कुमति सौतनिकौं,

मेरे हरग अनत ॥

भूधर धनि एही दिन दुर्लभ,

सुमति राखी विहसत ॥ होरी० ॥४॥

[१६

बख्तराम साह

(संवत् १७८०–१८४०)

साह बख्तराम मूलत: चाटसू (राजस्थान) के निवासी थे लेकिन बाद में ये जयपुर आकर रहने लगे थे। जयपुर नगर का लश्कर का दि॰ जैन मन्दिर इनकी साहित्यिक गतिविधियों का केन्द्र था। इनके पिता का नाम पेमराम था। इनकी जाति खण्डेलवाल एवं गोत्र साह था। इनके समय में जयपुर धार्मिक सुधार आंदोलनों का केन्द्र था और महापंडित टोडरमल जी उसके नेता थे। बख्तराम प्राचीन परम्पराओं में सुधार के सम्भवत: पक्षपाती नहीं थे और इसी उद्देश्य से इन्होंने पहिले 'मिथ्यात्व खण्डन' और बाद में 'बुद्धि विलास' की रचना की थी। मिथ्यात्व खण्डन में १४२३ दोहा चौपाई छन्द हैं तथा वह सम्वत् १८२१ की

रचना है। इसी प्रकार बुद्धिविलास में १५२१ दोहा चौपाई एवं १८२७ उसका रचना काल है। बुद्धिविलास के प्रारम्भ में आमेर एवं जयपुर राज्य का विस्तृत वर्णन मिलता है जो इतिहास के विद्यार्थियों के लिये भी अच्छी रचना है।

बखतराम की उक्त रचनाओं के अतिरिक्त पद भी पर्याप्त संख्या में मिलते हैं। जो भक्ति एवं आध्यात्मिक विषयों के अतिरिक्त नेमि-राजुल के जीवन से सम्बन्धित हैं। पदों एवं रचनाओं की भाषा राजस्थानी है।

(१६३)

राग–पूरवी

तुम दरसन तैं देव सकल अघ मिटि है मेरे ॥
कृपा तिहारी तैं करुणा निधि,
उपज्यौ सुख अछेव ॥ सकल० ॥ १ ॥
अब लौं तिहारे चरन कमल की,
करी न कब हूँ सेव ॥
अबहूँ सरनै आयौ तब तैं,
छूटि गयौ अहमेव ॥ सकल० ॥ २ ॥
तुम से दानी और न जग मैं,
जांचत हौ तजि भेव ॥
बखतराम के हियें रहौ तुम,
भक्ति करन की टेव ॥ सकल० ॥ ३ ॥

[१६४]

राग–ललित

दीनानाथ दया मो पै कीजिये।
मोसो अधम उधारि प्रभु जग मांझि यह लख लीजिये ॥
दीनानाथ० ॥१॥
बिन जाने कीने अति पातिग मैं तिन उर दृष्टि न दीजिये।
निज बिरद सम्हारि कृपाल अबै भव वारि तैं पार करीजिये ॥
दीनानाथ० ॥२॥

रचना है। इसी प्रकार बुद्धिविलास में १५२१ दोहा चौपाई एवं १८२० उनका रचना काल है। बुद्धिविलास के प्रारम्भ में आमेर एवं जयपुर राज्य का विस्तृत वर्णन मिलता है जो इतिहास के विद्यार्थियों के लिये भी अच्छी रचना है।

बखतराम की उक्त रचनाओं के अतिरिक्त पद भी पर्याप्त संख्या में मिलते हैं। जो भक्ति एवं आध्यात्मिक विषयों के अतिरिक्त नेमि-राजल के जीवन से सम्बन्धित हैं। पदों एवं रचनाओं की भाषा राजस्थानी है।

इनके मेरे रे गये है नरकिहि,
रावन आदि भये महिमानी।
गये अनेक जीव अनगिनती,
तिनकी अव कहा कहिये कहानी ॥२॥
इनके वसि नाना विधि नाच्यों,
तामे कहो कौन सिधि जानी ॥
लख चौरासी मैं फिर आयौ,
अजहूँ समझि समझि अग्यानी ॥३॥
यह जानि भजि वीतराग को,
और कछु मन मैं मति आनी।
वखतराम भवदधि तिर है,
मुक्ति वधू सुख पै है सग्यानी ॥४॥

[१६७]

राग-झंझोटी

इन करमौं तैं मेरा जीव डरदा हो ॥ इन० ॥
इनही के परसग तैं सांई,
भव भव मैं दुख भरदा हो ॥ इन० ॥१॥
निमष न सग तजत ये मेरा,
मैं वहुतेरा ही तडफदा हो ॥ इन० ॥२॥
ये मिलि वहौत दीन लखि मो को,
आठों ही जाम रहै लरदा हो ॥ इन० ॥३॥

बिनती बख्ता की सुनो चित दे जब लो सिव पास लहीजिये ।
तब लो तेरी भक्ति रहो उर मैं कोटि पाप की बात कहीजिये ॥
दीनानाथ० ॥३॥

[१६५]

राग–धनासिरी

तुम बिन नहिं तारे कोइ ।
जे ही तिरत जगत में तिन परि
कृपा तिहारी होइ ॥ तुम० ॥ १ ॥
इन विषियन के रंग राचि के,
विपदेखी मैं थाइ ॥ तुम० ॥ २ ॥
आय परयो हूं सरनि तिहारे
विकलपता सब खोइ ॥ तुम० ॥ ३ ॥
दीन जानि बाधा बखता के,
करौ उचित है सोइ ॥ तुम० ॥ ४ ॥

[१६६]

राग–नट

सुमरन प्रभुजी को करि रे प्रानी ॥
कौन भरोसे तू सोवै निसिदिन
अष्ट करम तेरे अरि रे ॥१॥

इनके मेरे रे गये हैं नरकिहि,
रावन आदि भये महिमानी।
गये अनेक जीन अनगिनती,
तिनकी अब कहा कहिये कहानी ॥२॥
इनके वसि नाना विधि नाच्यों,
तामें कहो कौन सिधि जानी॥
लख चौरासी मैं फिर आयौ,
अजहूँ समझि समझि अग्यानी ॥३॥
यह जानि भजि वीतराग को,
और कछु मन मै मति आनी।
बखतराम भवदधि तिर है,
मुक्ति वधू सुख पै है सग्यानी ॥४॥

[१६७]

राग—झंझोटी

इन करमौ तैं मेरा जीव डरदा हो॥ इन०॥
इनही के परसग तैं सांई,
भव भव मैं दुख भरदा हो ॥ इन० ॥१॥
निमष न सग तजत ये मेरा,
मैं बहुतेरा ही तडफदा हो ॥ इन० ॥२॥
ये मिलि बहौत दीन लखि मो कौं,
आठों ही जाम रहै लरदा हो ॥ इन० ॥३॥

दुख और दरद की मैं सब ही भाखया,
प्रभु तुम सौं नाही परदा हो ॥ इन० ॥४॥
घसतराम कहे अब तो इनका
फेरि न कीजिये भारखूदा हो ॥ इन० ॥५॥
[१६८]

राग—गौडी

चेतन तैं सब सुधि बिसरानी भइया ॥
झूठौं जग सांचौ करि मान्यौ
सुनी नहीं सतगुरु की बानी भइया ॥ चे० ॥१॥
भ्रमत फिरयौ चहुँगति मैं अब तो
मूल मिथ्या सही नींद निसानी भइया ॥ च० ॥२॥
ये पुद्गल जड़ जानि सदा ही
तेरी तौ निज रूप सग्यानी भइया ॥ च ॥३॥
बखतराम सिव सुख तब पै है,
हो है तब जिनमत सरधानी भइया ॥ चे० ॥४॥
[१६६]

राग—खभावचि

चेतन नरभव पाय कै हो आमि वृथा कहाँ खोवै है।
पुदगल के कै रंग राचि कै हो
मोह मगन होय सोवै है० ॥ १ ॥

ये जड रूप अनादि को,
तोहि भव भव मांझि विगोवै छै ॥
भूलि रह्यो भ्रम जाल मैं,
तु आयो आय लकोवै छै ॥ क्यौ ॥२॥
विषयादिक सुख त्यागि कैं,
तू ग्यान रतन कि न जोवै छै ॥
वखतराम जाकै उदै हो,
मुक्तिवधू सुख होवै छै ॥ क्यौ० ॥३॥

[२००]

राग-कानरो नायकी

चेतन वरज्यो न मांनै, उरझ्यों कुमति पर नारी सौं ॥
सुमति सी सुखिया सों नेह न जोरत,
रूसि रह्यो वर नारि सों ॥ चेतन० ॥१॥
रावन आदि भये वसि जाकै,
नहि डरयो कुलगारि सों।
नरक तने नाना दुख पायो,
नेह न तज्यो हे गॅवारि सों ॥ चेतन० ॥२॥
कहिये कहा कुटलताइ जाकी,
जीते न कोउ अकारि सों ।
बखत वडे जिन सुमति सों नेह कीन्हों,
ते तिरे भव है वारि सौं ॥ चेतन० ॥३॥

[२०१]

राग रामकली

अब तो जानी है प्रभु ज्ञानी।
प्रभु नेम भए हो ग्यानी ॥
तजि गृहवास चढे गिरनेरी।
सुगति जोग की ठानी ॥
तीन लोक में महिमा प्रगटी।
ह्वै बैठे निरवानी ॥ अब तो० ॥१॥
लोग दिखावन को तुम पल में।
छांडि राजमती रानी ॥
लोम तज्यो हम कैसे समझे।
मुक्ति वधू मनमानी ॥ अब तो० ॥२॥
कीरति करुणा सिंधु विहारी।
कवि पै जाय बखानी ॥
बखतराम के प्रभु आशोपति।
भविजन को सुखदानी ॥ अब तो० ॥३॥

[२०२]

राग—आसावरी

म्हारा नेम प्रभु सौं कहि क्यों जी ॥
म्हे भी तप करिया संग चाल्यां
प्रभु घरीयक क्षमा रहिस्यो जी ॥ म्हारा० ॥१॥

लार राखना मे काइ थाने प्रभु,
बुरी भी कहे तो सहि ज्यो जी ॥ म्हारा० ॥२॥
भव ससार उदधि मे बूडत,
हाथ हमारो गहिज्यो जी ॥ म्हारा ॥३॥
बखतराम के प्रभु जादोंपति,
लाज; बिरद की निबहिज्यो जी ॥ म्हारा० ॥४॥

[२०३]

राग–गौडी

जब प्रभु दूरि गये तब चेती ॥ जब० ॥
अब तो फिरे नही कबहूँ,
कोऊ कहौ किन केती ॥ जब० ॥ १ ॥
वे तो जाय चढे गिरनेरी,
छाडे सकल जनेती ।
होय दिगम्बर लौंच लई कर,
तू रहि गई पछेती ॥ जब० ॥ २ ॥
ध्यान धरयौ जिन चिदानन्द कौ,
सहै परीसह जेती ॥
कर्म काटि वे जाय मिलेगें,
मुक्ति कामिनी सेती ॥ जब० ॥ ३ ॥
चलिये बेग सरन प्रभु ही कैं,
और बिचार न हेती ॥

यह बसत मन कृपा सिंधु कौं
सो ध्यावै पै धनिबेती ॥ जब० ॥ ४ ॥

[२०४]

राग–भूपाली

सखी री जहां मेरे पारिरी।
धरी जहां नेम धरत है ध्यान ॥
उन बिन माहि सुहात न पलहूँ,
वसफत है मेरे प्रांण ॥ सखी री० ॥ १ ॥
कुटंब काज सब लागत फीके
नैक न भावत आन ॥
अब तो मन मेरो प्रभु ही के
लग्यो है चरन कमलान ॥ सखी री० ॥ २ ॥
तारन तरन बिरद है जिनको
यह कीनी परमान ॥
बखतराम हम कू हूं तारोगे
करुणा कर भगवान ॥ सखी री० ॥ ३ ॥

[२०५]

राग–परज

देखो माई आदोपतिनै कहा करी री ॥
पद्युमन कौं मिस करि रथ फेरयो
गिरि परि शीरया धरी री ॥ देखो० ॥ १ ॥

हे हां काहे को प्रभु जोग कमायो,
त्रिसना तन की न करी री ॥
हेमसी तिय मन कु' नही भाइ,
मुक्ति वधु को वरी री ॥ देखो० ॥ २ ॥
बखतराम प्रभु की गति हमको,
जानी क्यों हूँ न परी ॥
जब चरनारविंद हू निरखौं,
सो ही सफल घरी ॥ देखो० ॥ ३ ॥

[२०६]

राग भैरू

तू ही मेरा समरथ साई ॥
तो सो खावद पाय कृपानिधि,
कैसे और की सरन गहाई ॥ तू ही० ॥ १ ॥
जग तीनों सब तोकू जानत,
गुरु जन हूं ग्र थनि मैं गाई ।
परभव में जो शिव सुख दे है,
या भव की तौं कौन चलाई ॥ तू ही० ॥ २ ॥
हुतो भरोसो मोकू तेरो,
दोढि हमारी करि है सहाई ।
जानि परी कलिकाल असर यह,
तुमहूँ पै गयो व्यापी गुसाई ॥ तू ही० ॥ ३ ॥

भाग्य हमारे लिख्यौ सही हो है,
सो तुम ही काहे जपाई।
होनी होय सो होय पै तेरो
अधम उधारन बिरद् कहाई॥ तू ही ॥ ४॥
तातैं भवदुख मेटि करो सुख
तो तुम साँचो बिरद् कहाई।
बखतराम के प्रभु जादोंपति
दीन दुखी लखि देहु निवाई॥ तू ही ॥ ५॥
[२०७]

नवलर

(संवत् १७६०-१

नवलराम १८ वीं शताब्दी के कवि थे।
के रहने वाले थे। महापंडित दौलतराम जी
घनिष्ट सम्बन्ध था और इन्हीं की प्रेरणा से इनको
रुचि हुई थी। वर्द्धमान पुराण को उन्होंने संवत् १८२५
था। कवि के पद जैन समाज में अत्यधिक प्रिय हैं और
से धार्मिक उत्सवों एवं आयोजनों में गाया जाता है। अब
२२२ पद प्राप्त हो चुके हैं। वर्द्धमान पुराण के ि
रचनाओं में जय पच्चीसी, विनती, रेखता आदि के नाम उल्ल

नवलराम भक्ति शाखा के कवि थे। वीतराग प्रभु के
स्तवन में इन्हें बड़ा आनन्द आता था। इसीलिए इनके चि

भाग्य हमारे लिख्या सही हो है,
सो तुम ही काहे बपाई।
होनी होय सो होय पै तेरो,
अधम उधारन बिरद सजाई ॥ तू ही ॥ ४ ॥
तातै मबदुख मेटि करो सुख
तो तुम सांचो बिरद बड़ाई।
मखतराम के प्रभु आतोंपति
दीन दुखी लखि देहु निवाही ॥ तू ही ॥ ५ ॥
[२०७]

नवलराम

(संवत् १७९०–१८५५)

नवलराम १८ वीं शताब्दी के कवि थे। ये बसवा (राजस्थान) के रहने वाले थे। महापंडित दौलतराम जी कासलीवाल से इनका घनिष्ट सम्बन्ध था और इन्हीं की प्रेरणा से इनको साहित्य की ओर रुचि हुई थी। वर्द्धमान पुराण को उन्होंने सवत् १८२५ में समाप्त किया था। कवि के पद जैन समाज में अत्यधिक प्रिय है और उन्हें बडे चाव से धार्मिक उत्सवों एव आयोजनो में गाया जाता है। अब तक इनके २२२ पद प्राप्त हो चुके हैं। वर्द्धमान पुराण के अतिरिक्त इनकी रचनाओं में जय पच्चीसी, विनती, रेखता आदि के नाम उल्लेखनीय हैं।

नवलराम भक्ति शाखा के कवि थे। वीतराग प्रभु के दर्शन एव स्तवन में इन्हें बड़ा आनन्द आता था। इसीलिए इनके अधिकाश पद

भक्ति परक है। दर्शन करने से इनकी आँखें सफल हो जाती थी इसीलिए वे 'आखि सफल भई मेरी अखियाँ' का गीत गाने लगते थे। अपने इन पदों में वे यही सिद्ध करते थे कि भगवान का दर्शन महान् पुण्य का स्रोत है और जिसने इनका भजन कर लिया उसने मोक्ष मार्ग को प्राप्त कर लिया और जिसने नहीं किया वह रीता ही रह गया। कवि के पदों की भाषा वैसे तो खड़ी हिन्दी है किन्तु उसमें राजस्थानी शब्दों का भी प्रयोग मिलता है।

कवि के जीवन की विशेष घटनाओं की जानकारी अभी खोज का विषय है।

राग-बिलावल

अब ही अति आनन्द भयो है मेरै ॥
परम सात मुद्रा लखि तेरी,
भाजि गये दुख दृद ॥ १ ॥
चरन सरनि आयो जब ही,
तोडे रे करम रिपु रिंद ।
और न चाहि रहो अब मेरे,
लहे सुखन के कंद ॥ २ ॥
जैसे जनम दरिद्री पायो,
वाछित धन की वृद ।
फूलो अ ग अ ग नही मावत,
निज मन मानत इद ॥ ३ ॥
भव आताप निवारन कौ,
हो प्रगट जगत मैं चन्द ॥
नवल नम्यो मस्तग द्वै कर धरि,
तारक जांनि जिनंद ॥ ४ ॥

[२०८]

राग-सोरठ

आजि सुफल भई दो मेरी अखियां ॥
अदभुत सुख उपज्यो उर अ तर,
श्री जिन पद पकज लखियां ॥ आजि० ॥१॥

अति हरषाय मगन भई औसे
जो रंजत जल में मछियां ॥ आजि ॥२॥
और ठौर पख एक न राखे,
जे गुण गुन अमृत चखियां ॥ आजि० ॥३॥
पंथ सु पंथ तरो मग लागी
असुभ क्रिया सबही नसियां ॥ आजि० ॥४॥
नवल कहे ये ही मैं इच्छित
भव भव मैं प्रभु तेरी पखियां ॥ आजि० ।५॥
[२०६]

राग-कान्हरो

औसे खेल होरी को खेलि रे ॥
कुमति ठगोरी को अब तजि करि,
तु साथ सुमति गोरी को ॥ खेलि० ॥१॥
प्रत चंदन तप सुध अरगजो
जल छिरको संजम बोरी को ॥ ॥२॥
करमा तणा अबीर उडावो
रंग करुना केसरि घोरी को ॥३॥
ग्यान गुलाल विमल मन चोवो,
फुनि करि त्याग सकल चोरी को ॥४॥
नवल इसी विधि खेलत है
ते पावत है मग शिव पौरी को ॥५॥
[२१०]

राग-सोरठ में होली

इह विधि खेलिये होरी हो चतुर नर ॥

निज परनति सगि लेहु सुहागिन,
अरु फुनि सुमति किसोरी हो ॥ चतुर० ॥१॥

ग्यान मइ जल सौ भरि भरि कै,
सबद पिचरिका छोरी ॥
क्रोध मान अबीर उडावो,
राग गुलाल की झोरी हो ॥ चतुर० ॥२॥

गहि सतोष यौ ही सुभ चदन,
समता केसरि घोरी ॥
आतम की चरचा सोही चोबो,
चरचा होरा होरी हो ॥ चतुर० ॥३॥

त्याग करो तन तणी मगनता,
करुना पांन गिलोरी ॥
करि उछाह रुचि सेती ल्यो,
जिन नाम अमल की गोरी ॥ चतुर० ॥४॥

सुचिमन रग बनावो निरमल,
करम मैल धौ टौरी ॥
नवल इसी विधि खेल खेलो,
ज्यो अघ भाजै वर जोरी हो ॥ चातुर० ॥५॥

भवि हरषात मगन भई ऐसे
जो रजत जल मैं मछियां ॥ आजि ॥२॥
और ठौर पल एक न रावै
जे तुम गुन अमृत चखियां ॥ आजि० ॥३॥
पंथ सु पंथ लगो मग लागी
अशुभ क्रिया सबही नसियां ॥ आजि० ॥४॥
नयन कहै ये ही मैं इच्छित
भव भव मैं प्रभु तेरी पखियां ॥ आजि० ॥५॥

[२०९]

राग-कान्हरो

ऐसे खेल होरी को खेलि रे ॥
कुमति ठगोरी कौं अब तजि करि
तु साथ सुमति गोरी को ॥ खेलि० ॥१॥
मन चंदन तप सुध अरगजो
जल छिरको संजम बोरी को ॥ ॥२॥
करमा तणा अबीर उडावो
रंग करुना केसरि घोरी को ॥३॥
ध्यान गुलाल विमल मन चोबा,
पुनि करि त्याग सकल चारी को ॥४॥
नयन इसी विधि 'अमृत' है
न पावन है मग शिव पौरी को ॥५॥

[२१०]

राग-सोरठ में होली

इह विधि खेलिये होरी हो चतुर नर ॥
निज परनति सगि लेहु सुहागिन,
अरु फुनि सुमति किसोरी हो ॥ चतुर० ॥१॥
ग्यान मइ जल सौ भरि भरि कै,
सबद पिचरिका छोरी ॥
क्रोध मान अबीर उडावो,
राग गुलाल की झोरी हो ॥ चतुर० ॥२॥
गहि सतोष यौ ही सुभ चदन,
समता केसरि घोरी ॥
आतम की चरचा सोही चोवो,
चरचा होरा होरी हो ॥ चतुर० ॥३॥
त्याग करो तन तणी मगनता,
करुना पांन गिलोरी ॥
करि उछाह रुचि सेती ल्यो,
जिन नाम अमल की गोरी ॥ चतुर० ॥४॥
सुचिमन रग बनावो निरमल,
करम मैल यौ टौरी ॥
नवल इसी विधि खेल खेलो,
ज्यो अघ माजै वर जोरी हो ॥ चातुर० ॥५॥

राग–सोरठ

की परि इतनी मगरूरि करी ॥

पाति सके तो चेति पामरे
नावर मूरत है सगरी ॥ की परि० ॥ १ ॥

कित तैं आयो फिरि कित जै है
समझ देख नही ठीक परी।

ओस बूँद सौ जीवन तेरो,
धूप लाग न रहत घरी ॥ की परि० ॥ २ ॥

मद परिग्रह इत्यादिक मेरो
मानत है सो जानि परी ॥

निज देही लखि मगन होत तू,
सो मल-मूतर पूरि भरी ॥ की परि० ॥ ३ ॥

सास्त्र बात की येक बात ये
सो सुनि अपने कानें धरी।

छाडि बडी नेकी करि भाई
नवल कहत यह यात खरी ॥ कीपरि० ॥ ४ ॥

[२१२]

राग–सोरठ

जगत मैं धरम पदारथ सार ॥
धरम बिना प्रानी पावत है दुख नाना परकार ॥
जगत मैं ॥ १ ॥

दिढ सरधा करिये जिनमत की पाहन की धार ।
जो करि सो विवेक लिया करि श्रुत मारग अनुसार ॥
जगत मैं० ॥ २ ॥

दान पुंनि जप तप संजम व्रत करि दिल अति सुकमार ।
सब जीवन की रच्या कीजे कीजे पर उपगार ॥
जगत मैं० ॥ ३ ॥

अंग अनेक धरम के तिनको कहित वढै विस्तार ।
नवल सत्व भाष्यो थोरे मैं करि लीज्यो निरधार ॥
जगत मैं० ॥४॥

[२१३]

राग-सोरठ

जिन राज भजा सोही जीता रे ॥
भजन कीया पावै सिव सपति, भजन विना रहै रीतारे ॥
॥ जिन० ॥१॥

धरम विना वन है चक्की सम, गो दुख भार सलीता रे ।
धरम माहि रत बन नहि तो, पण वो जग माहि पुनीता रे ॥
॥ जिन० ॥२॥

या सरधा विन भ्रमत भ्रमत तोहि, काल अनन्त वितीतारे ।
वीतराग पद नरनि गही तिन, जनम सफल करि लीतारे ॥
॥ जिन० ॥३॥

मन वचतन द्रिढ प्रीति आनि कर जिन गुन गाथा गीवा रे।
नाम महात्म्य श्रवनन सुनिकै नवल सुधारस पीवा रे॥
॥ जिन० ॥४॥

[२१४]

राग—सोरठ

या परि वारी हो जिन राय॥
देखत ही आनन्द बहु उपज्यो पातिग दूर बिडारी हो॥
जिन राय० ॥१॥

तीन छत्र सुन्दर सिर सोहे रतन जटित सुखकारी हो।
पुनि सिंघासन अद्भुत राजै सब जनकू हितकारी हो॥
जिन राय० ॥२॥

शोक जाल आपय ही छूटी सब परिग्रह तजि भारी हो।
मुथि म रही छवि देखि रावरी अबतैं नैन निहारी हो॥
जिन राय० ।३॥

दोष अठारा रहित विराजो गुन छियालीस धारी हो।
नवल जोरि कर करत बिनती राखो लाज हमारी हो॥
जिन राय० ॥४॥

[२१५]

राग-देव गंधार

अब इन नैनन नेम लीयौ ॥
दरस जिनेसुर ही को करणो,
ये निरधार कीयौ ॥ अब इन० ॥१॥
चंद चकोर मेघ लखि चातक,
इक टक चित्त दीयौ ॥
ऐसै ही इन जुगल द्रगयनि,
प्रभु में कीयो है हीयो ॥ अब इन० ॥२॥
अति अनुराग धारि हित सौं,
अर मानत सफल जीयौ ॥
नवल कहै जिन पद पकज रस,
चाहत है वैही पीयौ ॥ अब इन० ॥३॥

[२१६]

राग-सोरठ

प्रभु चूक तकसीर मेरी माफ करिये ॥
समझि बिन पाप मिथ्यात बहु सेइयो,
ताहि लखि तनक हूँ चित न धरिये ॥१॥
तात अरु मात सुत भ्रात फुनि कामनी,
इन सग राचि निज गुनन विसरिये ॥
मान मायाचारी क्रोध नहि तजि सक्यो,
पीय समता रस न मोह हरिये ॥२॥

मन वच तन दृढ प्रीति आनि कर जिन गुन गाथा गीतार।
नाम महात्म्य श्रवनन सुनिके, नवल सुधारस पीता रे ॥
॥ जिन० ॥४॥

[२१४]

राग—सोरठ

या परि वारी हो जिन राय ॥
देखत ही आनन्द बहु उपज्यो पातिग दूर विडारी हो ॥
जिन राय० ॥१॥

तीन छत्र सुन्दर सिर सोहे रतन जडित सुखकारी हो।
पुनि सिंघासन अद्भुत राजै सब जनकू हितकारी हो ॥
जिन राय० ॥२॥

शोक नाश आपण ही छूटी सब परिग्रह तजि भारी हो।
सुधि न रही छवि देखि रावरी अपनी नैन निहारी हो ॥
जिन राय० । ३॥

दोष अठारा रहित विराजो गुन छियालीस धारी हो।
नवल जोरि कर करत विनती राखो लाज हमारी हो ॥
जिन राय० ॥४॥

[२१५]

राग-सोरठ

साँवरिया थे म्हानें दरस दिखावो ॥
अब मो मन की आशा पूरो,
थांरे नेह की रीति जतावो ॥ म्हानें० ॥ १ ॥
ये अँखियां प्यासी दरसन की,
सांति सुधारस बरसावो ।
नवल नैन प्रभु मो सुधि लीजे,
थांरे अब मति ढील लगावो ॥ म्हानें० ॥ २ ॥

[२१९]

राग-सोरठ

हो मन जिन जिन क्यों नहीं रटै ॥
जाके चिंतवन ही तें तेरे संकलप विकलप मिटै ॥
हो मन० ॥ १ ॥
कर अंजुली के जल की नांई, छिन छिन आव जु घटै ।
याते विलम न करि भजि प्रभु ज्यौं भरम कपाट जु फटै ॥
हो मन० ॥ २ ॥
जिन मारग लागे विन तेरी, भव संतति नाहिं कटै ।
या सरधा निश्चै उर धरि ज्यों, नवल लहै सिव तटै ॥
हो मन० ॥ ३ ॥

[२२०]

दान पूजादि विधिसौं नहि बिन सकै,
सुमिर चित बिना तुम ध्यान धरिये ॥
लोभ लाग्यो पथ धर्म नहि जोड्यो
असत मष बोलि हूँ उदर भरिये ॥३॥
पाप अनेक विधि लगत जोलों कहूँ
येक तुम नाम तैं सुख विसुरिये ॥
नवल हूँ बीनती करत जग नाथ पै
काटि जग फांसि ज्यों भव तरिये ॥ प्रभु० ॥४॥

[२१७]

राग-कनड़ी

म्हारो मन लागो जी जिन जी सौं ॥
अद्भुत रूप अनोपम मूरति
निरखि निरखि अनुरागो जी ॥ म्हारो० ॥१॥
समता भाव भये है मेरे
आन भाव सब त्यागो जी ॥ म्हारो ॥२॥
स्वपर विवेक भयो नहीं कबहूँ
सो परगट होय जागो जी ॥ म्हारो० ॥३॥
ज्ञान प्रभाकर उदित भयो अब
मोह महातम भागो जी ॥ म्हारो० ॥४॥
नवल नवल आनंद भये प्रभु,
चरन कमल अनुरागो जी ॥ म्हारो ॥५॥

[२१८]

राग-सोरठ

सांवरिया हो म्हांने दरस दिखावो ॥
सब मो मन की वांछा पूरो,
कांई नेह की रीति जताओ ॥ म्हांने० ॥ १ ॥

ये अखियां प्यासी दरसन की,
सींचि सुधारस सरसावो ।
नवल नेम प्रभु मो सुधि लीजे,
कांई अब मति ढील लगावो ॥ म्हांने० ॥ २ ॥

[२१६]

राग-सोरठ

हो मन जिन जिन क्यों नहीं रटै ॥
जाके चितवन ही तै तेरे सकलप विकलप मिटै ॥
हो मन० ॥ १ ॥

कर अंजुली के जल की नांई, छिन छिन आव जु घटै ।
याते विलम न करि भजि प्रभु, ज्यौं भरम कपाट जु फटै ॥
हो मन० ॥ २ ॥

जिन मारग लागे बिन तेरी, भव सतति नाहि कटै ।
या सरधा निश्चै उर धरि ज्यों, नवल लहै सिव तटै ॥
हो मन० ॥ ३ ॥

[२२०]

राग-पूरवी

मन वीतराग पद वंद रे ॥
नैन निहारत ही हिरदा में
उपजत है आनन्द रे ॥ मन० ॥ १ ॥
प्रभु कों छांडि लगत विषयन में
फरिस सब फंद रे ।
जो अविनाशी सुख चाहै तो
इनके गुनन स्यौं फंद रे ॥ मन० ॥ २ ॥
ये काम रुचि है रासि इन में
त्यागि सकल दुख दुंद रे ।
नवल नवल पुन्य उपजत
याते पाप सब होय निकंद रे ॥ मन० ॥ ३ ॥

[२२१]

राग-मांढ

म्हारा तो नैना में रही छाय होजी हो जिनन्द थांकी मूरति
म्हारा तो नैनामें रही छाय ॥
जो सुख मो उर मांहि भयो है सो सुख कहियो न जाय
म्हारा० ॥ १ ॥
उपमा रहित विराजत हो प्रभु, मानौं परसन न जाय ।
ऐसी सुन्दर छवि जाके ढिग कोटि विपन लख जाय ॥
म्हारा० ॥ २ ॥

तन मन धन निछरावल कर हूँ, भक्ति करू गुण गाय।
यह विनती सुन लेहु 'नवल' की, आवागमन मिटाय॥
म्हारा० ॥ ३ ॥

[२२२]

राग-कनडी

सत संगति जग में सुखदाई॥
देव रहित दूषण गुरु सांचो,
धर्म्म दया निश्चै चितलाई ॥ सत० ॥ १ ॥
सुक मैना संगति नर की करि,
अति परवीन वचनता पाई।
चंद्र कांति मनि प्रगट उपल सो,
जल ससि देखि झरत सरसाई ॥ सत० ॥ २ ॥
लट घट पलटि होत पट पद सी,
जिन की साथ भ्रमर को थाई।
विकसत कमल निरखि दिनकर कौं,
लोह कनक होय पारस छाई ॥ सत० ॥ ३ ॥
बोझ तिरै संजोग नाव कै,
नाग दमनि लखि नाग न खाई।
पावक तेज प्रचंड महाबल,
जल परसा सीतल हो जाई ॥ सत० ॥ ४ ॥

अमृत आया है मुख मीठो
कटकी तै हो है करवाई ।
मलियागर की बास परसि कै,
सब बन के तरु मैं सुगंधाई ॥ सत० ॥ ५ ॥
सूत मिलाय पाय फूलन को
उत्तम नर गल बीचि रहाई ।
मग की सार खाल हू बपरी
नरपति के सिर आय चढाई ॥ सत ॥ ६ ॥
संग प्रताप भुजंगम तैं है,
चंदन सीतल तरल पटाई ।
इत्यादिक ये बात घणेरी
कौंलों ताहि कहो सु बढाई ॥ सत० ॥ ७ ॥
महाधमी अरु महापापी जे
तिनको संगति लागत नाही ।
नवल कहै जे भवि परमामी
तिनकों य उपदेस सुनाई ॥ सत० ॥ ८ ॥
[२२३]

राग-सारग

अरी ये मों नींद न आवे ॥
नेमि पिया बिन चैन न परत
मोहि खान न पान सुहावे ॥ अरी० ॥ १ ॥

सब परियण लोभी स्वारथ को,
अपनी अपनी गावै ॥ अरी० ॥ २ ॥
नवल हितू जग मे वे ही हैं,
प्रभु तें जाइ मिलावै ॥ अरी० ॥ ३ ॥

[२२४]

राग—सारंग

अरे मन सुमरि देव जिनराय ॥
जनम जनम सचित ते पातिक,
ततछिन जाय विलाय ॥ अरे० ॥ १ ॥
त्यागि विषय अरु लग शुभ कारज,
जिन वाणी मन लाय ।
ए ससार खार सागर में,
और न कोई सहाय ॥ अरे० ॥ २ ॥
प्रभु की सेव करत मुनि हैं,
जन खग इन्द्र आदि हरषाय ।
वाहि तैं तिर है भवदधि जल,
नावै नांव बनाय ॥ अरे० ॥ ३ ॥
इस मारिग लागे ते उतरे,
वरनै कौंन चढाय ।
नवल कहै वांछित फल चाहै,
तो चरना चितलाय ॥ अरे० ॥ ४ ॥

[२२५]

राग–ईमन

भखी मैं निसदिन ध्यानांखी ।
यदि तूं साखी रहसौं मन मैं ॥ भखी० ॥
तुमि बिन मनु और न बिसरा
चित रहता बरसन मैं ॥ भखी० ॥ १ ॥
तुम बिन देख्या मेरा सांई
भ्रमत फिरयी मन बन मैं ॥ भखी० ॥ २ ॥
धरे भयो सुख को अब मेरे
प्रभु दीठे नैनन मैं ॥ भखी० ॥ ३ ॥

बुधजन

(संवत् १८३०–१८९५)

कविवर बुधजन का पूरा नाम विरधीचन्द था। ये जयपुर (राजस्थान) के रहने वाले थे। खण्डेलवाल जाति में इनका जन्म हुआ था तथा बज इनका गोत्र था। इनके समय में महापडित टोडरमल की अपूर्व साहित्यिक सेवाओं के कारण जयपुर भारत का प्रसिद्ध साहित्यिक केन्द्र बन चुका था इसलिए बुधजन भी स्वत ही उधर मुड गये। इनका साहित्यिक जीवन सवत् १८५४ से आरम्भ होता है जब कि इन्होंने 'छहढाला' की रचना की थी। यह इनकी बहुत ही सुन्दर कृति है।

अब तक इनकी १७ रचनायें प्राप्त हो चुकी हैं। जिनका रचना-काल सवत् १८५४ से १८९५ तक रहा है। तत्वार्थबोध (सवत् १८७१)

राग—ईमन

भयी मैं निसदिन ध्यानायी ।
धरि हूं सांवरी रहसी मन मैं ॥ भयी० ॥
तुम्हि बिन मनु और न विसता
चित रहता दरसण मैं ॥ भयी० ॥ १ ॥
तुम बिन देख्या मेरा साई
भ्रमत फिरयो मन बन मैं ॥ भयी० ॥ २ ॥
जी भयो तुमे ले अंग मेरे
प्रभु दीठो नैनन मैं ॥ भयी० ॥ ३ ॥
[२२६]

राग-कानडी

उत्तम नरभव पायकै, मति भूलै रे रामा ॥

उत्तम० ॥

कीट पशू का तन जब पाया, तब तू रह्या निकामा ।
अब नरदेही पाय सयाने, क्यौं न भजै प्रभु नामा ॥

उत्तम० ॥१॥

सुरपति याकी चाह करत उर, कब पाऊं नरजामा ।
ऐसा रतन पायकैं भाई, क्यौं खोवत बिन कामा ॥

उत्तम० ॥२॥

धन जोबन तन सुन्दर पाया, मगन भया लखिभामा ।
काल अचानक झटक खायगा, परे रहैंगे ठामा ॥

उत्तम० ॥३॥

अपने स्वामी के पद पकज, करो हिये विसरामा ।
मेटि कपट भ्रम अपना बुधजन, ज्यौं पावौ शिव धामा ॥

उत्तम० ॥४॥

[२२७]

राग-मांढ

अब हम देखा आतम रामा ॥

रूप फरस रस गंध न जामें, ज्ञान दरश रस साना ।
नित्य निरंजन, जाके नाहीं-क्रोध लोभ छल कामा ॥१॥

बुधजनसतसई (संवत् १८८१) संबोध पंचासिका (संवत् १८९१) पञ्चास्तिकाय (संवत १८९१) बुधजन विलास (संवत् १८९१) एवं योगसार भाषा (संवत् १८९५) आदि इनकी प्रमुख रचनायें हैं। बुधजन सतसई इनकी उत्कृष्ट कोटि की रचना है जिसमें आध्यात्मिकता की उड़ान के साथ साथ अन्य विषयों पर भी अच्छी कविता मिलती है। बुधजन विलास में इनकी स्फुट रचनाओं एवं पदों का संग्रह मिलता है। विलास एक सुन्दर संग्रह है जिसे पढ़ कर प्रत्येक पाठक आत्मदर्शन करने का प्रयास करता है।

बुधजन के पदों का अत्यधिक प्रचार रहा है। अब तक इनके २६५ पद प्राप्त हो चुके हैं। पदों के अध्ययन से पता चलता है कि ये ऊंची श्रेणी के कवि थे। आत्मापरमात्मा एवं संसार चिन्तन वर्षों तक करते रहे थे और उसी का वे परिशीलन किया करते थे। बुधजन ने द्यानतराय के समान ही आत्म-दर्शन किये थे।

कवि ने अपनी रचनायें सीधी सादी बोलचाल की भाषा में लिखा है। कहीं कहीं ब्रज भाषा के शब्दों का भी प्रयोग हुआ है। ठौड़ वाके सीख तोहि जाना के जैसे शब्द आये हैं। वर्णन शैली सुन्दर है।

राग-कानडी

उत्तम नरभव पायकै, मति भूलै रे रामा ॥
उत्तम० ॥

कीट पशू का तन जब पाया, तब तू रह्या निकामा ।
अब नरदेही पाय सयाने, क्यौं न भजै प्रभु नामा ॥
उत्तम० ॥१॥

सुरपति याकी चाह करत उर, कब पाऊं नरजामा ।
ऐसा रतन पायकैं भाई, क्यौं खोवत विन कामा ॥
उत्तम० ॥२॥

धन जोबन तन सुन्दर पाया, मगन भया लखिभामा ।
काल अचानक झटक खायगा, परे रहैंगे ठामा ॥
उत्तम० ॥३॥

अपने स्वामी के पद पंकज, करो हिये विसरामा ।
मेटि कपट भ्रम अपना बुधजन, ज्यौं पावौ शिव धामा ॥
उत्तम० ॥४॥

[२२७]

राग-मांढ

अब हम देखा आतम रामा ॥

रूप फरस रस गंध न जामें, ज्ञान दरश रस साना ।
नित्य निरंजन, जाके नाहीं-क्रोध लोभ छल कामा ॥१॥

भूख प्यास सुख दुख नहिं जाके नाहीं वन पुर ग्रामा।
नहिं चाकर नहिं ठाकर भाई नहीं ताव नहिं मामा। २॥

भूल अनादि थकी बहु भटक्यो लै पुद्गल का जामा।
'बुधजन' सतगुरु की संगतिसे मैं पायो सुख ठाना ।।३॥

[२२८]

राग–आसावरी

नर-भव-पाय फेरि दुख भरना ऐसा काज न करना हो।
नाहक ममत ठानि पुद्गलसौं करम जाल क्यौं परना हो।
नर-भव पाय फेरि दुख भरना ऐसा काज न करना हो॥
नर-भव० ॥ १ ॥

यह तो जड़ तू ज्ञान-अरूपी तिल-तुष ज्यौं गुरु वरना हो।
राग-दोष तजि, भज समताकौं कर्म साथ के हरना हो॥
नर-भव० ॥ २ ॥

यौं भव पाय विषय-सुख सेना गज चढ़ि ईंधन ढोना हो॥
'बुधजन' समुझि सेय जिनवर-पद ज्यौं भव-सागर तरना हो।
नर-भव० ॥ ३ ॥

[२२९]

राग–सारंग

धर्म बिन कोई नहीं अपना।
सुख-सम्पत्ति-धन थिर नहि जग मे, जिसा रैन सपना ॥
धर्म बिन० ॥

आगे किया, सो पाया भाई, याही है निरना।
अब जो करैगा, सो पावेगा, तातैं धर्म करना ॥
धर्म बिन० ॥

ऐसैं सब ससार कहत हैं, धर्म कियैं तिरना।
पर-पीड़ा विसनादिक सैवें, नरक विषैं परना ॥
धर्म बिन० ॥

नृप के घर सारी सामग्री, ताकैं ज्वर तपना।
अरु दारिद्री कैं हू ज्वर है, पाप उदय थपना ॥
धर्म बिन० ॥

नाती तो स्वारथ के साथी, तोहि विपति भरना।
वन–गिरि–सरिता अगनि जुद्ध में, धर्म हि का सरना ॥
धर्म बिन० ॥

चित बुधजन' सन्तोष धारना, पर–चिन्ता हरना।
विपति पडै तो समता रखना, परमातम जपना ॥
धर्म बिन० ॥

[२३०]

राग भैरवी

काल अचानक ही ले जायगा गाफिल होकर रहना क्या रे।
छिन हू तोकू नाहिं बचावै तो सुभटन का रखना क्या रे॥
काल० ॥१॥

रंच सुवाद करन के काजैं नरकन में दुख भरना क्या रे।
कुलजन पथिकन के हित काजै जगत जाल में फँसना क्या रे।
काल० ॥२॥

इन्द्रादिक कोउ नाहिं बचैया और लोक का शरणा क्या रे।
निश्चय हुआ जगत में मरना कष्ट पड़े तब डरना क्या रे।
काल० ॥३॥

अपना ध्यान किये थिर आवै तो करमनि का हरना क्यारे।
अब हितकर आरत तज बुधजन जन्म जन्म में जरना क्यारे।
काल० ॥४॥

[२११]

राग-सारग

तन देख्या अथिर घिनावना॥
बाहर चाम चमक दिखलावै माहीं मैल अपावना।
बालक ज्वान बुढ़ापा मरना रोग शोक उपजावना॥१॥
अलख अमूरति नित्य निरंजन एक रूप निज जानना।
बरन फरस रस गंध न जाके, पुण्य पाप बिन मानना॥२॥

कर विवेक उर धार परीक्षा, भेद-विज्ञान विचारना।
'बुधजन' तनतैं समत मेटना, चिदानन्द पद धारना ॥३॥

[२३२]

राग-ख्याल तमाशा

तैं ने क्या किया नादान तैं तो अमृत तज विष पीया।
लख चोरासी यौनि मांहि तैं श्रावक कुल में आया।
अब तज तीन लोक के साहिब नव ग्रह पूजन धाया॥
तैं ने० ॥१॥
वीतराग के दर्शन ही तें उदासीनता आवै।
तूतो जिनके सन्मुख ठाडो सुत को ख्याल खिलावै॥
तैं ने० ॥२॥
स्वर्ग सपदा सहज ही पावै निश्चै मुक्ति मिलावै।
ऐसे जिनवर पूजन सेती जगत कामना चाहै ॥
तैं ने० ॥३॥
'बुधजन मिल के सलाह बतावै तू वाये खिन जावै।
यथायोग्य की अनथा माने जनम जनम दुःख पावे ॥
तैं ने० ॥४॥

[२३३]

राग-रामकली

श्री जिन पूजन कौं हम आये।
पूजत ही दुख द्वंद मिटाये ॥

निष्कंप गया प्रगट भयो धीरज
भवभुव सुख समता घर आये ॥
आधि व्याधि अब दीखत नांही
धम कल्पतरु आंगन थाये ॥ श्री० ॥१॥
इतमें इन्द्र चक्रवर्तिचिनमें
इत में फर्णिंद्र करे सिरनाये ॥
मुनिजन वृंद करे स्तुति हरषित
धनि हम हुं नमें पद सरसाये ॥ श्री० ॥२॥
परमोदारिक में परमातम
ज्ञान मई हमकौं दरसाये ॥
चौसे ही हम में हम आनें
बुधजन गुन मुख जात न गाये ॥ श्री० ॥३॥

[२३४]

राग—जगलो

या काया माया थिर न रहेगी
मूठा मान न कर रे । या० ॥
आई फोट कंगा दरवाजा
तोप सुभट का मर रे ॥
छिन मैं छोसि सुधि लो तब ही
रंक फिरै घर घर रे ॥ या० ॥ १ ॥

तन सुन्दर रूपी जोवन जुत,
लाख सुभट का बल रे ॥
सीत-जुरी जब आन सतावै,
तब कांपै थर थर रे ॥ या० ॥ २ ॥
जैसा उदय तैसा फल पावै,
जाननहार तू नर रे ॥
मन मैं राग दोष मति धारे,
जनम मरन तैं डर रे ॥ या० ॥ ३ ॥
कही बात सरधा कर भाई।
अपने परतख लख रे ॥
शुद्ध स्वभाव आपना बुधजन,
मिथ्या भ्रम परिहर रे ॥ या० ॥ ४ ॥

[२३५]

राग-सोरठ

मेरे मन तिरपत क्यों नहिं होय, मेरे मन ॥
अनादि काल तैं विषयन राच्यो, अपना सरवस खोय ॥ १ ॥
नेक चाख के फिर न बाहुडे, अधिक लपटी होय।
झपा पात लेत पतग जो, जल बल भस्मी होय ॥ २ ॥
ज्यों ज्यों भोग मिले त्यों तृष्णा अधिकी अधिकी होय।
जैसे घृत डारे तैं पावक, अधिक बलत है सोय ॥ ३ ॥

नरकन माहीं बहु सागर लौं, दुख भुगतेगो छेव।
चाह भोग की त्या ो बुधजन' अविचल शिव सुख होय ॥४॥
[२३६]

राग–सारग

निजपुर में आज मची होरी ॥
उमंगि चिदानंदजी इत आये इत आई सुमती गोरी ॥
निज० ॥ १ ॥
लोकलाज कुलकानि गमाई, ज्ञान गुलाल भरी झोरी ॥
निज० ॥ २ ॥
समकित केसर रंग बनायो चारित की पिचकी छोरी ॥
निज० ॥ ३ ॥
गावत अजपा गान मनोहर, अनहद झरसौं बरस्योरी ॥
निज० ॥ ४ ॥
देखन आये बुधजन भीगे निरख्यौ ख्याल अनोखोरी ॥
निज० ॥ ५ ॥
[२३७]

राग–आसावरी

चेतन खेलो सुमति संग होरी ॥ चेतन० ॥
तोरि आन की प्रीति सयाने
भली बनी या जोरी ॥ चेतन० ॥ १ ॥
डगर डगर डोलत है यौंही

आव आपनी पोरी ॥
निज रस फगुवा क्यौं नहि बांटो,
नातरि ख्वारी तोरी ॥ चेतन० ॥ २ ॥
छार कषाय त्याग या गहि लै
समकित केसर घोरी ॥
मिथ्या पाथर डारि धारि लै,
निज गुलाल की झोरी ॥ चेतन० ॥ ३ ॥
खोटे भेष धरैं डोलत है,
दुख पावै बुधि भोरी ॥
बुधजन अपना भेष सुधारो
ज्यौं विलसो शिव गोरी ॥ चेतन० ॥ ४ ॥

[२३८]

राग—भैरू

उठौं रे सुज्ञानी जीव, जिन गुन गावौ रे ॥
उठौ० ॥
निसि तौ नसाय गई, भानुकौं उद्योत भयौ,
ध्यान कौं लगाओ प्यारे, नींद कौं भगावौ रे ॥
उठौ० ॥ १ ॥
भव वन चौरासी बीच, भ्रमतौ फिरत नीच,
मोह जाल फद परयौ, जन्म मृत्यु पावौ रे ॥
उठौ० ॥ २ ॥

आरज पृथ्वी में आय, उत्तम जनम पाय
श्रावक कुल को लहाय मुक्ति क्यों न पावो रे ॥
छांडो० ॥ ३ ॥

विषयनि राचि राचि बहु विधि पाप सांचि
नरकनि जायके अनेक दुख पायो रे ॥
छांडो० ॥४॥

पर को मिलाप त्यागि, आतम के जाप लागि
सु बुधि बतावै गुरु, ज्ञान क्यों न लावो रे ॥
छांडो० ॥ ५ ॥

[२१६]

राग-मांढ

अष्ट करम म्हारो काँई करसीजी मैं म्हारे घर राखूं राम ।
इन्द्री द्वारे चित दौरत है तिन वश है नहीं करस्यूं काम ॥
अष्ट० ॥१॥

इन को जोर इतो ही मुझसे दुख दिखलावैं इन्द्री ग्राम ।
जाको जानूं मैं नहीं मानूं, भेद विज्ञान करूँ विश्राम ॥
अष्ट० ॥२॥

कहूँ राग कहुँ दोष करत थो तब विधि आते मेरे धाम ।
सो विभाव नहीं धारूँ कबहूं शुद्ध स्वभाव रहूं अभिराम ॥
अष्ट० ॥३॥

जिनवर मुनि गुरु की बलि जाऊँ, जिन बतलाया मेरा ठाम।
सुखी रहत हूँ दुख नहिं व्यापत, 'बुधजन' हरषत आठों जाम॥

अष्टक। ।४॥

[२४०]

राग–मांढ

कर्मन् की रेखा न्यारी रे विधिना टारी नांहि टरै।
रावण तीन खण्ड को राजा छिनमें नरक पडै।
छप्पन कोट परिवार कृष्णके वनमें जाय मरे॥१॥
हनुमान की मात अञ्जना वन वन रुदन करै।
भरत बाहुबलि दोऊ भाई कैसा युद्ध करै॥२॥
राम अरु लक्ष्मण दोनों भाई सिय की सग वन मे फिरे।
सीता महा सती पतिव्रता जलती अगनि परे॥३॥
पांडव महाबली से योद्धा तिनकी त्रिया को हरे।
कृष्ण रुक्मणी के सुत प्रद्युम्न जनमत देव हरै॥४।
को लग कथनी कीजे इनकी, लिखता ग्रन्थ भरै।
धर्म सहित ये करम कौनसा 'बुधजन' यों उचरे॥५॥

[२४१]

राग–आसावरी

बाबा, मैं न काहू का, कोई नहीं मेरा रे॥
सुर-नर नारक-तिर्यक गति में, मोकौं करमन घेरा रे॥

बाबा०॥ १॥

माता-पिता सुत-तिय-कुल परिजन मोह-गहल उरझेरा रे।
तन-धन वसन-भवन जड़ न्यारे हूँ चिन्मूरति न्यारा रे॥
बाबा० ॥ २ ॥

मुझ विभाव जड़ कर्म रचत हैं, करमन हमको फेरा रे।
विभाव-चक्र तजि धारि सुभावा आनन्द-घन हेरा रे॥
बाबा० ॥ ३ ॥

खरत खेद नहिं अनुभव करते निरखि चिदानन्द तेरा रे।
जप-तप व्रत श्रुत सार यही है 'बुधजन' कर न अबेरा रे॥
बाबा० ॥ ४ ॥

[२४२]

राग—झंझोटी

कर ले हो जीव सुकृत का सौदा कर ले,
परमारथ कारज कर ले हो॥

उत्तम कुल को पायकैं जिनमत रतन लहाय।
भोग भोगवे कारनैं क्यों शठ देत गमाय॥
सौदा करले० ॥ १ ॥

व्यापारी बन आइयो नर-भव-हाट-मँझार।
फलदायक-व्यापार कर नातर विपति तयार॥
सौदा करलो० ॥ २ ॥

भव अनन्त धरतो फिरयो, चौरासी वन माँहि।
अब नर देही पायकैं अघ खोवै क्यों नाहिं॥
सौदा करले० ॥ ३ ॥

जिनमुनि आगम परखकैं, पूजौ करि सरधान।
कुगुरु कुदेव के मानवैं, फिरयौ चतुर्गति थान॥
सौदा करलै० ॥ ४ ॥
मोह-नींद मां सोवता, डूबौ काल अटूट।
'बुधजन' क्यों लागै नहीं, कर्म करत है लूट॥
सौदा करलै० ॥ ५ ॥

[२४३]

राग-झंझोटी

मानुष भव अब पाया रे, कर कारज तेरा॥
श्रावक के कुल आया रे, पाय देह भलेरा।
चलन सितावी होयगा रे दिन दोय बसेरा रे॥
मानुष० ॥ १ ॥
मेरा मेरा मति कहै रे, कह कौन हैं तेरा।
कष्ट पड़ै जब देह पै, रे कोई आतन नेरा॥
मानुष० ॥ २ ॥
इन्द्री सुख मति राच रे, मिथ्यात अँधेरा।
सात विसन दे त्याग रे, दुख नरक घनेरा॥
मानुष० ॥ ३ ॥
उर मैं समता धार रे, नहि साहब चेरा।
आपा आप विचार रे, मिटिज्या गति फेरा॥
मानुष ॥ ४ ॥

ये सुध आपन आवैं रे, बुधजन तिन केरा।
निस दिन पद वंदन करैं रे वे साहिब मेरा॥
मानुष० ॥ ५ ॥

[२४४]

राग—विहाग

मनुवा बावला हो गया॥ मनुवा०॥
परवश वसतु जगत की सारी
निज वश चाहै लया॥ मनुवा० ॥१॥
वीरस चीर मित्या है उदय वश
यो मांगत क्यों भया॥ मनुवा० ॥२॥
जो कछु बोया प्रथम भूमि मैं
सो कब औरै भया॥ मनुवा० ॥३॥
करत अकाज ज्ञान की निज गिन
सुध पद त्याग दया॥ मनुवा० ॥४॥
आप आप बोरत विषयी है
बुधजन ढीठ भया॥ मनुवा० ॥५॥

[२४५]

राग—सोरठ

अरे जिया तै निज कारिज क्यों न कीयौ॥
या भव कौ सुरपति अति तरसै
सो तो सहज पाय लीयौ॥ अरे० ॥१॥

मिथ्या जहर कह्यौ, गुन तजियो,
तैं अपनाय पीयो
दया दान पूजन संजम मैं,
कबहुँ चित ना दीयो ॥ अरे० ॥२॥
बुधजन औसर कठिन मिल्या है,
निश्चै धारि हियो ॥
अब जिनमत सरधा दिढ पकरो,
तब तेरो सफल जीयो ॥ अरे० ॥३॥

[२४६]

राग-बिलावल

गुरु दयाल तेरा दुख लखि कै,
सुनि लै जो फ़रमावै है ॥
तो मैं तेरा जतन बतावै,
लोभ कछू नहि चावै हैं ॥ गुरु० ॥१॥
पर सुभाव कूं मोरया चाहै,
अपना उसा बतावे है ॥
सो तो कबहूँ हुवा न होसी,
नाहक रोग लगावै है ॥ गुरु० ॥२॥
खोटी खरी करी कुमाई,
तैसी तेरे आवै है ॥
चिन्ता आगि उठाय हिया में,

नाइक ज्ञान जनावे है ॥ गुरु० ॥३॥
पर अपनावे सो दुख पावे
बुधजन ऐसे गावे है ॥
पर कों त्याग आप थिर तिष्टै,
सो अविचल सुख पावे है ॥ गुरु० ॥४॥
[२४७]

राग—आसावरी

प्रभु तेरी महिमा बरणी न जाई ॥
इन्द्रादिक सब तुम गुण गावत मैं कछु पार न पाई ॥ १ ॥
षट द्रव्य में गुण व्यापत जेते एक समय में झलाई।
तामें अपनी विधि निषेधकर प्रगट भाग सवाई ॥ २ ॥
क्षायिक समकित तुम ढिग पावत और ठौर नहीं पाई।
जिन पाई तिन सब विधि गाही ज्ञान की रीति बताई ॥ ३ ॥
मो से अल्प बुधि तुम ध्यावत श्रावक पदवी पाई।
तुमही तैं अभिराम वस्तु निज राग दोष बिसराई ॥ ४ ॥
[२४८]

दौलतराम

(संवत् १८५५–१९२३)

दौलतराम नाम के दो विद्वान् हो गये हैं इनमें प्रथम बसवा निवासी थे। ये महाराजा जयपुर की सेवा में उदयपुर रहते थे। वहीं रहते हुये इन्होंने कितने ही ग्रंथों की रचना की थी इनमें पद्मपुराण भाषा, आदिपुराण भाषा, पुण्यास्रवकथाकोश, अध्यात्मबारहखडी, जीवधार चरित भाषा आदि हिन्दी की अच्छी रचनायें मानी जाती है ये १८ वीं शताब्दी के विद्वान् थे। दूसरे दौलतराम हाथरस निवासी थे। इनका जन्म संवत् १८५५ या १८५६ में हुआ था। इनके पिता का नाम टोडरमल एवं जाति पल्लीवाल थी। ये कपडे के व्यापारी थे। प्रारम्भ से ही इनका ध्यान विद्याध्ययन की ओर था। इनकी स्मरण

शक्ति अद्भुत थी और वे प्रतिदिन १ लक्ष श्लोक एवं गाथायें कंठस्थ कर लिया करते थे। इनके दो पुत्र थे। कवि का स्वर्गवास संवत् १९२१ में हुआ था।

दौलतराम का हिन्दी भाषा पर पूर्ण अधिकार था इन्होंने ५५ से भी अधिक पद लिखे हैं जो सभी उच्चस्तर के हैं। आध्यात्मिक भावनाओं से ओत-प्रोत ये पद पाठकों का मन स्वतः ही अपनी ओर आकृष्ट कर लेते हैं। पदों में इन्होंने अपनी मनोभावनाओं का अच्छी तरह चित्रण किया है। 'मुनि ठगनी माया तैं सब जग ठग लाया' यह उनकी आत्मा की आवाज है संसार को धोखे का घर समझ कर वे वीतराग प्रभु की शरण चले गये और तब उन्होंने आज मैं परम पदारथ पायो प्रभु चरनन चित लायो" पद की रचना की।

पदों की भाषा खड़ी हिन्दी है लेकिन उस पर कहीं कहीं ब्रज भाषा का प्रभाव है।

राग-बरवा

देखो जी आदीश्वर स्वामी, कैसा ध्यान लगाया है।
कर ऊपर कर सुभग विराजे, आसन थिर ठहराया है॥
देखो० ॥१॥

जगत विभूति भूति सम तजिकर, निजानन्द पद ध्याया है।
सुरभित श्वासा, आशावासा नासा दृष्टि सुहाया है॥
देखो० ॥२॥

कंचन वरन चलै मन रच न, सुरगिर ज्यौं थिर थाया है।
जास पास अहि मोर मृगी हरि, जाति विरोध नसाया है।
देखो० ॥३॥

शुभ उपयोग हुताशन मे जिन, वसु विधि समिध जलाया है।
स्यामलि अलिकावलि शिर सोहे, मानों धूआ उडाया है।
देखो० ॥४॥

जीवन मरन अलाभ लाभ जिन, तृनमनि को सम भाया है।
सुर नर नाग नमहि पद जाकै, दौल तास जस गाया है॥
देखो० ॥५॥

[२४६]

राग-सारंग

हमारी वीर हरो भव पीर॥ हमारी०॥
मैं दुख तपित दयामृत सागर,
लखि आयो तुम तीर॥

तुम परमेश मोखमग दशक,
मोह दवानल नीर ॥ हमारी० ॥१॥
तुम बिन हेत जगत उपगारी
शुद्ध चिदानन्द धीर ॥
गनपति ज्ञान समुद्र न लंघे
तुम गुन सिंधु गहीर ॥ हमारी० ॥२॥
याद नहीं मैं बिपति सही जो
धर धर अमित शरीर ॥
तुम गुन चितत नशत तथा भय
ज्यों घन चलत समीर ॥ हमारी० ॥३॥
कोटि बार की अरज यही है,
मैं दुख सहूं अधीर ॥
हरहु वेदना फन्द 'दौल' की
कतर कर्म जंजीर ॥ हमारी ॥४॥
[२५०]

राग–गौरी

हे जिन मेरी ऐसी बुधि कीजै ।
राग द्वेष दावानल तें बचि समता रस में भीजै ।
हे जिन० ॥१॥
परकों त्याग अपनपो निज में लाग न कबहूं छीजे ।
हे जिन० ॥२॥

कर्म कर्मफल माहि न राचै, ज्ञान सुधारस पीजे।
हे जिन० ॥३॥
मुझ कारज के तुम कारन वर अरज दौल की लीजे।
हे जिन० ॥४॥

[२५१]

राग-मालकोष

जिया जग धोके की टाटी ॥
झूठा उद्यम लोक करत है, जिसमें निश दिन घाटी ॥१॥
जान बूझ कर अंध बने हो, आंखिन बांधी पाटी ॥२॥
निकल जायेंगे प्राण छिनक में, पडी रहेगी माटी ॥३॥
'दौलतराम' समझ मन अपने, दिलकी खोल कपाटी ॥४॥

[२५२]

राग-भैरवी

जिया तोहे समझायो सौ सौ बार ॥
देख सुगरु की परहित में रति हित उपदेश सुनायो ॥१॥
विषय भुजंग सेय सुख पायो पुनि तिनसु लिपटायो।
स्वपद बिसार रच्यो परपद में, मदरत ज्यों बोरायो ॥२॥
तन धन स्वजन नहीं हैं तेरे, नाहक नेह लगायो।
क्यों न तजे भ्रम चाख समामृत, जो नित सन्त सुहायो ॥३॥

तुम परमरा मोक्षमग दराक,
मोह दवानल नीर ॥ हमारी० ॥१॥
तुम बिन हेत जगत उपगारी
शुद्ध चिदानन्द धीर ॥
गनपति ज्ञान समुद्र न लंघे,
तुम गुन सिंधु गहीर ॥ हमारी० ॥२॥
याद नहीं मैं बिपति सही जो
धर धर अमित शरीर ॥
तुम गुन चितत नशत तथा भय
ज्यों घन चलत समीर ॥ हमारी० ॥३॥
कोटि बार की अरज यही है,
मैं दुख सहूँ अधीर ॥
हरहु वेदना फन्द 'दौल' की
कतर कर्म जंजीर ॥ हमारी ॥४॥
[२५०]

राग-गौरी

हे जिन मेरी ऐसी बुधि कीजे ।
राग द्वेष दवानल तें बचि समता रस में भीजे ।
हे जिन० ॥१॥
परको त्याग अपनपो निज में लाग न कबहूँ छीजे ।
हे जिन० ॥२॥

कर्म कर्मफल माहि न राचै, ज्ञान सुधारस पीजे।
हे जिन० ॥३॥

मुझ कारज के तुम कारन वर अरज दौल की लीजे।
हे जिन० ॥४॥

[२५१]

राग–मालकोष

जिया जग धोके की टाटी ॥

झूठा उद्यम लोक करत है, जिसमें निश दिन घाटी ॥१॥

जान बूझ कर अंध बने हो, आंखिन बांधी पाटी ॥२॥

निकल जायेंगे प्राण छिनक मे, पडी रहेगी माटी ॥३॥

'दौलतराम' समझ मन अपने, दिलकी खोल कपाटी ॥४॥

[२५२]

राग–भैरवी

जिया तोहे समझायो सौ सौ बार ॥

देख सुगरु की परहित में रति हित उपदेश सुनायो ॥१॥

विषय भुजंग सेय सुख पायो पुनि तिनसु लिपटायो।
स्वपद विसार रच्यो परपद में, मदरत ज्यों बोरायो ॥२॥

तन धन स्वजन नहीं हैं तेरे, नाहक नेह लगायो।
क्यों न तजे भ्रम चाख समामृत जो नित सन्त सुहायो ॥३॥

अबहु समझ कठिन यह नरभव जिनवृष बिना गमायो।
ते बिलखें मणि डार उदधि में 'दौलत' को पछतायो ॥४॥

२५३]

राग–माढ

हमतो कबहु न निजघर आये,
पर घर फिरत बहुत दिन बीते नाम अनेक धराये।
परपद निजपद मान मगन ह्वै पर परणति लिपटाये।
शुद्ध बुद्ध सुख कंद मनोहर चेतन भाव न भाये ॥१॥
नर पशु देव नरक निज जान्यो, परजय बुद्धि लहाये।
अमल अखंड अतुल अविनाशी आतम गुण नहिं गाये ॥२॥
यह बहु भूल भई हमरी फिर कहा काज पछताये।
'दौल' तजो अजहू विषयन को सतगुरु वचन सुनाये ॥३॥

[२५४]

राग–मांढ

आज मैं परम पदारथ पायौ,
प्रभु चरनन चित लायौ ॥ आज० ॥
अशुभ गये शुभ प्रगट भये हैं,
सहज कल्पतरु छायौ ॥ आज० ॥ १ ॥

ज्ञान शक्ति तप ऐसी जाकी,
चेतन पद दरसायो ॥ आज० ॥ २ ॥
अष्ट कर्म रिपु जोधा जीते,
शिव अंकूर जमायो ॥ आज० ॥ ३ ॥

[२५५]

राग—मांढ

निपट अयाना, तैं आपा नहिं जाना,
नाहक भरम भुलाना वे ॥ निपट० ॥
पीय अनादि मोहमद मोह्यो,
पर पद मे निज माना वे ॥ निपट० ॥१॥
चेतन चिन्ह भिन्न जडता सो,
ज्ञान दरश रस साना वे ॥
तनमें छिप्यो लिप्यो न तदपि ज्यों,
जल मे कजदल माना वे ॥ निपट० ॥२॥
सकल भाव निज निज परनति मय,
कोई न होय विराना वे ॥
तू दुखिया पर कृत्य मानि ज्यौं,
नभ ताडन श्रम ठाना वे ॥ निपट० ॥३॥
अजगन में हरि भूल अपनपो,
भयो दीन हैराना वे ॥

दौल सुगुरु धुनि सुनि निज में निज
पाय लह्यो सुख थाना वे ॥ निपट० ॥४॥

[२५६]

राग–जगलो

अपनी सुधि भूलि आप आप दुख उपायो।
ज्यों शुक नभ चाल विसरि नलिनी लटकायो ॥
अपनी० ॥

चेतन अविरुद्ध शुद्ध दरश बोधमय विशुद्ध।
तजि जड़ रस फरस रूप पुद्गल अपनायो ॥
अपनी० ॥१॥

इन्द्रिय सुख दुख में नित्त पाग राग रुख में चित्त।
दायक भव विपति वृन्द बन्ध को बढ़ायो ॥
अपनी० ॥२॥

चाह दाह दाहै, त्यागो न ताह चाह।
समता सुधा न गाह जिन निकट जो बतायो ॥
अपनी० ॥३॥

मानुष भव सुकुल पाय जिनवर शासन लहाय।
दौल निज स्वभाव भज अनादि जो न ध्यायो ॥
अपनी० ॥४॥

[२५७]

राग–टोडी

ऐसा योगी क्यों न अभय पद पावै ।
सो फेर न भव में आवै ॥ ऐसा० ॥

ससय विभ्रम मोह विवर्जित, स्वपर स्वरुप लखावै ।
लख परमातम चेतन को पुनि, कर्म कलंक मिटावै ॥
ऐसा० ॥ १ ॥

भव तन भोग विरक्त होय तन, नग्न सुभेष बनावै ।
मोह विकार निवार निजातम अनुभव मे चित लावै ॥
ऐसा० ॥ २ ॥

त्रस थावर वध त्याग सदा परमाद दशा छिटकावै ।
रागादिक वश झूठ न भाखै, तृणहु न अदत गहावै ॥
ऐसा० ॥ ३ ॥

बाहिर नारि त्यागि, अन्तर चिद् ब्रह्म सुलीन रहावै ॥
परम अकिंचन धर्मसार सों, द्विविधि प्रसंग बहावै ।
ऐसा० ॥ ४ ॥

पच समिति त्रयगुप्ति पाल व्यवहार चरन मग धावै ।
निश्चय सकल कषाय रहित है शुद्धातम थिर थावै ॥
ऐसा० ॥ ५ ॥

कु कुम पक दास रिपु तृणमणि व्याल माल समभावै ।
आरत रौद्र कुध्यान विडारे, धर्म शुकल को ध्यावे ॥
ऐसा० ॥ ६ ॥

वाके सुख समाज की महिमा कहत इन्द्र अकुलावै ॥
'चौसव' दास पद होय दास सो अविचल ऋद्धि लहावै।
ऐसा० ॥ ७ ॥
[२५८]

राग–सारग

आऊ कहाँ तज शरन तिहारे ॥
चूक अनादि तनी या हमारी
माफ करौं करुणा गुन धारे ॥ आऊ० ॥ १ ॥
डूबत हौं भव सागर में अब
तुम बिन को मोहि पार निकारे ॥ आऊ ॥ २ ॥
तुम सम देव अवर नहि कोई
तातैं हम पद हाथ पसारे ॥ आऊ ॥ ३ ॥
मोसम अधम अनेक उधारे
वरनत हैं गुरु शास्त्र अपारे ॥ आऊ ॥ ४ ॥
'दौलत' को भवपार करौ अब
आयो है शरनागत थारे ॥ आऊ ॥ ५ ॥
[२५९]

राग–सारग

नाथ मोहि तारत क्यौं ना क्या तकसीर हमारी ॥
अञ्जन चोर महा अघ करता सप्त विसन का धारी।
वो ही मर सुरलोक गयो है बाकी कछु न विचारी ॥
नाथ० ॥ १ ॥

शूकर सिंह नकुल बानर से, कौन कौन व्रतधारी ।
तिनकी करनी कछु न विचारी, वे भी भये सुर भारी ॥
नाथ० ॥ २ ॥

अष्ट कर्म वैरी पूरब के इन मो करी खुवारी ।
दर्शन ज्ञान रतन हर लीने, दीने महादुख भारी ॥
नाथ० ॥ ३ ॥

अवगुण माफ करे प्रभु सबके, सबकी सुधि न बिसारी ।
दौलतदास खड़ा कर जोरे, तुम दाता मैं भिखारी ॥
नाथ० ॥ ४ ॥

[२६०]

राग-सारंग

नेमि प्रभू की श्याम बरन छवि, नैनन छाय रही ॥
मणिमय तीन पीठ पर अंबुज, तापर अधर ठही ॥
नेमि० ॥ १ ॥

मार मार तप धार जार विधि, केवल ऋद्धि लही ।
चारतीस अतिशय दुतिमंडित नवदुग दोष नहीं ॥
नेमि० ॥ २ ॥

जाहि सुरासर नमत सतत, मस्तक तैं परस मही ।
सुरगुरु वर अम्बुज प्रफुलावन, अद्भुत भान सही ॥
नेमि० ॥ ३ ॥

पर अनुराग किशोर जाको दुरित नसै सब ही।
'दौलत' महिमा अतुल जासकी कापै जात कही॥
नेमि ॥४॥
[२६१]

राग—मांढ

हम तो कबहू न निज गुन भाये॥
तन निज मान जान तन दुख सुख में बिलखे हरषाये।
हम तो० ॥१॥

तन को गलन मरन लखि तनको धरन मान हम जाये।
या भ्रम भौंर परे भव जल चिर चहुँ गति विपति लहाये॥
हम तो० ॥२॥

दरश बोधव्रत सुधा न चाख्यौ विविध विषय विष खाये।
सुगुरु दयाल सीख दई पुनि पुनि सुनि सुनि उर नहि आये॥
हम तो० ॥३॥

बहिरातमता तजी न अन्तर दृष्टि न ह्वै निज ध्याये।
धाम काम धन रामा की नित आश हुताश जलाये॥
हम तो ॥४॥

अचल अनूप शुद्ध चिद्रूपी सब सुख मय मुनिगाये।
'दौल' चिदानन्द स्वगुन मगन जे ते जियसुखिया थाये॥
हम तो० ॥५॥
[२६२]

राग–मांढ

हे नर, भ्रमनींद क्यों न छांडत दुखदाई ॥
सेवत चिरकाल सोज, आपनी ठगाई ॥

हे नर० ॥

मूरख अघ कर्म कहा, भेदै नहि मर्म लहा ।
लागै दुख ज्वाल की न, देह कै तताई ॥

हे नर० ॥१॥

जम के रव बाजते, सुभैरव अति गाजते ।
अनेक प्रान, त्याग ते, सुनै कहा न भाई ॥

हे नर० ॥२॥

पर को अपनाय आप रूप को भुलाय (हाय) ।
करन विषय दारु जार, चाह दौ बढाई ॥

हे नर० ॥३॥

अब सुन जिनबानि रागद्वेष को जघान ।
मोक्ष रुप निज पिछान 'दौल' भज विरागताई ॥

हे नर० ॥४॥

[२६३]

राग–सारंग

चेतन यह बुधि कौन सयानी ।
कही सुगुरु हित सीख न मानी ॥

कठिन अकन्याजी ज्यौं पायो ।
नरभव सुकुल श्रवन जिनवानी ॥
चेतन० ॥ १ ॥

भूमि न होत चांदनी की ज्यौं ।
त्यौं नहिं धनी ज्ञेय को ज्ञानी ॥
वस्तु रूप यों तू यों ही शठ ।
हटकर पकरत सोंज बिरानी ॥
चेतन० ॥ २ ॥

ज्ञानी होय अज्ञान राग रूप कर ।
निज सहज स्वच्छता हानी ॥
इन्द्रिय जड़ तिन विषय अचेतन ।
तहां अनिष्ट इष्टता ठानी ॥
चेतन० ॥ ३ ॥

चाहै सुख दुख ही अवगाहै ।
अब सुनि विधि जो है सुखदानी ॥
दौल आप करि आप-आप में ।
ध्याय लाय लय समरस सानी ॥
चेतन० ॥ ४ ॥

[२६४]

राग–उभाज जोगी रासा

मत कीज्यो जी यारी घिनगह देह जड़ जान के ।

मात तात रज वीरजसों यह, उपजी मल फुलवारी।
अस्थिमाल पल नसा जालकी, लाल लाल जलक्यारी ॥१॥
करमकुरग थली पुतली यह, मूत्रपुरीष भडारी ।
चर्ममडी रिपुकर्म घडी धन, धर्म चुरावनहारी ॥२॥
जे जे पावन वस्तु जगत में, ते इन सर्व बिगारी।
स्वेद मेद कफ क्लेदमयी बहु, मदगदव्याल पिटारी ॥३॥
जा सयोग रोगभव तौलौं, जा वियोग शिवकारी ।
बुध तासौं न ममत्व करैं यह, मूढमतिनको प्यारी ॥४॥
जिन पोषी ते भये सदोषी, तिन पाये दुख भारी।
जिन तप ठान ध्यानकर शोषी, तिन परनी शिवनारी ॥५॥
सुरधनु शरदजलद जलबुदबुद, त्यौं झट विनशनहारी।
यातैं भिन्न जान निज चेतन, 'दौल' होहु शमधारी ॥६॥

[२६५]

राग-मांढ

जीव तू अनादि ही तैं भूल्यौ शिव गैलवा ॥ जीव० ॥
मोहमद वार पियौ, स्वपद विसार दियौ,
पर अपनाय लियौ, इन्द्रिय सुख में रचियौ,
भव तैं न भियौ न तजियौ मन मैलवा ॥ जीव० ॥१॥
मिथ्या ज्ञान आचरन, धरिकर कुमरन,
तीन लोक की धरन, तामें कियो है फिरन,
पायो न शरन, न लहायौ सुख शैलवा ॥ जीव० ॥२॥
अब नर भव पायो, सुथल सुकुल आयौ

जिन उपदेश मायौ दौल मन्न किटकायौ
पर-परनति दुखदायिनी चुरैलवा ॥ जीव० ॥३॥

[२६६]

राग–माढ

कुमति कुनारि नहीं है भली रे
सुमति नारि सुन्दर गुनवाली ॥
कुमति ॥

वासौं विरचि रचौ नित यासौं
जो पायो शिवधाम गली रे ॥
वह कुबजा दुखदा, यह राधा
बाधा टारन करन रली रे ॥
कुमति० ॥१॥

वह कारी परसौं रति ठानत
मानत नाहिं न सीख भली रे ॥
यह गोरी चिद्गुण सहचारिन
रमत सदा स्वसमाधि थली रे ॥
कुमति० ॥२॥

वा संग कुथल कुयोनि वस्यौ नित
तहाँ महादुख बेल फली रे ॥
या संग रसिक भविन की निज में

परनति दौल भई न चली रे ॥
कुमति० ॥३॥

[२६७]

राग–मांढ

जिया तुम चाजो अपने देश, शिवपुर थारो शुभ थान ।
लख चौरासी में बहु भटके, लख्यो न सुखरो लेश ॥१॥
मिथ्या रूप धरे बहुतेरे भटके बहुत विदेश ॥२॥
विषयादिक से बहु दुख पाये, भुगते बहुत कलेश ॥३॥
भयो तिर्यंच नारकी नर सुर, करि करि नाना भेष ॥४॥
'दौलत राम' तोड जग नाता, सुनो सुगुरु उपदेश ॥५॥

[२६८]

राग-सारंग

चेतन तैं यों ही भ्रम ठान्यो,
ज्यों मृग मृग-तृष्णा जल जान्यो ॥
ज्यौं निशि तम मैं निरख जेवरी,
भु जग मान नर भय उर मान्यो ॥ चेतन० ॥१॥
ज्यों कुध्यान वश महिप मान निज,
फसि नर उरमांही अकुलान्यो ।
त्यौं चिर मोह अविद्या पेरयो,
तेरों तैं ही रूप भुलान्यो ॥ चेतन० ॥ २ ॥

तोष तेल क्यों मेघ न वन को
उपज अपज में सुख दुख मान्यो।
पुनि परभावन को करता है
तैं तिनको निज कर्म पिछान्यो ॥ चेतन० ॥ ३ ॥
नरभव सुथल सुकुल जिनवाणी
काल लब्धि बल योग मिलान्यो।
'दौल' सहज भज उदासीनता
तोष-रोष दुखकोष सु मान्यो ॥ चेतन० ॥ ४ ॥

[२६६]

राग–जोगी रासा

चिद्राय गुन सुनो मुनो प्रशस्त गुरु गिरा।
समस्त तज विभाव हो स्वकीय में थिरा ॥
निज भाव के लखाव बिन भवाब्धि में परा।
जामन मरन जरा त्रिदोष अग्नि में जरा ॥
चिद्० ॥ १ ॥
फिर सादि और अनादि दो निगोद में परा।
जहँ अङ्क के असंख्य भाग ज्ञान ऊबरा ॥
चिद्० ॥ २ ॥
तहाँ भव अन्तर मुहूर्त के कहे गनेश्वरा।
छयासठ सहस त्रिशत छतीस जन्म धर मरा ॥
चिद्० ॥ ३ ॥

यौं वशि अनन्त काल फिर तहां तैं नीसरा ।
भूजल अनिल अनल प्रतेक तरु में तन धरा ॥
चिद० ॥ ४ ॥

अनु धरीसु कुंथु कानमच्छ अवतरा ।
जल थल खचर कुनर नरक असुर उपजमरा ॥
चिद० ॥ ५ ॥

अबके सुथल सुकुल सुसंग बोध लहि खरा ।
दौलत त्रिरत्न साध लाध पद अनुत्तरा ॥
चिद० ॥ ६ ॥

[२७०]

राग-सारंग

आतम रूप अनुपम अद्भुत,
याहि लखैं भव सिंधु तरो ॥ आत ० ॥
अल्प काल में भरत चक्रधर,
निज आतम को ध्याय खरो ।
केवलज्ञान पाय भवि बोधे,
तत छिन पायौ लोक सिरो ॥ आतम० ॥१॥
या विन समुझे द्रव्य लिंग मुनि,
उग्र तपन कर भार भरो ।
नव ग्रीवक पर्यन्त जाय चिर,
फेर भवार्णव माहि परो ॥ आतम० ॥ २ ॥

सम्यग्दर्शन ज्ञान चरन तप
येहि जगत में सार नरो।
पूरब शिव को गये जांहि अब
फिर जै हैं यह नियत करो ॥ आतम० ॥३॥

कोटि ग्रन्थ को सार यही है
ये ही जिनवानी उचरो।
'दौल' ध्याय अपने आतम को
मुक्ति-रमा तब वेग वरो ॥ आतम० ॥ ४ ॥

[२७१]

राग-सोरठ

आपा नहीं जाना तूने कैसा ज्ञान धारी रे ॥
देहाश्रित कर क्रिया आपको मानत शिव-मगचारी रे ॥
आपा ॥ १ ॥
निजनिवेद बिन घोर परीषह, विफल कही जिन सारी रे ॥
आपा० ॥ २ ॥
शिव चाहै तो द्विविध धर्म तैं कर निज परणति न्यारी रे ॥
आपा ॥ ३ ॥
'दौलत' जिन जिन भाव पिछान्यो तिन भव विपति विदारी रे ॥
आपा० ॥ ४ ॥

[२७२]

राग-सारंग

निज हित कारज करना रे भाई,
　　　　निज हित कारज करना ॥
जनम मरन दुख पावत जातैं,
　　　　सो विधि वध कतरना ॥ निज० ॥ १ ॥
ज्ञान दरस अरु राग फरस रस,
　　　　निज पर चिह्न समरना ।
सधि भेद बुधि-छैनी तैं कर,
　　　　निज गहि पर परिहरना ॥ निज० ॥ २ ॥
परिग्रही अपराधी शंकै,
　　　　त्यागी अभय विचरना ।
त्यौं परचाह वध दुखदायक,
　　　　त्यागत सब सुख भरना ॥ निज० ॥ ३ ॥
जो भव भ्रमन न चाहै तो अब,
　　　　सुगुरु सीख उर धरना ।
दौलत स्वरस सुधारस चाख्यो,
　　　　ज्यों विनसैं भवमरना ॥ निज० ॥ ४ ॥

[२७३]

राग-आसावरी

चेतन कौन अनीति गही रे,
　　　　न मानैं सुगुरु कही रे ॥ चेतन० ॥

जिन विषयन वश बहु दुख पायो
विन सौं प्रीति ठगी रे ॥ चेतन० ॥ १ ॥
चिन्मय है देहादि जड़नि सौं
तो मति पाग रही रे।
सम्यग्दर्शन ज्ञान भाव निज
तिनकों गहत नही रे ॥ चेतन० ॥ २ ॥
जिन वृष पाय विहाय राग रुष,
निज हित हेत यही रे।
दौलत जिन यह सीख धरी उर
तिन शिव सहज लही रे ॥ चेतन ॥ ३ ॥

[२७४]

राग—जोगी रासा

छांडत क्यों नहिं रे, हे नर [1] रीत अयानी।
बार बार सिख देत सुगुरु यह तू दे आना कानी ॥ छांडत० ॥
विषय न तजत न भजत बोध व्रत
दुख सुख जाति न जानी।
शर्म चहै न लहै शठ ज्यौं घृत
हेत [1] विलोवत पानी ॥ छांडत ॥ १ ॥
तन धन सदन स्वजन जन तुमसौं
ये परजाय बिरानी।

इन परिनमन विनस उपजन सौं,
तैं दुख सुख कर मानी ॥ छांडत ॥ २ ॥
इस अज्ञान तैं चिर दुख पाये,
तिनकी अकथ कहानी ।
ताको तज दृग-ज्ञान चरन भज,
निज परणति शिवदानी ॥ छांडत० ॥ ३ ॥
यह दुर्लभ नरभव-सुसग लहि,
तत्व लखावन बानी ।
दौल न कर अब परमें ममता,
धर समता सुखदानी ॥ छांडत० ॥ ४ ॥

[२७५]

राग—जोगी रासा

जानत क्यों नहि रे, हे नर आतम ज्ञानी ॥ जानत० ॥
राग-दोप पुदगल की सपति,
निश्चै शुद्ध निशानी ॥ जानत० ॥ १ ॥
जाय नरक पशु नर सुर गति में,
यह पर जाय बिरानी ।
सिद्ध सरुप सदा अविनाशी,
मानत बिरले प्रानी ॥ जानत० ॥ २ ॥
कियो न काहू हरै न कोई,
गुरु-शिप कौन कहानी ।

जिन विषयन वश बहु दुख पायो
तिन सौं प्रीति ठही रे ॥ चेतन० ॥ १ ॥
चिन्मय है देहादि जड़नि सौं,
तो मति पाग रही रे।
सम्यग्दर्शन ज्ञान भाव निज
तिनकौं गहत नही रे ॥ चेतन० ॥ २ ॥
जिन वृष पाय विहाय राग रुष,
निज हित हेत यही रे।
दौलत जिन यह सीख धरी उर,
तिन शिव सहज लही रे ॥ चेतन ॥ ३ ॥

[२७४]

राग—जोगी रासा

छांडत क्यों नहिं रे हे नर ! रीति अयानी।
बार बार सिख देत सुगुरु यह तू दे आना कानी ॥ छांडत० ॥
विषय न तजत न भजत बोध व्रत
दुख सुख जाति न जानी।
शर्म चहै न लहै शठ ज्यौं घृत
हेत विलोवत पानी ॥ छांडत ॥ १ ॥
तन धन सदन स्वजन जन तुमसौं
ये परजाय विरानी।

चाह ज्वलन ईंधन विधि वनघन, आकुलता कुलखानी।
ज्ञान सुधा सर शोषन रवि ये, विषय अमित मृतु दानी॥
मानत०॥ ५॥

यौं लखि भवतन भोग विरचि करि निज हित सुन जिनवानी।
तज रुष-राग 'दौल' अब अवसर यह जिन चन्द्र बखानी॥
मानत०॥ ६॥

[२७७]

राग—मालकोष

अरे जिया जग धोखे की टाटी॥ अरे०॥
झूठा उद्यम लोक करत है,
जिसमें निशदिन घाटी॥ अरे०॥ १॥
जान बूझ के अन्ध बने हैं,
आखन बांधी पाटी॥ अरे०॥ २॥
निकल जायँगे प्राण छिनक में,
पड़ी रहेगी माटी॥ अरे०॥ ३॥
दौलतराम समझ मन अपने,
दिल की खोल कपाटी॥ अरे०॥ ४॥

[२७८]

राग—उभाज जोगी रासा

मत कीज्यौ जी यारी ये भोग भुजग सम जान के॥
मत कीज्यौ जी०॥

जनम मरन मल रहित विमल है
कीच बिना जिम पानी ॥ जानत० ॥ ३ ॥

सार पदारथ है तिहुँ जगमें
नहि क्रोधी नहि मानी ।
दौलत सो घट मांहि विराजे,
लखि हूजे शिवथानी ॥ जानत ॥ ४ ॥

[२७६]

राग–जोगी रासा

मानत क्यों नहि रे, हे नर सीख सयानी ॥
भयो अचेत मोह मद पीके अपनी सुध बिसरानी ॥
मानत० ॥ १ ॥

दुखी अनादि कुबोध अव्रत तैं फिर तिनसौं रति ठानी ।
ज्ञान सुधा निज भाव न चाख्यो पर परनति मति सानी ॥
मानत० ॥ २ ॥

भव असारता लखै न क्यों यह, नृप ह्वै कृमि विट थानी ।
सधन निधन नृप दास स्वजन रिपु दुखिया हरि से प्रानी ॥
मानत ॥ ३ ॥

देह गेह गदगेह नेह इस है, बहु विपति निशानी ।
जड़ मलीन छिन छीन करम कृत बन्धन शिव सुखदानी ॥
मानत० ॥ ४ ॥

चाह ज्वलन ईंधन विधि वनघन, आकुलता कुलखानी।
ज्ञान सुधा सर शोपन रवि ये, विषय अमित मृतु दानी ॥
मानत० ॥ ५ ॥

यौं लखि भवतन भोग विरचि करि निज हित सुन जिनवानी।
तज रुप-राग 'दौल' अब अवसर यह जिन चन्द्र बखानी ॥
मानत० ॥ ६ ॥

[२७७]

राग–मालकोष

अरे जिया जग धोखे की टाटी ॥ अरे० ॥
झूठा उद्यम लोक करत है,
जिसमें निशदिन घाटी ॥ अरे० ॥ १ ॥
जान बूझ के अन्ध बने हैं,
आखन बाधी पाटी ॥ अरे० ॥ २ ॥
निकल जायेंगे प्राण छिनक में,
पड़ी रहेगी माटी ॥ अरे० ॥ ३ ॥
दौलतराम समझ मन अपने,
दिल की खोल कपाटी ॥ अरे० ॥ ४ ॥

[२७८]

राग–उभाज जोगी रासा

मत कीज्यौ जी यारी ये भोग भुजग सम जान के ॥
मत कीज्यौ जी० ॥

भुजंग डसत इकबार नसत है ये अनन्ती मृत्युकारी।
तिसना-तृषा बढ़ै इन सेये ज्यों पीये जल खारी॥
मत कीज्यो जी० ॥ १ ॥

रोग वियोग शोक वन को घन समता-लता कुठारी।
केहरि करि अरी न देत ज्यों, त्यों ये दें दुख भारी॥
मत कीज्यो जी ॥ २ ॥

इनमें रचे देव तरु थाये पाये श्वभ्र मुरारी।
जे विरचे ते सुरपति अरचे परचे सुख अधिकारी॥
मत कीज्यो जी ॥ ३ ॥

पराधीन छिन मांहि छीन हैं, पाप बंध करतारी।
इन्हें गिनें सुख आक मांहि तिन आमतनी बुधि धारी॥
मत कीज्यो जी ॥ ४ ॥

मीन मतंग पतंग भृंग मृग इन वश भये दुखारी।
सेवत ज्यों किंपाक ललित परिपाक समय दुखकारी॥
मत कीज्यो जी ॥ ५ ॥

सुरपति नरपति खगपति हू की भोग न आस निवारी।
'दौल' त्याग अब भज विराग सुख ज्यों पावैं शिव नारी॥
मत कीज्यो जी ॥ ६ ॥

राग—काफी होरी

छांडि दे या बुधि भोरी, वृथा तन से रति जोरी ॥
यह पर है न रहे थिर पोषत, सकल कुमत की झोरी ।
यासौं ममता कर अनादितै, बंधो करम की डोरी ।
सहै दुख जलधि हिलोरी, छांडि दे या बुधि भोरी ॥ १ ॥
यह जड है तू चेतन यौं ही अपनावत बरजोरी ।
सम्यकदर्शन ज्ञान चरण निधि ये हैं सपत तोरी ।
मना विलसौ शिवगौरी, छांडि दे या बुधि भोरी ॥ २ ॥
सुखिया भये सदीव जीव जिन, यासौं ममता तोरी ।
'दौल' सीख यह लीजै पीजे, ज्ञानपियूष कटोरी ॥
मिटै पर चाह कठोरी, छाडदे या बुधि भोरी ॥ ३ ॥

[२८०]

राग—जोगी रासा

चित चिन्त कैं चिदेश कब, अशेप पर वमूं ।
दुखदा अपार विधि दुचार की चमूं दमूं ॥
चित० ॥ ० ॥
तजि पुण्य पाप थाप आप, आप में रमूं ।
कब राग-आग शर्मबाग, दागिनी शमूं ॥
चित० ॥ १ ॥
दृग ज्ञान मान तैं मिथ्या अज्ञान तम दमूं ।
कब सर्व जीव प्राणि भूत, सत्त्व सौं छमूं ॥
चित० ॥ २ ॥

जल मस्म लिप्त-कलश सुकल्स सुबल्स परिनमू ।
दृग के त्रिशाख मस्म कथ थटल्स पद पमू ॥
चित ॥ ३ ॥

कब ध्याय भाम भमर को फिर न भव विपिन भमू ।
जिन पुर कौल दौल का यह हेत हौं नमू ॥
चित ॥ ४ ॥

[२८१]

राग–होरी

मेरो मन ऐसी खेलत होरी ॥
मन मिरदंग साज करि त्यारी, तन को तमूरा बनोरी ।
सुमति सुरंग सारंगी बजाई ताल दोउ कर जोरी ॥
राग पांचौं पद कोरी ॥ मेरो मन ॥ १ ॥
समकित रूप नीर भरि झारी करुना केशर घोरी ।
ज्ञानमई ले कर पिचकारी दोउ कर मांहि सम्हारी ॥
इन्द्री पांचौं सखि बोरी ॥ मेरो मन० ॥ २ ॥
चतुरदान को है गुलाल सो भरि भरि मूठ चलोरी ।
तप मेवा की भरि निज झोरी जश को अबीर उडोरी ॥ ३ ॥
रंग जिन धाम मचोरी ॥ मेरो मन० ॥ ३ ॥
दौलत बाल खेलें अस होरी भव भव दुख टलोरी ।
शरना ले इक श्री जिन को री, जग में लाज हो तोरी ॥
मिलै फगुआ शिव होरी ॥ मेरो मन० ॥ ४ ॥

[२८२]

छत्रपति

(संवत् १८७२–१९२५)

छत्रपति १९वीं शताब्दी के कवि थे। ये आवागढ के निवासी थे। इनकी मुख्य रचनाओं में 'कृपण जगावन चरित्र' पहिले ही प्रकाश में आ चुका है इसमें महाकवि तुलसीदास के समकालीन कवि ब्रह्म गुलाल के चरित्र का सुन्दर वर्णन किया गया है। अभी इनकी 'मनमोहन पचशती' नाम की एक कृति उपलब्ध हुई है। इसमें ५१२ पद्य हैं जिनमें सवैय्या, दोहा, चौपाई आदि छन्दों का प्रयोग किया गया है। रचना में 'कवि की स्फुट रचनाओं का सग्रह है।

उक्त रचनाओं के अतिरिक्त कवि के १६० से भी अधिक हिंदी पद उपलब्ध हो चुके हैं। सभी पद भाव भाषा एव शैली की दृष्टि

ही उच्चस्तर के हैं। पदों की भाषा कहीं कहीं क्लिष्ट अवश्य हो गयी है लेकिन उससे पदों की मधुरता कम नहीं हो सकी है। कवि के पदों में आत्मा परमात्मा एवं संसार दशा का अच्छा वर्णन मिलता है। कवि गृहस्थ होते हुए भी साधु जीवन व्यतीत करते थे। अपनी कमाई का अधिकांश भाग दान में दे देना तथा शेष समय में आत्म चिन्तन एवं मनन करते रहना ही इनके जीवन का कार्यक्रम था। संतोष एवं त्याग के भाव उनके पदों में स्पष्ट रूप में मिलते हैं। इन पदों को पढ़ने से आत्मानुभूति होने लगती है तथा पाठक का मन स्वतः ही अच्छाई की ओर मुड़ने लगता है।

राग-जिलौ

अरे बुढापे तो समान अरि,
कौन हमारे सरवसु हारी ॥
आवत बार हार सम कीने,
दसन तोडि द्रग तेज निवारी ॥ अरे० ॥ १ ॥
किये शिथिल जुग जानु चलत,
थर हरत श्रवन निज प्रकृति विसारी ।
सूखौ रुधिर मांस रस सारौ,
भई विरूप काय भय भारी ॥ अरे० ॥ २ ॥
मद अगनि उर चाह अधिकता,
भखत असन नहि पचत लगारी ।
बालाबाल न कान करें हसि,
करें स्वास कफ विथा करारी ॥ अरे० ॥ ३ ॥
पूरब सुगुरु कही परभव का,
बीज करौ यह हिये न धारी ।
अब क्या होय 'छत्त' पछिताये,
भयी काय जम मुख तरकारी ॥ अरे० ॥ ४ ॥

[२८३]

राग-जिलौ

अन्तर त्याग बिना बाहिज का ;
त्याग सुहित साधक नहि क्यों ही ।

से उच्चस्तर के हैं। पदों की भाषा कहीं कहीं शिथिल अवश्य हो गयी है लेकिन उससे पदों की मधुरता कम नहीं हो सकी है। कवि के पदों में आत्मा परमात्मा एवं संसार दशा का अच्छा वर्णन मिलता है। कवि गृहस्थ होते हुए भी साधु जीवन व्यतीत करते थे। अपनी कमाई का अधिकांश भाग दान में दे देना तथा शेष समय में आत्म चिन्तन एवं मनन करते रहना ही इनके जीवन का कार्यक्रम था। सन्तोष एवं त्याग के भाव उनके पदों में स्पष्ट रूप में मिलते हैं। इन पदों के पढ़ने से आत्मानुभूति होने लगती है तथा पाठक का मन स्वतः ही अध्यात्म की ओर मुड़ने लगता है।

उपजत पाप हरत सुख विगरत,

परभव बुध न चहै ॥ अरे० ॥ २ ॥

जो जिन लिखी सुभासुभ जैसी,

तैसी होय रहै ।

तिल तुष मात्र न होय विपरजै,

जाति सुभाव वहै ॥ अरे० ॥ ३ ॥

छत्तर न्याय उपाय हिये दिढ,

भगवत भजन लहै ।

तौ कितेक दुख बहु सुख प्रापति,

यो जिन वाणि कहै ॥ अरे० ॥ ४ ॥

[२८५]

राग—जोगी रासा

आज नेम जिन वदन विलोकत,

विरह व्यथा सब दूर गई जी ॥

चंदन चद समीर नीर ते,

अधिक शान्तिता हिये भई जी ॥ आज० ॥ १ ॥

भव तन भोग रोग सम जानें,

प्रभु सम हो न उमगमई जी ॥ आज० । २ ॥

'छत्त' सराहत भाग्य आपनो,

राजमति प्रति बोध भई जी ॥ आज० ॥ ३ ॥

[२८६]

बाहिज त्याग होय अन्तर में,
त्याग हाम नहि होय सु योंही ॥
जो विधि हाम लवे विन बाहिज,
साधन करते काज न सीझे।
बाहिज कारन तें कारज की
उपपति होय न होय लखी जे ॥ अन्त ॥ १ ॥
रसन आनन तें साधन बिन
क्षुदित सधे नहि लेर सहीजे।
भय छुत जो देसत जानत
गमन बिना नहि सुफल सहीजै ॥ अन्त० ॥ २ ॥
यों साधन बिन साध्य असम लखि
साधन विषे प्रीति किन कीजे।
धरर बोय गम बजाये
पेट भरे नहि रसना भीजे ॥ अन्त० ॥ ३ ॥
[२८४]

राग–लावनी

अरे मर मिरता क्यों न गहै ॥
बिगरत काज पड़त सिर आपति
समरहि क्यों न सहै ॥ अरे ॥ १ ॥
सोच करत नहि काम सयाने
तम मन ग्यान दहै।

राग-जिलो

आप अपात्र पात्र जन सेती,
जो निज विनय वदगी चाहै।
सो अनन्त ससार गहन वन,
भ्रमन करत नहि उर लहा है ॥ १ ॥
जो लज्जा भय गौरव वस है,
पात्र अपात्रै नमें सराहै।
सोऊ नष्ट भयौ सरधा तें,
बहु भव दुख सिंधु अवगाहै ॥ ॥ २ ॥
दुसह आपदा परत होय सम,
सही सिरी मुनराज कहा है।
जिन आयस सरधान महानग,
नष्ट न करौ महा दुर्लभ हैं ॥ ॥ ३ ॥
तन धन जाहु किनि पद्धति ये,
निज गेय न उपधि कला है।
'छत्तर' वर कल्यान बीज की,
रक्षा करनो परम नफा है ॥ ॥ ४ ॥

[२८८]

राग-दीपचंदी

आपा आप वियोगा रे,
न सुहित पथ जोया ॥

राग-जिलौ

आतम ग्यान मान परकासत
वर उत्साह धरा विस्तरती ।
सुगुन कंज वन मोद प्रभावति,
परम प्रशान्ति सुधाकरि भरती ॥

भरम आंध विधि आगम आरन
मन वच काय क्रिया पुय करती ।
तन तें भिन्न अपनपो आमिति
राग-द्वेष संतति अपहरती ॥ आतम० ॥ १ ॥

जो अभेद अविकल्प अनूपम
चित्स्वाभावना सो नहि टरती ।
वर्तमान निर्बंध पुरातन
कर्म निर्जरा फल करि फरती ॥ आतम० ॥ २ ॥

जहां न चंद सूर युग मन गति
सुथिर भई सरवांग उपरती ।
'जय' आस मरि हिये वास करि
निज महिमा सुहाग सिर धरती ॥ आतम ॥ ३ ॥

परनमत अन्यथा भाव न साजे ।
पुन्य पाप अनुसार सबनिका,
होत समागम सुख दुख पाजे ॥ इक० ॥ १ ॥
जग जन तन सपरस अवलोकन,
करि करि सुख मानें डरि भाजे ।
यह अग्यान प्रभाव प्रगट गुरु,
करत निवेदन जन हित काजै ॥ इक० ॥ २ ॥
पर रस मिलै कदापि न अपमें,
जो जल जलज दलनि थितिकाजे ।
'छत्त' आप केवल-ग्यायक ही,
है वरतें विधि वंध निवाजै ॥ इक० ॥ ३ ॥

[२६०]

राग-सोरठ

उन मारग लागौ रे जियारा,
कौन भांति सुख होय ॥
विषयासक्त लालची गुरु का,
बहकाया भयौ तोय ।
हिंसा धरम विषै रुचि मानी,
दया न जानै कोइ ॥ उन० ॥ १ ॥
इस भव साधन माहि फंसौ नित,
आगम चिन्ता खोय ।

मधुपाई ज्यों विसरि अपन पौ,

हैं अचेत विरलोया रे ॥ न सुहित० ॥ १ ॥

राग विरोध मोह आपने,

मानि विषै रस मोया ।

इष्ट समागम में सुखिया ह्वै

बिछुरत द्रग भर रोया रे ॥ न सुहित० ॥ २ ॥

पाट कीट ज्यों आप आप करि,

यथौ सहज सब खोया ।

मधु संकल्प विकल्प जाल फँसि

ममता मेल न धोया रे ॥ न सुहित ॥ ३ ॥

वीतराग विज्ञान भाव निज

सो न कबै ही टोया ।

मधु सुख साधन 'धर्म' परमतरु

समरस बीज न बोया रे ॥ न सुहित० ॥ ४ ॥

[२८६]

राग-जिलौ

इक तें एक अनेक गेय बहु

रूप गुनन करि अधिक विराजे ।

कौन कौन की चाह करे सु,

कौन कौन तुम संग समाजे ॥

सब निज निज परमाम रूप

अब न लागत कंठ मझारा।
तजि विकलप करि थिर चित इतमें,
'छत्त' होय सहजै निसतारा ॥ करि० ॥

[२६२]

राग-झंझौटी

क्या सूझी रे जिय थाने।
जो आपा आप न जाने॥
येक छेम अवगाह सजोगे,
तन ही को निज माने ॥ क्या० ॥ १ ॥
तू न फरस रस सुरभ बरन,
जड तन इन मई न आने।
उपजत नसत गलत पूरित नित,
सुध्रुव सदा सयाने ॥ क्या० ॥ २ ॥
जो कोई जन खाई धतूरा,
तिन कल धौत बखानै।
चिर अग्यान थकी भ्रम भूला,
विषयनि मे चित साने ॥ क्या० ॥ ३ ॥
चाह दाह दाझ्यो न सिराये,
पिये न बोध सुधाने।
'छत्तर' कौन भांति सुख होवै,
बडा अदेशा म्हाने ॥ क्या० ॥ ४ ॥

[२६३]

मधुवा मको लखे नहिं निजहित
जो मधुपाई खोय ॥ ज्ञान० ॥ २ ॥
सो इस समै 'ज्ञान' नहिं सुमरै
धर्म न धारै कोइ ।
मधुमाखी ज्यों सुख करि मींजे,
बहै पसाना होय ॥ ज्ञान० ॥ ३ ॥

[२६१]

राग–जिलौ

करि करि ध्यान अयान अरे नर
निज आतम अनुभव रस धारा ।
वादि अनर्थ माहिं क्यों खोवत
आयु दिवस दिनकारा ॥
तन में बसत मिलत नहीं तन सों,
ज्यों जल कूप तेल तिल न्यारा ।
देखत जानत आप अपरके
गुन परजाय प्रवाह प्रधारा ॥ करि० ॥ १ ॥
सिद्ध में निरविकार निराभय
आनन्द रूप अनूप उधारा ।
अपनी भूल मची पर वस है
भयो समाकुल संसल अपारा ॥ करि० ॥ २ ॥
सुख के धाम होत सुख भाई

अ ब न लागत कठ मझारा ।
तजि विकलप करि थिर चित्त इतमे,
'छत्त' होय सहजै निसतारा ॥ करि० ॥

[२६२]

राग-झंझौटी

क्या सूझी रे जिय थाने ।
जो आपा आप न जाने ॥
येक छेम अवगाह सजोगे,
तन ही को निज माने ॥ क्या० ॥ १ ॥
तू न फरस रस सुरभ वरन,
जड तन इन मई न आने ।
उपजत नसत गलत पूरित नित,
सुध्रुव सदा सयाने ॥ क्या० ॥ २ ॥
जो कोई जन खाई धतूरा,
तिन कल धौत बखानै ।
चिर अग्यान थकी भ्रम भूला,
विषयनि में चित साने ॥ क्या० ॥ ३ ॥
चाह दाह दाह्यो न सिराये,
पिये न बोध सुधाने ।
'छत्तर' कौन भांति सुख होवै,
बडा अदेशा म्हाने ॥ क्या० ॥ ४ ॥

[२६३]

राग—जगलो

कहा तरु छिन भई बाग में रमत
इस मिल्यो चिद्रूप पुदगल पसारौं।
सुगुन फुलवारि सुख सुरभ विकसे भरी
खोलि हिये नैन के निहारो ॥

भेद विज्ञान शुभ सुन्दर निज साख से,
आनि गुन जाति फल लसन सारी।
ठीकरी सहित दिढ धारि परतीति सब
मन में सब सिधि रीझ भारी ॥ कहा० ॥ १ ॥

सील सरद्रूप बेला चमेली भली
त्याग तप के भरी कंज प्यारी।
ध्यान वैराग मचकुंद चंपा छिमा
सेवती दया निज पर सम्भारी ॥ कहा० ॥ २ ॥

धैर्य साहस गुलाब शुभ मोगरा,
साम्य गुल मोतिया सुरभ भारी।
'बुध' मन बारु हर परम विश्राम वल
रहो अपवत सद्गुरु उचारी ॥ कहा० ॥ ३ ॥

राग–जिलौ

कहू कहा जिनमत परमत में।
अन्तर रहस भेद यहभारी ॥
अनेकान्त एकातवाद रस ।
पीवत छकत न बुध अविचारी ॥
करता काल सुभाव हेत इम ।
निज निज पक्षि तने अविकारी ॥
अनित्य नित्य विधि वरने ।
हटते लोपत परविधि सारी ॥ कहू० ॥१॥
द्रगन अंध जन जो गज तन गहि ।
निज निज वातै करें करारी ।
मिटत विरोध नही आपस का ।
क्यों करि सुखि होय ससारी ॥२॥
स्यादवाद विद्या प्रमाण नय ।
सत्य सरूप प्रकाशन हारी ॥
गुरु मुख उदै भइ जाके घट ।
छत्त वही पण्डित सुखधारी ॥३॥

[२६५]

राग–बिलावल

जगत गुरु तुम जयवत प्रवर्तो।
तुम या जग में असम पदारथ, ॥
सारत स्वारथ सरतौ ॥

या संसार गहन बन माहीं।
मिथ्यात्मांत प्रसरतो ॥
तुम मुख वचन मकास बिना।
यह भ्रम उपायनि टरतो ॥
जगत० ॥१॥

सुपर भेद विधि आगम निरखे।
तुम बिन कौन उचरतो ॥
विधिरिन उपरत संयम साधनि करि।
को सिव तिय वरतो ॥
जगत० ॥२॥

मविक भाग तें तुवे विहारो।
दिन दिन होत उपरतो ॥
वीतराग विज्ञान चिन्ह लखि।
बुध चरन चित धरतो ॥
जगत० ॥३॥

[२६९]

राग–बिलावल

जग में सही थ मेरी आई।
अब सही मही आई ॥
मिथ्या विषय कषाय तिमर।
रग गहे न सुहित सखाई ॥ जग ॥१॥

स्वपर प्रकाशक जिन श्रुत दीपक।
पाइ अध अधिकाई ॥
औरनि को हित पथ दरसावत।
आप परे अध खाई ॥ जग० ॥ २ ॥
जिन आयस सरधान सर्वथा।
क्रिया शक्ति समगाई ॥
सो न ऊ च पद धारि नीचकृति।
करत न मूढ लजाई ॥ जग० ॥ ३ ॥
जिनकी द्रिष्टि सुहित साधनपै।
तें सदवृत्य धराई ॥
धरम आसरे 'छत्त' जीवका।
कौंन गुरु फरमाई ॥ जग० ॥ ४ ॥

[२६७]

राग–सोरठ

जाको जपि जपि सब दुख दूरि होत वीरा।
उस प्रभु को नित ध्याऊं रे ॥
दोष आवरन गत, दायक शिव पथ।
तारन तरन स्वभाऊं रे ॥
जाको० ॥ १ ॥
ज्ञान द्रग धारी सुबल सुख भारी।
अतिशय सहित लखाउ रे ॥
जाको० ॥ २ ॥

या संसार गहन बन माही।
मिथ्याभ्रांत प्रसरतौ ॥
तुम मुख वचन प्रकास विना।
पद भ्रम ज्यामनि टरतौ ॥
जगत० ॥१॥

सुपर भेद विधि आगम निरखे।
तुम बिन कौन उचरतौ ॥
विधिरिन उचरन संजम साधनि करि।
को सिव तिय वरतौ ॥
जगत० ॥२॥

भविक भाग तैं जहै विहारी।
दिन दिन होत उचरती ॥
वीतराग विज्ञान चिन्ह लखि।
बुध चरन चित धरतौ ॥
जगत० ॥३॥

[२६६]

राग–विलावल

जग में बड़ी अधेरी छाई।
कहत बड़ी मही जाई ॥
मिथ्या विषय कषाय तिमर।
हग गहै न सुदिव सुसाई ॥ जग ॥१॥

राग-जिलौ

जे सठ निज पद-जोग्य क्रिया तजि।
अन्य विशेष क्रिया सनमानै ॥
ते तरुमूल छेद लघु दीरघ।
साख रखा मन की विधि ठाने ॥

जो क्रम भंग भखत भेपज कों।
बधै व्याधि यह ज्ञान न आनै ॥
तौ जिन आयस वाहिज साधन।
तीव्र कषाय काज नहि जानै ॥ जे० ॥१॥

जिन आयस सरधान एक ही।
कियो सुदिढ दायक सुरथानै ॥
तौं वर क्रिया साथ साधन को।
क्यों न लहै जिन सम प्रभुताने ॥ जे० २॥॥

जातें श्रुत सरधान स्वथा करौ।
क्रिया वृष थल पहिचाने ॥
'छत्र' जीवका लोक वडाई-
मांहि, कहा हित लखौ सयाने ॥ जे० ॥३॥

मोह मद मोया मूरि बिन खोया।
कृत छहा भव भाउ रे ॥
जाको० ॥३॥
[२६८]

राग—झंझोटी

जिनवर तुम भव पार लगाइयो ॥
विधि बस भयो फंसो भवकारज।।
तुम मग भूलिन गहियो ॥ जिन० ॥ १ ॥
शिशुपन भ्रष्ट प्यार शिशुगन में-
खेलत त्रिपति न लहियो ॥
जोबन धाम वाम विषयन वस।
नमत येक निवहियो ॥ २ ॥
वृद्ध भये इन्द्रिय शिथ करज-
करन समरथ न रहियो ॥
और अनेक भांति रोगन की।
वेदन सब दुख सहियो ॥ जिन० ॥ ३ ॥
तुम प्रभु सीख सुनी बहुदिन सो।
सो सब गोचर भइयो ॥
दश भावना करो समाधित।
निज सेवक सरनहियो ॥ जिन० ॥ ४ ॥
[२६६]

राग-जिलौ

जो भवतव्य लखी भगवत,
सु होय वही न अन्यथा होही ॥
यह सति वज्र-रेख ज्यों अविचल,
वादि विकल्प करै जन यों ही ॥
जे पूरव कृत कर्म शुभाशुभ,
तास उदै फल सुख दुख होई ॥
सो अनिवार निवारन समरथ,
हूआो, न है, न होइगो कोई ॥ जो० ॥१॥
मन्त्र जन्त्र मनि भेषजादि बहु,
है उपाय त्रिभुवन मे जोई ॥
सो सब साध्य काज को साधन,
असाध्य साधे नहि सोई ॥ जो० ॥२॥
जातैं सुख दुखरु जु होत नहि,
हरष विषाद करो भवि लोई ॥
वरतमान भावी सुख साधन,
'छत्त' धरम सेवौ द्रिढ होई ॥ जो० ॥३॥

[३०२]

राग-जिलौ

दरस ज्ञान चारित तप कारन,
कारज इक वैराग्यपना है ॥

राग–जिलौ

जो कृषि साधन करते बीज बिन,
जोमें अन्न धाम नहिं होई ।
तों पद योग्य क्रिया बिन क्षुल्लक,
अैंलक मुनि शिव धाम न होई ॥
केवल भेष अलेख अमूल्य अज्ञ,
मरमें हास्य इत्यानक सोई ॥
मूढ विचार उपवास आदि तप,
वेदर मरन साधन अवलोई ॥
जो ॥१॥

जिन आगम अनुकूल गुरु भी
निरापेक्ष रूप साधनें जोई ॥
मधु गुन सिंधु साम्य-रस-पूरन
साधे मुदित अहित सब खोई ॥
जो ॥२॥

प्रभुता सुजस मान पोषण के,
हेत आचरी धरम होई ।
भव दुर्ख भासैरु शिव सुख साधन
'श्रुत आदरी मन मल धोई ॥
जो० ॥३॥

राग-जिलौ

जो भवतव्य लखी भगवत,
सु होय वही न अन्यथा होही ॥
यह सति वज्र-रेख ज्यों अविचल,
वादि विकल्प करै जन यों ही ॥
जे पूरव कृत कर्म शुभाशुभ,
तास उदै फल सुख दुख होई ॥
सो अनिवार निवारन समरथ,
हूओ, न है, न होइगो कोई ॥ जो० ॥१॥
मन्त्र जन्त्र मनि भेषजादि बहु,
है उपाय त्रिभुवन मे जोई ॥
सो सब साध्य काज को साधन,
असाध्य साधे नहि सोई ॥ जो० ॥२॥
जातें सुख दुखरु जू होत नहि,
हरष विषाद करौ भवि लोई ॥
वरतमान भावी सुख साधन,
'छत्त' धरम सेवौ द्रिढ होई ॥ जो० ॥३॥

[३०२]

राग-जिलौ

दरस ज्ञान चारित तप कारन,
कारज इक वैराग्यपना है ॥

कारन काज अन्यथा मानत
विनका मन मिथ्यात सना है ॥
तरु तें बीज बीज तें तरुवर,
यो नहि करम काज मना है ॥
आप बमत बैराग बभावत,
हरत सकल दुख दोप बना है ॥ दरस० ॥
जहाँ ज्ञान बैराग्य अवस्थित
तहाँ सहज आनन्द घना है ॥
सिपै कषाय उपाधिक भावन-
की संतति नहि उदित बना है ॥ दरस ॥
नाम न ठाम न विधि आश्रव की
पुनि अवस्थित बंध हना है ॥
बच सदा जयवंत प्रकटी
करम काज दुगु आपना है ॥ दरस० ॥

[२ ४]

राग—चौतालो

देखो कलिकाल ख्याल नैनंनि निहारि लाल
काहि आत साहू चोर पावत इनाम है ॥
कागनि के मोती की मरालनु की कौड़ू–कन
राजन को झुटी इस बसें हेम धाम है ॥
मूठी जुक्ति वारीनि कू सराहतें लोग बहु

वादी जन के उतारे जात वाम है ॥
साधुन को पीडा और असाधुन को प्रतिपाल,
खोय धन धर्म निज राखौ चाहैं नाम है ॥
देखौ० ॥ १ ॥

रीति प्रीति सुजनता गुणीन सो ममता,
दूरि भई सर्वथा जो दिनांत घाम है ॥
हंसनि की ठौर काग ही को हंस मानै लोग,
फैली विपरीत न समेटी जाति आम है ॥
देखो० ॥ २ ॥

कुमार्ग रत राज दंभ धारी मुनिराज प्रजाजन,
शिष्यन के सरें किम काम है ॥
'छत्त' सुख को न लेश धरम सधै न वेश,
कलह कलेश शेष पेरा आठौ जाम है ॥
देखौ० ॥ ३ ॥

[३०५]

राग–बिलावल

देखौ यह कलिकाल महात्म्य,
नौका डूबत सिल उतरावै ॥
बोवत कनक आम फल लागत,
सेवत कुपथ रोग तन जावै ॥
तले कलश ऊपर पनिहारी,

गावर पूत अगारि सिखावै ॥
बालक अक रमा चढ़ि सोवै
जोंकी की अस मगरें खावै ॥ देखौ० ॥१॥
विष आचमन करत तन जीवत
अमृत पीवत प्रान गमावै ॥२
चंदन लेप मझै तन दाहै
दुक्सुक सेवत शांति सुहावै ॥ देखौ० ॥२॥
पाप कपावत अगत सराहत
धरम करत अपवाद लहावै ॥
सत' कछु नहिं जात बखानी
मौंन गहैं ही समता आवै ॥ देखौ० ॥३॥

[२०६]

राग—कनडी तथा सोरठ

निपुनता कहाँ गमाई राम ॥
मूढ भये परगुन रस राचे
सोयो सहज समाज ॥ निपुनता० ॥ १ ॥
पुदगल जीव मिल तन को
निज मानत धरि चाहदाइ ।
जो कम त्रिन मत्त वारन
नहिं आवत मिल त्याइ ॥ निपुनता० ॥ २ ॥

आनन्द मूल अनाकुलताई,
दुख विभाव वम चाह।
दुहका भेद विज्ञान भये विन,
मिलत न शिवपुर राह ॥ निपुनता० ॥ ३ ॥
अब गुरु वचन सुधा पी चेतन,
सरधौ सुहित विधान।
मिथ्या विषय कषाय 'छत्त' तज,
करि चिन्मूरति ध्यान ॥ निपुनता० ॥ ४ ॥

[३०७]

राग-जिलौ

प्रभु के गुन क्यों नहि गावै रे नीकै,
छै आज घडी सुग्यानीडा ॥
तन अरोग जीवन विधि आछी,
बुध संग मति उजरी ॥ सुग्यानी० ॥ १ ॥
वे जग नायक हैं सब लायक,
घायक विघन अरी।
जीय अनन्त नाम सुमिरन करि,
अविचल रिधि धरि ॥ सुग्यानी० ॥ २ ॥
जो तू ज्ञानीडा विषयन सेवे,
यह नही वात खरी।
इन बस है भव भव चहुगति में,
को नहि विपति भरी ॥ सुग्यानी० ॥ ३ ॥

फिरि यह विधि कब मिली दुहेली,
सो रत्न उदधि परी।
भव तट पाहै तौ भव हित करि
पढि जिन भक्ति तरी॥ सुग्याती ॥४॥

[१०८]

राग-सारग

भजि जिनवर चरन सरोज नित
मति बिसरै रे भाई॥
चिर भव भ्रमत भागि जोगा यह
नर उत्तम विधि पाई॥ भजि ॥१॥

जिन प्रयास जीव को सुखसता
कोनों कमी उपाई।
नरभव वर कुल बुधि सुप संगति
देह अरोग सहाई॥ भजि० ॥२॥

जिन सेवत है दुखी होयगो,
भव भव दुख बमाई।
तिन ही सौं परचे निश वासर,
कौन समझ पर आई॥ भजि० ॥३॥

सुरमत तिरे अधम नर पशु बहु,
अब भी तिरत सुभाई।

'छत्त' वर्तमान आगामी,
मन इच्छित फलदाई ॥ मति० ॥ ४ ॥

[३०९]

राग-जिलौ

या धन को उतपात घने लखि,
क्यों नहि दान विषै मति धारै।
तस्कर ठग बटमार दुष्ट अरि,
भूप हरै पावक पर जारै॥
बधु विरोध कुसंतति तैं छय,
भूमि धरी सुर अन्तर पारै।
भोग सजोग सुजन पोपन मे,
लगौ गयो नहि स्वारथ सारै॥ या० ॥ १ ॥
जो सुपात्र अर दुखित भुखित को,
दियो अलप हूँ वहु दुख टारै।
भोग भूमि सुर शिव तरुवर का,
वीज होय सबका जस भारै॥ या० ॥ २ ॥
जो है उर विवेक सुख इच्छा,
तो तजि लोभ चतुर परकारै।
'छत्त' शक्ति अनुसार दान को,
करन भलौ इस सुगुरु उचारै॥ या० ॥ ३ ॥

[३१०]

फिरि यह विधि कब मिली दुहेली,
　　　　　जो एव उदधि परी ।
मन तट चाहै तौ भव हित करि
　　　　　चढि जिन भक्ति तरी ॥ सुग्यानी ॥४॥

[३०८]

राग–सारग

मजि जिनवर चरन सरोज नित
　　　　　मति बिसरै रे भाई ॥
चिर भव भ्रमत भागि जोग यह,
　　　　　भव उत्तम विधि पाई ॥ मति ॥१॥
बिन प्रयास जीव को सुखसता,
　　　　　कोनौं कमी उपाई ।
नरभव वर कुल सुधि सुभ संगति
　　　　　देह अरोग लहाई ॥ मति० ॥२॥
जिन सेवत है सुखी होयगो,
　　　　　भव भव दुख बनाई ।
तिन ही सौं परचै मिश वासर
　　　　　कौन समझ उर लाई ॥ मति० ॥३॥
सुरमत तिरे अधम नर पशु बहु,
　　　　　अब भी तिरत सुमाई ।

विद्यमान भावी दुख साधन,
आकुलतामय अगिनि करारी ॥ यो० ॥ १ ॥
सतोपादि सुगुन पंकज घन,
तिहैं मिटावन निसि अंधियारी ।
हिंसा झूठ अदत्त ग्रहन में,
प्रेरक सदा न जाति निवारी ॥ यो० ॥ २ ॥
यह अज्ञान बीज तें उपजत,
तजि नहिं सकल जीव संसारी ।
जो मद पीय विकल ह्वै फिरि फिरि,
मद ही को पीवत अविचारी ॥ यो० ॥ ३ ॥
धनि वे साधु तजी जिन आसा,
भये सहज समरस सहचारी ।
छत्त तिनों के चरण कमल वर,
धारत अहि निश हिये मझारी ॥ यों० ॥४॥

[३१२]

राग–सोरठ

राज म्हारी टूटी छै नावरिया,
अब खेय के लगादीजो पार ॥
यह भवउदधि महा दुख पूरन,
मोह भवर धरिया ।
विकट विभव पवन की पलटनि,
लखि तन मन डरिया ॥ राज० ॥ १ ॥

राग—लावनी

या भवसागर पार जान की
जो थिर चाह धरै।
तौ चढ़ि धरम नाव सुख-
दायी क्यों अब विलम करै॥
तन धन परिजन पोषन मांही
बहु आरंभ करै।
सह प्रयास दुख सींच नसा
इस कटुफल गरज भरै॥ या ॥ १॥
पानी परै न घड़ी काल की
जब सिर आन पड़ै।
तब कहा करै जाय दुरगति में,
बहु विधि विपति भरै॥ या ॥ २॥
या पट पार भये बहु प्रानी
निवसे अटल घरै॥
'भूधर' तुम क्यों भये प्रमादी,
इपव अयस भरै॥ या० ॥ ३॥

[३११]

राग—काफी होरी

यो घन आस महा भय रास
भवांबुध वास डरावन हारी॥

विद्यमान भावी दुख साधन,
आकुलतामय अगिनि करारी ॥ यो० ॥ १ ॥
सतोपादि सुगुन पकज वन,
उदै मिटावन निसि अधियारी।
हिसा झूठ अदत्त ग्रहन में,
प्रेरक सदा न जाति निवारी ॥ यो० ॥ २ ॥
यह अज्ञान बीज तें उपजत,
तजि नहि सकल जीव ससारी।
जो मद पीय विकल ह्वै फिरि फिरि,
मद ही को पीवत अविचारी ॥ यो० ॥ २ ॥
धनि वे साधु तजी जिन आसा,
भये सहज समरस सहचारी।
छत्त तिनों के चरण कमल वर,
धारत अहि निश हिये मझारी ॥ यों० ॥४॥

[३१२]

राग-सोरठ

राज म्हारी टूटी छै नावरिया,
अब खेय के लगादीजो पार ॥
यह भवउदधि महा दुख पूरन,
मोह भवर धरिया ।
विकट विभव पवन की पलटनि,
लखि तन मन डरिया ॥ राज० ॥ १ ॥

धन-मारग असधर निम सरहि
मेंघस जुइ करियां ॥
कहों कहा कछु कहत न आवे
सुधि वस सब टरियां ॥२॥
विपति बिदारन बिरद बिहारी ।
सुनि पनि मन भरिया ॥
'भग' छिम अब होउ सहाई
कहों पगां पडिया ॥ राज० ॥३॥

[३१३]

राग–जिलो

रे जिय तेरी कौन मूल यह
जो गुरु सील न माने है रे ॥
जो अबोध व्यापी पियूष सम
भेषज हिये न आने है रे ॥
जा करी दुखी भया है होगा
तिस ही में चित साने है रे ॥
विद्यमान भावी सुख कारन
ताहि न टुक सनमाने है रे ॥
रे ॥१॥
परमातमनि सों भिन्न ग्यान
आनन्द सुभाव न ठाने है रे ॥

अपर गेह सम्बन्ध थकी,
सुख दुख उतपति वखाने है रे ॥
रे० ॥ २ ॥

दुर्लभ अवसर मिला, जात यह,
सो कहा न तू जाने है रे ॥
'छत्त' ठठेरा का नभचर जो,
निडर भया थिति थाने है रे ॥
रे० ॥ ३ ॥

[३१४]

राग—कालंगडो

रे भाई आतम अनुभव कीजै ॥
या सम सुहित न साधक दूजो,
ज्ञान द्रगन लखि लीजे ॥ रे० ॥१॥
पुदगल जीव अनादि सजोगी,
जो तिल तेल पतीजे ॥
होत जुदौ तौ मिलौ कहा हैं,
खलि सब प्रति दिठि दीजे ॥ रे० ॥२॥
जीव चेतनामय अविनाशी,
पुदगल जड मिलि छीजे ॥
रागादिक पर-नमन भूलि निज गये,
साम्य रग भीजे ॥ रे० ॥३॥
निरउपाधि सरवारथ पूरन,
आनन्द उदधि मुनीजे ॥

'बुध' दास गुन रस स्वाद तें,

अनुभव सुखरस पीजे ॥ १० ॥४॥

[३१५]

राग-झंझोटी

लखे हम तुम सांचे सुखदाय ॥

वीतराग सर्वज्ञ महोदय

त्रिभुवन मान्य उपाय ॥ लखे० ॥१॥

चारन अतिशय प्रमुखापन पर,

परमौदारिक काय ॥

गुन अनंत बुध कौन कहि सकै

थकित होय सुरराय ॥ लखे० ॥२॥

सुखमय मूरति सुखमय सूरति

सुखमय वचन सुभाय ॥

सुखमय शिक्षा सुखमय दीक्षा

सुखमय क्रिया उपाय ॥ लखे० ॥३॥

'बुध' सुमन अलिपदसरोज पर

लुब्ध भयो अधिकाय ॥

पूरव इव विधि करो विधा की

हरो शांति रस प्याय ॥ लखे० ॥४॥

[३१६]

राग—जोगी रासा

चोवत बीज फलत अतर सों,
धरम करत फल लागत है ॥
जों घन घोर बीजली चमकनि,
लोय प्रकाश साथ जागत है ॥
तीव्र कषाय रूप अघकारज,
त्याग सुभाश्रव को आश्रत है ॥
वीतराग विज्ञान दशा मय,
छिप्र विधि रिन जात्रत है ॥ चोवत० ॥१॥
दोऊ धरे निराकुलतापन,
सोई सुख जिन श्रुत आहत है ॥
धरम जहां सुख यह कहना सति,
आन गहे सठ जन चाहत है ॥ चोवत० ॥२॥
इम लखि ढील कहा साधन में,
औसर गये न कर आवत है ॥
'छत्त' न्याय यह चलै लहै थल,
किये विना कहि को पावत है ॥ चोवत० ॥३॥

[३१७]

राग-होरी

सुनि सुजन सयाने तो सम कौन असीर रे ।
निज गुन विभव विसरि करि भोंदू ।
गेलत भयो फकीर रे ॥ सुनि० ॥१॥

'अच' वास गुन रस स्वाद तें,

अनुभव सुखरस पीजे ॥ दे० ॥४॥

[२१५]

राग-झमोटी

लखे हम तुम सांचे सुखदाय ॥

वीतराग सर्वज्ञ महोदय

त्रिभुवन मान्य धयाय ॥ लखे० ॥१॥

बारम अतिशय प्रमुदापन धर

परमौदारिक काय ॥

गुन अनंत शुध कौन कहि सके

थकित होय सुरराय ॥ लखे० ॥२॥

सुखमय मूरति सुखमय सूरति,

सुखमय वचन सुभाय ॥

सुखमय शिक्षा सुखमय दिक्षा

सुखमय क्रिया उपाय ॥ लखे० ॥३॥

'अच' सुमन अखिपदसरोज पर

लुब्ध भयो अधिकाय ॥

पूरब कृत विधि करे बिदा की

हरी शांति रस ल्याय ॥ लखे० ॥४॥

[२१६]

परम प्रशांति स्वानुभव गोचर,
निज गुन-मनि-माल न पोवत है ॥ हम० ॥
इन्द्रिय द्वार विषै रस वस हैं,
आपनपौ भव जल डोवत है ॥ हम० ॥
पर निज मानि मिलत विछुरत मे,
सुख दुख मानि हसति रोवत है ॥
'छत्र' स्वतन्त्र परम सुख मूरति,
वर वैराग्य न द्रग जोवत है ॥ हम० ॥

[२१६]

राग–दीपकचंदी

समझ विन कौन सुजन सुख पावै,
निज द्रिढ विधि वध बढावै ॥
पाटकीट जों उगलि तारकों,
आपन यौ उलझावैं ॥ समझ० ॥१॥
भाटा लेय धुने सिर अपनो,
दोप तास सिर थावै ॥
मलिन वसन चिकटास सलिलसौं,
धोवत मन न लगावै ॥ समझ० ॥२॥
चिर मिथ्यात कनिक रस भोया,
तिन कलधौत वतावै ॥

गुरु उपदेश संभालि खोलि हिय ।
नैंन निरखि धरि धीर रे ॥
निपट नजीक सुसाध्य ग्यान द्रग ।
धीरज सुख द्रुम धीर रे ॥ सुनि० ।२।
समरस असन अथाह कोप धृप ।
वसनाभरन सरीर रे ॥
द्रव्य निरत की परजै पलटनि ।
निरत विलोकि अमीर रे ॥ सुनि ॥३॥
सुनि त्रिभुवनपति राम सचीपति ।
सेवग मुनिगम पीर रे ॥
'चन्द' चरित विराग भाव गहि ।
साधन आदि अखीर रे ॥ सुनि ॥४॥

[२१८]

राग-जिलो

हम सम कौन अयान अभागौ
जो धृप ग्राम समय खोवत है ॥
जा दुख कटुक फलनि करि फलता
पाप अनोकह नम बोवत है ॥
इस बिरिया में जे सुविवेकी
पूरव कृत विधि मल धोवत है ॥ हम० ॥
हम भ्रम मूकि मूढ है भइ निशा
निबड़ अचेत नींद सोवत है ॥ हम० ॥

त्यागौ मन वच तन कृत कारित,
अनुमत जुत संतोष धरा है ॥
'छत्तर' विद्यमान समयांतर,
सुखी होय करि वृत सुचिरा है ॥ धन० ॥३॥

[३२१]

राग-जिलौ

काहूँ के धन बुद्धि भुजाबल,
होत स्वपर हित साधन द्वारा ॥
काहू के निज अहित दुखित कर,
काहू के निज पर दुखकारा ॥

जे जिन श्रुत-रसज्ञ जन ते तौ,
स्वपर सुहित साधत अनिवारा ॥
स्वपद भग भय धन सचय रुचि,
तें निज अहित फंसे निरधारा ॥
काहू० ॥ १ ॥

जे निरिच्छ परम वैरागी,
साधत सुहित न अन्य विचारा ॥
मिथ्या विषय कषाय लुब्ध जन,
करत आप पर अहित विथारा ॥
॥ काहू० ॥ २ ॥

जिन भावस भाहिज मिश्र जोगा
अनुष्ठान ठहरावे ॥ समम्क० ॥३॥
मत स्वभाव ग्यान ह्रिड सरधा
समरस सुखे सरसावे ॥
सो न कभाम ध्याइ रस पीवत ।
मधु सवपात थ्यावे ॥ समम्क ॥४॥

[१२०]

राग–जिलो

धन सम इष्ट न अन्य पदारथ
मान देय धर्न देनें न चाहे ॥
परधन हरन समान न दुकृत,
इस परमव दुखदाय सदा है ॥
परधन हरन प्रयोग विधे रत
तिन सम अधम न अवर नरा है ॥
तस्कर मही महें जे मानव,
ते तिन तें बहु दोष भरा है ॥ धन ॥१॥
नृप शासिक मारू हीनाधिक
वैव लेव के लोभ भरा है ॥
प्रति रूपक विवहारक हूं बहु,
मत न करे व्रत भक्त परा है ॥ धम० ॥२॥

तजि प्रयास सव आस वृथा करि,
कारन काज विचार सुठारा ॥
॥ ऐसो• ॥ २ ॥

यह ससार दशा छिनभगुर,
प्रभुता विघटत लगत न बारा ॥
क्यों टुक जीवन पै गरवाना,
'छत्त' करौ किनि सुहित सभारा ॥
॥ ऐसो० ॥ ३ ॥

[३२३]

राग–सोरठ

आयु सब यो ही बीती जाय ॥
बरस अयन रितु मास महूरत,
पल छिन समय सुभाय ॥ आयु० ॥ १ ॥

वन न सकत जप तप व्रत सजम,
पूजन भजन उपाय ॥
मिथ्या विषय कषाय काज में,
फसौ न निकसौ जाय ॥ आयु• ॥ २ ॥

[illegible] जात अकारथ,
सत प्रति कहू सुनाय ॥

तातैं दृढ़ सिद्धांत चितु करि
सिद्धि करौ वैराग्य उदारा ॥
'भगत' बिना वैराग्य क्रिया इम
जिम बिन अंक सून्य परिवारा ॥
॥ काहू० ॥ ३ ॥

[३२२]

राग–जिलौ

ऐसो रचौ उपाय सार बुध
जा करि अब होय अनिवारा ॥
सुजस बधै सुख बधै बधै वृष
जो सब भव दुख मेटन हारा ॥

जा करि अजस होय अघ प्रगटै
बधै भवांतर कौ दुखमारा ॥
सो उपाय परहरौ सयाने
करि जिन आगम रहसि विचारा ॥
ऐसो ॥ १ ॥

मृत्तिका कलसा उपाय साध्य है,
चारू कलसा न होय अगारा ॥

पं० महाचन्द

पं० महाचन्द जी सीकर के रहने वाले थे। ये भट्टारक भानुकीर्ति की परम्परा में पाण्डे थे तथा इनका मुख्य कार्य गृहस्थों से धार्मिक क्रियाओं को सम्पन्न कराना था। सरल परिणामी एवं उदार प्रकृति के होने के कारण ये लोकप्रिय भी काफी थे।

इन्होंने त्रिलोकसार पूजा को जो इनकी सबसे बड़ी रचना है संवत् १६१५ में समाप्त किया था। यह इनकी अच्छी कृति है तथा लोकप्रिय भी है। इन्होंने तत्वार्थ सूत्र की हिंदी टीका भी लिखी थी तथा कितने ही हिंदी पदों की रचना की थी। इनके अधिकांश पद भक्ति स्तुति एवं उपदेशात्मक हैं। सभी पद सीधी सादी भाषा में लिखे गये हैं। पदों की भाषा पर राजस्थानी का प्रभाव है।

राग—जोगी रासा

मेरी ओर निहारो मोरे दीन दयाला ॥ मेरी० ॥

हम कर्मन तैं भव भव दुखिया,
तुम जग के प्रतिपाला ॥
मेरी० ॥ १ ॥

कर्मन तुल्य नही दुख दाता,
तुम सम नहि रखवाला ॥
तुम तो दीन अनेक उबारे,
कौन कहै तैं सारा ॥
मेरी० ॥ २ ॥

कर्म अरी कौं वेगि हटाऊ,
ऐसी कर प्रभु म्हारा ॥
बुध महाचन्द्र चरण युग चर्चै,
जांचत है शिवमाला ॥
मेरी० ॥ ३ ॥

[३२५]

राग—जोगी रासा

मेरी ओर निहारो जी श्री जिनवर स्वामी अंतरयामी जी ॥
मेरी ओर निहारो० ॥

दुष्ट कर्म मोय भव भव मांही,
देत रहैं दुखभारी जी ॥
जरा मरण संभव व्याधि कछु
पार न पायो जी ॥ मेरी ओर० ॥ १ ॥
मैं तो एक आठ स ग मिलकर
सोध सोध दुख सारो जी ॥
ये ते हैं बरज्यो नहीं मानैं
दुष्ट हमारो जी ॥ मेरी ओर० ॥ २ ॥
और कोऊ माय दीसत नाहीं
सरणागत भवपालो जी ॥
बुध महाचन्द्र चरण ढिग ठाडो
शरण थांको जी ॥ मेरी ओर० ॥ ३ ॥

[३२६]

राग-सारग

कुमति को काढो हो भाई ॥
कुमति रची इक चारुदत्त ने वेश्या संग रमाई ॥
सब धन खोय होय अति फीके गुप्त महं लटकाई ॥
कुमति० ॥ १ ॥
कुमति रची इक रावण नृप नै सीता को हर ल्याई ॥
तीन खंड को राज खोय के दुरगति वास कराई ॥
॥ २ ॥

कुमति रची कीचक ने ऐसी द्रोपदि रूप रिझाई ॥
भीम हस्त तैं थंभ तले गडि दुक्ख सहे अधिकाई ॥
कुमति० ॥ ३ ॥
कुमति रची इक धवल सेठ ने मदनमजूसा ताई ॥
श्रीपाल की महिमा देखिर डील फाटि मर जाई ॥
कुमति० ॥ ४ ॥
कुमति रची इक ग्रामकूट ने करने रतन ठगाई ॥
सुन्दर सुन्दर भोजन तजि के गोबर भक्ष कराई ॥
कुमति० ॥ ५ ॥
राय अनेक लुटे इस मारग वरणत कौन बडाई ॥
बुध महाचद्र जानिये दुख कों कुमती द्यो छिटकाइ ॥
कुमति० ॥ ६ ॥

[३२७]

राग–सारंग

कैसे कटै दिन रैन, दरस विन ॥ कैसे० ॥
जो पल घटिका तुम विन बीतत,
सोही लगै दुख दैन ॥ दरस० ॥ १ ॥
दरशन कारण सुरपति रचिये,
सहस नयन की लैन ॥ दरस० ॥ २ ॥
ज्यों रवि दर्शन चक्रवाक युग,
चाहत नित प्रति सैन ॥ दरस० ॥ ३ ॥

दुष्ट कर्म मोय भव भव मांही,
देत रहैं दुखभारी जी ॥
जरा मरण संभव व्याधि कछु
पार न पायो जी ॥ मेरी ओर० ॥ १ ॥
मैं तो एक आठ स ग मिलकर,
मोय खोय दुख सारो जी ॥
देते हैं बरज्यो नहीं मानैं
दुष्ट हमारो जी ॥ मेरी ओर० ॥ २ ॥
और ओड़ मोय दीसत नाहीं
सरणागत भवपाखो जी ॥
बुध महाचन्द्र चरण ढिग आयो
शरण मांझे जी ॥ मेरी ओर० ॥३॥

[३२१]

राग—सारग

कुमति को छाडो हो भाई ॥
कुमति रची इक चारुदत्त ने, वेस्या संग रमाई ॥
सब धन खोय होय अति फीके गुम मह लटकाई ॥
कुमति० ॥ १ ॥
कुमति रची इक रावण नृप ने सीता को हर ल्याई ॥
तीन खंड को राज खोय के दुरगति वास कराई ॥
कुमति० ॥ २ ॥

राग-सोरठ

जीव निज रस राचन खोयो,
यो तो दोष नही करमन को ॥ जीव० ॥

पुद्गल भिन्न स्वरूप आपणू,
सिद्ध समान न जोयो ॥ जीव० ॥१॥

विषयन के सग रक्त होय के,
कुमती सेजां सोयो ॥
मात तात नारी सुत कारण,
घर घर डोलत रोयो ॥ जीव० ॥२॥

रूप रग नवजोवन परकी,
नारी देखर मोयो ॥
पर की निन्दा आप बडाई,
करता जन्म विगोयो ॥ जीव० ॥३॥

धर्म कल्पतरु शिवफल दायक,
ताको नर तैं न टोयो ॥
विस की ठोड महाफल चाखन,
पाप धतूरा क्यों बोयो ॥ जीव० ॥४॥

कुगुरु कुदेव कुधर्म सेव के,
पाप भार बहु ढोयो ॥
बुध महाचन्द्र कहे [illegible]

राग–सोरठ

जीव तू भ्रमत भ्रमत भव खोयो
जब चेत भयो तब रोयो ॥ जीव० ॥
सम्यग्दर्शन ज्ञान चरण तप
यह धन धूरि बिगोयो ॥
विषय भोग गत रस को रसियो
छिन छिन में अतिसोयो ॥ जीव० ॥ १ ॥
क्रोध मान छल लोभ भयो
तब इन ही में उरझोयो ॥
मोहराय के किंकर यह सब,
इनके बसि ह्वै लुटोयो ॥ जीव० ॥ २ ॥
मोह निवार संवार सु आयो
आतम हित स्वर खोयो ॥
बुध महाचन्द्र चन्द्र सम होकर
उज्वल चित रखोया ॥ जीव० ॥ ३ ॥
[३३१]

राग–सोरठ

धन्य घड़ी याही धन्य घड़ी री
आज दिवस याही धन्य घड़ी री ॥
पुत्र सुलक्षण महासेन घर
आयो चन्द्रप्रभ चन्द्रपुरी री ॥ धन्य० ॥१॥

गज के वदन शत वदन रदन वसु,
रदन पै तरुवर एक करी री ॥
सरवर सत पणबीस कमलिनी,
कमलिनी कमल पचीस खरी री ॥ धन्य ॥२॥

कमल पत्र शत-आठ पत्र प्रति,
नाचत अपसरा रंग भरी री ॥
कोडि सताइस गज सजि ऐसो,
आवत सुरपति प्रीति धरी री ॥ धन्य० ॥३॥

ऐसो जन्म महोत्सव देखत,
दूरि होत सब पाप टरी री ॥
बुध महाचन्द्र जिके भव मांहो,
देखे उत्सव सफल परी री ॥ धन्य० ॥४॥

[३३२]

राग—जोगी रासा

निज घर नाहिं पिछान्या रे, मोह उदय होने तैं मिथ्या
भर्म भुलाना रे ।
तू तो नित्य अनादि अरूपी सिद्ध समाना रे ।
पुद्गल जडमें राचि भयो तू मूर्ख प्रधाना रे ॥ १ ॥
तन धन जोवन पुत्र वधू आदिक निज माना रे ।
यह सब जाय रहन के नाही समझ सयाना रे ॥ २ ॥

पालपने लड़कन संग खोवन त्रिया जवाना रे ।
वृद्ध भयो सब सुधि गई अब घर भुलाना रे ॥ ३ ॥

गई गई अब राख रही तू समझ सियाना रे ।
बुध महाचन्द्र विचारिके निज पद नित्य रमाना रे ॥ ४ ॥

[३३३

राग–जोगी रासा

भाई चेतन चेत सके तो चेत अब,
नातर होगी खुवारी रे ॥ भाई ॥

लख चौरासी में भ्रमता भ्रमता
दुरलभ नरभव धारी रे ।
आयु कहाँ यहां दुःख दाय वें
पंचम काल मझारी रे ॥ भाई० ॥ १ ॥

अधिक कहीं सब सी बरपन की
आयु कहाँ अधिकारी रे ।
आधी तो सोने में खोई
तेरा धर्म ध्यान बिसरारी रे ॥ भाई० ॥२॥

बाकी रही पचास वर्ष में
तीन दशा दुखकारी रे ।
बाल अज्ञान जवान त्रिया रस
वृद्धपने थक हारी रे ॥ भाई० ॥३॥

रोग अरु सोक सयोग दुख वसि,
बीतत हैं दिनसारी रे ।
वाकी रही तेरी आयु किती अब,
सो तैं नांहि विचारी रे ॥ भाई० ॥४॥
इतने ही में किया जो चाहै,
सो तू कर सुखकारी रे ।
नहीं फसेगा फद विच पडित,
महाचन्द्र यह धारी रे ॥ भाई० ॥ ५ ॥

[३३४]

राग—सोरठ

भूल्यो रे जीय तू पद तेरो ॥ भूल्यो० ॥
पुद्गल जड में राचिराचि कर,
कीनों भववन फेरो ।
जामण मरण जरा दौं दाझ्यो,
भस्म भयो फल नरभव केरो ॥ भूल्यो० ॥ १ ॥
पुत्र नारि बान्धव धन कारण,
पाप कियो अधिकेरो ।
तेरो मेरो यू करि मान्यु इन में,
नहीं कोई तेरो न मेरो ॥ भूल्यो० ॥ २ ॥
तीन खड को नाथ कहावत
मदोदरी भरतेरो ।

बालपने छकन संग जोवन त्रिया अधाना रे ।
वृद्ध भयो सब सुधि गई अब धर्म सुहाना रे ॥ ३ ॥

गई गई अब राख रही तू समझ सियाना रे ।
बुध महाचन्द विचारिके निज पद नित्य रमाना रे ॥ ४ ॥

[३३३]

राग–जोगी रासा

माई चेतन चेत सकै तो चेत अब
नातर होगी खुवारी रे ॥ माई ॥

भ्रम चौरासी में भ्रमता भ्रमता
दुरलभ नरभव भारी रे ।
आयु छई तहां पुण्य योग तैं
पंचम काल मझारी रे ॥ माई० ॥ १ ॥

अधिक छई सब सौ बरषन की
आयु कई अधिकारी रे ।
आधी तो सोने में खोई
तेरा धर्म ध्यान बिसरारी रे ॥ माई० ॥ २ ॥

बाकी रही पचास बर्ष में
तीन दशा दुखकारी रे ।
बाल अज्ञान अयान त्रिया रस
वृद्धपने बल हारी रे ॥ माई० ॥ ३ ॥

रोग अरु सोक सयोग दु.ख वसि,
बीतत हैं दिनसारी रे ।
बाकी रही तेरी आयु किती अब,
सो तैं नाहि विचारी रे ॥ भाई० ॥४॥
इतने ही में किया जो चाहै,
सो तू कर सुखकारी रे ।
नहीं फसेगा फंद विच पढित,
महाचन्द्र यह धारी रे ॥ भाई० ॥ ५ ॥

[३३४]

राग—सोरठ

भूल्यो रे जीव तू पद तेरो ॥ भूल्यो० ॥
पुद्गल जड में राचिराचि कर,
कीनों भववन फेरो ।
जामण मरण जरा दौं दाभ्यो,
भस्म भयो फल नरभव केरो ॥ भूल्यो० ॥ १ ॥
पुत्र नारि बान्धव धन कारण,
पाप कियो अधिकेरो ।
तेरो मेरो यू करि मान्यु इन में,
नहीं कोई तेरो न मेरो ॥ भूल्यो० ॥ २ ॥
तीन खड को नाथ कहावत
मदोदरी भरतेरो ।

बालपने अज्ञान संग जोबन त्रिया समाना रे ।
वृद्ध भयो सब सुधि गई अब धर्म भुलाना रे ॥ ३ ॥
गई गई अब राख रही तू समझ सियाना रे ।
बुध महाचन्द्र विचारिके निज पद नित्य रमाना रे ॥ ४ ॥

[३३३]

राग–जोगी रासा

भाई चेतन चेत सकै तो चेत अब,
नातर होगी खुआरी रे ॥ भाई ॥
लख चौरासी में भ्रमता भ्रमता
दुर्लभ नरभव धारी रे ।
आयु लई तहाँ तुच्छ पाप तैं
पंचम काल मझारी रे ॥ भाई० ॥ १ ॥

अधिक लई तब सौ बरसन की,
आयु लई अधिकारी रे ।
आधी तो सोने में खोई
तेरा धर्म ध्यान बिसरारी रे ॥ भाई० ॥२॥
बाकी रही पचास वर्ष में
तीन दशा दुखकारी रे ।
बाल अज्ञान अवस्था त्रिया रस
वृद्धपने मन हारी रे ॥ भाई० ॥३॥

रोग अरु सोक सयोग दु ख वशि,
वीतत हैं दिनसारी रे।
बाकी रही तेरी आयु किती अब,
सो तैं नांहि विचारी रे ॥ भाई० ॥४॥
इतने ही में किया जो चाहै,
सो तू कर सुखकारी रे।
नहीं फसेगा फंद बिच पंडित,
महाचन्द्र यह धारी रे ॥ भाई० ॥ ५ ॥

[३३४]

राग—सोरठ

भूल्यो रे जीव तूं पद तेरो ॥ भूल्यो० ॥
पुद्गल जड में राचिराचि कर,
कीनों भववन फेरो।
जामण मरण जरा दौं दाझ्यो,
भस्म भयो फल नरभव केरो ॥ भूल्यो० ॥ १ ॥
पुत्र नारि बान्धव धन कारण,
पाप कियो अधिकेरो ।
तेरो मेरो यूं करि मान्यु इन मे,
नहीं कोई तेरो न मेरो ॥ भूल्यो० ॥ २ ॥
तीन खण्ड को नाथ कहावत,
मदोदरी भरतेरो ।

घम घ्सा की फौज फिरी तब,
राम सोच कियो नक वसेरो ॥ मूल्यो ॥ ३ ॥
मूछि मूछि कर समझ जीव तू,
अबहूँ औसर हेरो ।
बुध महाचन्द्र आखि हित अपणू,
पीवो जिनवानी जल केरो ॥ मूल्यो ॥ ४ ॥
[३३५]

राग–जोगी रासा

मिटत नहीं मेटे सैं या तो होणहार सोइ होय ॥
माघनन्द मुनिराज बे भी गये पारखे हेत ।
म्याइ रच्यो कुम्भार-भी तू वासण घडि घडि देत ॥
मिटत० ॥ १ ॥

सीता सती बडी सतवंती जानत है सब कोय ।
ओ उदयागत टरै नहीं टाली कर्म लिखा सोही होय ॥
मिटत० ॥ २ ॥

रामचन्द्र से भर्ता जाके मंत्री बडे विशिष्ट ।
सीता सुख भुगतन नहीं पायो भावनि बडी वशिष्ट ॥
मिटत० ॥ ३ ॥

जहाँ कृष्ण जहाँ जरद कुमर भी जहाँ लोहा की तीर ।
मृग के धोके वन में मारयो बलभद्र मरण गये मीर ॥
मिटत० ॥ ४ ॥

महाचन्द्र तै नरभव पायो तू नर वडो अज्ञान।
जे सुख भुगते चावै प्रानी भजलो श्री भगवान॥
मिटत०॥ ५॥

[३३६]

राग–जोगी रासा

राग द्वेष जाके नहि मन मैं हम ऐसे के चाकर हैं॥
जो हम ऐसे के चाकर तो कर्म रिपू हम कहा करि है।
राग०॥ १॥
नहि अष्टादश दोप जिनू मे छियालीस गुण आकर है।
सप्त तत्व उपदेशक जग मे सोही हमारे ठाकुर हैं॥
राग०॥ २॥
चाकरि मे कछु फल नहि दीसत तो नर जग मे थाकि रहै।
हमरे चाकरि मे है यह फल होय जगत के ठाकुर है॥
राग०॥ ३॥
जांकी चाकरि बिन नहि कछु सुख तातैं हम सेवा करि है।
जाकै करयौं तैं हमरे नहि खोटे कर्म विपाक रहैं॥
राग०॥ ४॥
नरकादिक गति नाशि मुक्तिपद लहै जु ताहि कृपा धर है।
चद्र समान जगत मे पडित महाचद्र जिन स्तुति करि है॥
राग०॥ ५॥

[३३७]

काम कला की फौज फिरी तब,
राम खोय कियो नरक बसेरो ॥ मूल्यो ॥ ३ ॥
भूलि भूलि कर समझ जीव तू,
अबहूँ औसर हेरो ।
बुध महाचन्द्र जाणि हित अपणा,
पीवो जिनवानी रस केरो ॥ मूल्यो ॥ ४ ॥
[३३५]

राग–जोगी रासा

मिटत नहीं मेट सैं या तो होणहार सोइ होइ ॥
मानन्द मुनिराज बे जी गये पारणे हेत ।
ब्याह रच्यो कुम्हार-की सु मासण घड़ि घड़ि देत ॥
मिटत० ॥ १ ॥

सीता सती बड़ी सतवंती जानत है सब कोय ।
जो पदयागत टले नहीं टारी कर्म लिखा सादी होय ॥
मिटत० ॥ २ ॥

रामचन्द्र से भर्ता जाके मंत्री बड़े विशिष्ट ।
सीता सुख भुगतन नहीं पायो मावलि बड़ी बलिष्ट ॥
मिटत० ॥ ३ ॥

कहां कृष्ण कहां जरद कुमर जी कहां खोटा की तीर ।
मृग के धोके बन में मारया बलभद्र भरण गये नीर ॥
मिटत० ॥ ४ ॥

भागचन्द

कविवर भागचन्द १९ वीं शताब्दी के विद्वान् थे। इनका संस्कृत एव हिन्दी दोनों पर एकसा अधिकार था। ये ईसागढ (ग्वालियर) के रहने वाले थे। इनकी अब तक ६ रचनायें प्राप्त हो चुकी है जिसमें उपदेशसिद्धान्तरत्नमाला भाषा, प्रमाणपरीक्षा भाषा, नेमिनाथपुराण भाषा, अमितिगतिश्रावकाचार भाषा के नाम उल्लेखनीय हैं। ये सभी कृतिया सवत् १९०७ से १९१२ तक लिखी गई है जिससे ज्ञात होता है उनके वह साहित्यिक जीवन का स्वर्ण युग था।

भागचन्द जी उच्चविचारक एव आत्म चिन्तन करने वाले विद्वान् थे। पदों से आत्मा एव परमात्मा के सम्बन्ध में उनके सुलझे

राग-सोरठ

देखो पुद्गल का परिवारा
जामें चेतन है इक न्यारा ॥ देखो० ॥
स्पर्शन रसना घ्राण नेत्र पुनि
श्रवण पंच यह-सारा ॥
स्पर्श रस पुनि गंध वर्ण
स्वर यह इनका विषयारा ॥ देखो० ॥ १ ॥
क्षुधा तृषा अर रागद्वेष रुज
सप्त धातु दुख कारा ॥
बादर सूक्ष्म स्कंध अणु आदिक
मूर्ति मई निरधारा ॥ देखो० ॥ २ ॥
काय वचन मन स्वासोच्छ्वास जु,
थावर त्रस करि डारा ॥
बुध महाचन्द्र चेतकरि निशदिन
तजि पुद्गल पतियारा ॥ देखो ॥ ३ ॥

[३३८]

भागचन्द

कविवर भागचन्द १९ वीं शताब्दी के विद्वान् थे। इनका संस्कृत एव हिन्दी दोनों पर एकसा अधिकार था। ये ईसागढ (ग्वालियर) के रहने वाले थे। इनकी अब तक ६ रचनायें प्राप्त हो चुकी है जिसमें उपदेशसिद्धान्तरत्नमाला भाषा, प्रमाणपरीक्षा भाषा, नेमिनाथपुराण भाषा, अमितिगतिश्रावकाचार भाषा के नाम उल्लेखनीय हैं। ये सभी कृतियां सवत् १९०७ से १९१३ तक लिखी गई है जिससे ज्ञात होता है उनके वह साहित्यिक जीवन का स्वर्ण युग था।

भागचन्द जी उच्चविचारक एव आत्म चिन्तन करने वाले विद्वान् थे। पदों से आत्मा एव परमात्मा के सम्बन्ध में उनके सुलझे

हुए विचारों का पता चल सकता है। 'सुमर सदा मन आतमराम' पद से इनके आत्म चिन्तन का पता चल सकता है। 'जब आतम अनुभव आवे तब और कछु न सुहावें' इनके एकान्त चित्त रहने के लक्षण है। इन के अब तक ८८ पद उपलब्ध हो चुके हैं जो अभी अप्रकाशित है।

राग–ईमन

महिमा है अगम जिनागम की ॥
जाहि सुनत जड भिन्न पिछानी,
हम चिन्मूरति आतम की ॥ महिमा० ॥ १ ॥
रागादिक दुखकारन जानें,
त्याग बुद्धि दीनी भ्रमकी ॥
ज्ञान ज्योति जागी घट अन्तर,
रुचि वाढी पुनि शम दम की ॥ महिमा० ॥ २ ॥
कर्म वन्ध की भई निरजरा,
कारण परम्परा क्रम की ॥
भागचन्द शिव लालच लागो,
पहुँच नहीं है जहा जम की ॥ महिमा० ॥ ३ ॥

[३३६]

राग–विलावल

सुमर सदा मन आतमराम, सुमर सदा मन आतमराम ॥
स्वजन कुटुम्बी जन तू पोखे, तिनको होय सदैव गुलाम ।
सो तो हैं स्वारथ के साथी, अन्तकाल नहि आवत काम ॥
सुमर० ॥ १ ॥
जिमि मरीचिका मे मृग भटके, परत सो जब ग्रीपम धाम ।
तैसे तू भवमाहीं भटके धरत न इक छिनहू विसराम ॥
सुमर० ॥ २ ॥

करत न ग्लानी अब भोगन में धरत न वीतराग परिनाम।
फिर किमि नरकमाहिं दुख सहसी जहाँ सुख लेश न आठौं जाम।
सुमर० ॥ ३ ॥

तातैं आकुलता अब तजिके थिर है बैठो अपने धाम।
भागचन्द वसि ज्ञान नगर में तजि रागादिक ठग सब ग्राम ॥
सुमर० ॥ ४ ॥
[३४०]

राग-चर्चरी

सांची तो गंगा यह वीतराग वानी।
अविच्छिन्न धारा निज धर्म की कहानी ॥
सांची० ॥

जामें अति ही विमल अगाध ज्ञान पानी।
जहाँ नहीं संशयादि पंक की निशानी ॥
सांची० ॥ १ ॥

सप्त भंग जहँ तरंग उछलत सुखदानी।
संत चित मरालवृन्द रमैं नित्य ज्ञानी ॥
सांची० ॥ २ ॥

जाके अवगाहन तैं शुद्ध होय प्रानी।
भागचन्द निहचै घटमांहि या प्रमानी ॥
सांची० ॥ ३ ॥
[३४१]

राग–मांढ

जब आतम अनुभव आवै, तब और कछु ना सुहावै।

रस नीरस हो जात ततछिण, अच्छ विषय नहीं भावै ॥१॥

गोष्ठी कथा कुतूहल विघटे, पुद्गल प्रीति नशावै ॥२॥

राग दोष जुग चपल पक्षयुत, मनपक्षी मर जावै ॥३॥

ज्ञानानन्द सुधारस उमगै, घट अन्तर न समावै ॥४॥

'भागचन्द' ऐसे अनुभव को हाथ जोरि शिर नावै ॥५॥

[३४२]

राग–सारंग

जीव ! तू भ्रमत सदीव अकेला, सग साथी कोई नहीं तेरा।

अपना सुख दुख आप हि भुगतै, होत कुटुम्ब न भेला।

स्वार्थ भयैं सब बिछुरि जात हैं, विघट जात ज्यों मेला ॥१॥

रक्षक कोई न पूरन ह्वै जब, आयु अन्त की बेला।

फूटत पारि बधत नहीं जैसे, दुद्धर जल को ठेला ॥२॥

तन धन जीवन विनशि जात ज्यों, इन्द्र जाल का खेला।

'भागचन्द' इमि लख करि भाई, हो सतगुरु का चेला ॥३॥

[३४३]

करत न ग्लानी अब मागन मैं, धरत न वीतराग परिनाम।
फिर किमि नरकमाहिं दुख सहसी जहां सुख लेश न आठौं जाम।
सुमर० ॥ ३ ॥

तातैं आकुलता अब तजिके थिर ह्वै बैठो अपने धाम।
भागचन्द वसि ज्ञान नगर में तजि रागादिक ठग सब ग्राम ॥
सुमर० ॥ ४ ॥
[३४०]

राग-चर्चरी

सांची तो गंगा यह वीतराग वानी।
अविच्छिन्न धारा निज धर्म की कहानी ॥
सांची० ॥

जामें अति ही विमल अगाध ज्ञान पानी।
जहां नहीं संशयादि पंक की निशानी ॥
सांची० ॥ १ ॥

सप्त भंग जहं तरंग उछलत सुखदानी।
संत चित मरालवृन्द रमैं नित्य ज्ञानी ॥
सांची ॥ २ ॥

जाके अवगाहन तैं शुद्ध होय प्रानी।
'भागचन्द' निहचै घटमांहि या प्रमानी ॥
सांची ॥ ३ ॥
[३४१]

राग—सोरठ

जे दिन तुम विवेक बिन खोये ॥

मोह वारुणी पी अनादि तैं,
पर पद में चिर सोये ।
सुख करड चित पिंड आप पद,
गुन अनत नहिं जोये ॥ जे दिन० ॥ १ ॥

होय बहिर्मुख ठानी राग रुख,
कर्म बीज बहु बोये ।
तसु फल सुख दुख सामग्री लखि,
चित में हरषे रोये ॥ जे दिन० ॥ २ ॥

धवल ध्यान शुचि सलिल पूरतें,
आस्रव मल नहिं धोये ।
पर द्रव्यनि की चाह न रोकी,
विविध परिग्रह ढोये ॥ जे दिन० ॥ ३ ॥

अब निज मे निज नियत तहा,
निज परिनाम समोये ।
यह शिव मारग समरस सागर,
भागचन्द हित तोये ॥ जे दिन० ॥ ४ ॥

राग—बसन्त

सन्त निरंतर चिंतत ऐसैं
आतमरूप अबाधित ज्ञानी ॥

रोगादिक तो देहाश्रित हैं,
इनतैं होत न मेरी हानी ।
दहन दहत ज्यों दहन न तदगत,
गगन दहन ताकी विधि ठानी ॥ १ ॥

वरणादिक विकार पुद्गल के
इनमैं नहिं चैतन्य निशानी ।
यद्यपि एक क्षेत्र अवगाही
तद्यपि लक्षण भिन्न पिछानी ॥ २ ॥

मैं सर्वांग पूर्ण ज्ञायक रस
लवण खिल्लवत लीला ठानी ।
मिलो निराकुल स्वाद न यावत
तावत परपरनति हित मानी ॥ ३ ॥

भागचन्द्र निरद्वन्द निरामय,
मूरति निश्चय सिद्धसमानी ।
नित अकलंक अवंक शंक बिन
निर्मल पंक बिना जिमि पानी ॥ ४ ॥

[१४४]

राग—सोरठ

जे दिन तुम विवेक विन खोये ॥

मोह वारुणी पी अनादि तैं,
पर पद मे चिर सोये ।
सुख करड चित पिंड आप पद,
गुन अनत नहि जोये ॥ जे दिन० ॥ १ ॥

होय बहिर्मुख ठानी राग रुख,
कर्म बीज बहु बोये ।
तसु फल सुख दुख सामग्री लखि,
चित में हरपे रोये ॥ जे दिन० ॥ २ ॥

धवल ध्यान शुचि सलिल पूरतें,
आस्रव मल नहि धोये ।
पर द्रव्यनि की चाह न रोकी,
विविध परिग्रह ढोये ॥ जे दिन० ॥ ३ ॥

अव निज मे निज नियत तहां,
निज परिनाम समोये ।
यह शिव मारग समरस सागर,
भागचन्द हित तोये ॥ जे दिन० ॥ ४ ॥

[३४५]

राग–बसन्त

संत निरंतर चिंतत ऐसैं
आतमरूप अबाधित ज्ञानी ॥

रागादिक तो देहाश्रित हैं,
इनतैं होत न मेरी हानी ।
दहन दहत ज्यों दहन न तदगत,
गगन दहन ताकी विधि ठानी ॥ १ ॥

वरणादिक विकार पुद्गल के
इनमें नहिं चैतन्य निशानी ।
यद्यपि एक क्षेत्र अवगाही
तद्यपि लक्षण भिन्न पिछानी ॥ २ ॥

मैं सर्वांग पूर्ण ज्ञायक रस
लवण खिल्लवत लीला ठानी ।
मिलो निराकुल स्वाद न यावत
तावत परपरनति हित मानी ॥ ३ ॥

भागचन्द्र निरद्वन्द निरामय,
मूरति निश्चय सिद्धसमानी ।
नित अकलंक अवंक शंक बिन
निर्मल पंक बिना जिमि पानी ॥ ४ ॥

विविध कवियों के पद

इस अध्याय के अन्तर्गत टोडर, शुभचन्द्र, मनराम विद्यासागर, साहिबराय, भ० सुरेन्द्र कीर्ति, देवाब्रह्म, बिहारी- दास, रेखराज, हीराचन्द्र, उदयराम, माणकचन्द, धर्मपाल, देवीदास, जिनहर्ष, सहजराम आदि कवियों के ५५ पद दिये गये हैं। अधिकाश जैन कवियों ने अच्छी सख्या में पद लिखे है। एक तो उन सबको एक ही पुस्तक में देना सम्भव नहीं था इसके अतिरिक्त इनमें से अधिकाश कवियों का कोई विशेष परिचय भी उपलब्ध नहीं होता इसलिए इस अध्याय के अन्तगत इन कवियों के पद थोडे थोडे उदाहरण के रूप में दिये गये हैं। उनसे पाठकों एव विद्वानों को जैन कवियों की विद्वत्ता एव हिन्दी प्रेम का पता चल सकता है। इनमें भी कुछ पद

राग—मल्हार

अरे हो अज्ञानी तूने कठिन मनुष भव पायो।
लोचन रहित मनुष के कर में
क्यों बटेर सग आयो ॥ अरे हो० ॥ १ ॥
सो तू खोवत विषयन माही
धरम नहीं चित लाया ॥ अरे हो० ॥ २ ॥
भागचन्द उपदेश मान अब
जो श्रीगुरु फरमायो ॥ अरे हो० ॥ ३ ॥
[२४६]

विविध कवियों के पद

इस अध्याय के अन्तगत टोडर, शुभचन्द्र, मनराम विद्यासागर, साहिबराय, भ० सुरेन्द्र कीर्ति, देवाब्रह्म, बिहारी- दास, रेखराज, हीराचन्द्र, उदयराम, माणकचन्द, धर्मपाल, देवीदास, जिनहर्ष, सहजराम आदि कवियों के ५५ पद दिये गये हैं। अधिकाश जैन कवियों ने अच्छी सख्या में पद लिखे है। एक तो उन सबको एक ही पुस्तक में देना सम्भव नही था इसके अतिरिक्त इनमें से अधिकाश कवियों का कोई विशेष परिचय भी उपलब्ध नहीं होता इसलिए इस अध्याय के अन्तगंत इन कवियों के पद थोडे थोडे उदाहरण के रूप में दिये गये हैं। उनसे पाठकों एव विद्वानों को जैन कवियों की विद्वत्ता एव हिन्दी प्रेम का पता चल सकता है। इनमें भी कुछ पद

राग–मल्हार

अरे हो अज्ञानी तूने कठिन मनुष भव पायो।
लोचन रहित मनुष के कर में
ज्यों बटेर खग आयो ॥ अरे हो० ॥ १ ॥
सो तू खोवत विषयन माहीं
भरम नहीं चित लायो ॥ अरे हो० ॥ २ ॥
भागचन्द उपदेश मान अब
जो श्रीगुरु फरमायो ॥ अरे हो० ॥ ३ ॥
[२४६]

राग–कल्याण

तूं जीय आनि के जतन अटक्यौ,
तेरे तौ कछुव नहीं खटक्यौ ॥
तू सुजानु जडस्यौ कहि रचि रह्यौ,
चेततु क्यौ न अजान मूढमति घट २ हों भटक्यौ ॥१॥

रचि तन तात मात वनिता सग,
निमिष न कहू मटक्यौ ।
मार्जारी मीच ग्रस तन सभारी,
कीरसु धरि पटक्यौ ॥२॥

ए तेरे कवन कहा तू इनकौ,
निसि दिनु रह्यौ लपट्यौ ।
टोडर जन जीवन तुछ जग मैं,
सोचि सम्हारि विचारि ठट्ठु विघट्यौ ॥३॥

[२४७]

राग–भैरू

उठि तेरो मुख देखू नाभि जू के नंदा ।
तासे मेरे कटै ये करम के फंदा ॥
रजनी तिमर गयो किरन उद्योत भयो ।
दीजे मोकू दरस तुरत जरे फंदा ॥ उठि० ॥१॥

बहुत ही अच्छतर के हैं। मनराम का चेतन हृद पर मारी सेरी बहुत सुन्दर पद है। पेमादास ने अपने पदों में राजस्थानी भाषा का प्रयोग किया है। 'रथ थोडा कांटा घणा नरका में सुन पाई' इसका एक उदाहरण है।

राग- सारंग

कोन सखी सुध लावे, श्याम की ॥
कोन सखी सुध लावे ॥

मधुरी ध्वनि मुख-चद्र विराजित ।
राजमति गुण गावे ॥ श्याम० ॥१॥

अ ग विभूषण मनिमय मेरे ।
मनोहर माननी पावे ॥

करो कछू त त मत मेरी सजनी ।
मोहि प्राननाथ मिलावे ॥ श्याम० ॥२॥

गज-गमनी गुण-मन्दिर श्यामा ।
मनमथ मान सतावे ॥

कहा अवगुन अव दीनदयाला ।
छोरि मुगति मन भावे ॥ श्याम० ॥३॥

सब सखी मिल मन मोहन के ढिग ।
जाय कथा जु सुनावे ॥

सुनो प्रभु श्री शुभचद्र के साहिब ।
कामिनी कुल क्यो लजावे । श्याम० ॥४॥

आगिये राम कुमार सुर नर ठाडे दुवार।
तेरो मुख जोवत चकोर जैसे चंदा ॥ उठि० ॥२॥

श्रयन सुनत सुख तन की नासत दुख।
दूरि काजे नाथजी अनाथन के फंदा ॥ उठि ॥३॥

कीजे प्रभु उपगार मनकी मिटे विकार।
कमलपत्र की दिस होत जैसे मन्दा ॥ उठि ॥४॥

टोडर जनक नेम तुम ही सू लाग्यो प्रेम।
तुम्हारो ही ध्यान धरत निति बंदा ॥ उठि० ॥५॥

[३४८]

राग–नट

पेखो सखी चंद्रप्रभ मुख–चंद्र।
सहस किरण सम तन की श्राभा देखत परमानंद ॥
॥ पेखो० ॥१॥

समवसरण शुभ भूति विभूति सेव करत सव इंद्र।
महासेन–कुल–कंज दिवाकर जग गुरु जगदानंद ॥
॥ पेखो० ॥२॥

समभोहन मूरति प्रभु तेरी, मैं पायो परम मुनिंद।
श्री शुभचंद्र कहे जिनजी मोकू राखो चरन अरविंद ॥
॥ पेखो ॥३॥

[३४६]

राग- सारंग

कोन सखी सुध लावे, श्याम की ॥
कोन सखी सुध लावे ॥

मधुरी ध्वनि मुख-चद्र विराजित ।
राजमति गुण गावे ॥ श्याम० ॥१॥

अग विभूषण मनिमय मेरे ।
मनोहर माननी पावे ॥
करो कछू तत मत मेरी सजनी ।
मोहि प्राननाथ मिलावे ॥ श्याम० ॥२॥

गज-गमनी गुण-मन्दिर श्यामा ।
मनमथ मान सतावे ॥
कहा अवगुन अब दीनदयाला ।
छोरि मुगति मन भावे ॥ श्याम० ॥३॥

सब सखी मिल मन मोहन के ढिग ।
जाय कथा जु सुनावे ॥
सुनो प्रभु श्री शुभचद्र के साहिब ।
कामिनी कुल क्यो लजावे । श्याम० ॥४॥

[३५०]

राग–गुज्जरी

जपो जिन पार्श्वनाथ भव तार ॥
अश्वसेन वामा कुल मंडन बाल ब्रह्म व्रतधार ॥
जपो० ॥ १ ॥

नीलमणि सम सुन्दर सोभे बोध सुकेवलधार ।
भव कर अन्तक भ ग अतिशोभे आवागमन निवार ॥
जपो० ॥ २ ॥

जनमजरामरणु दुख निवारण तारण भवोदधिपार ।
विबुध वृंद सेवे सिरनामी, पाले पंचाचार ॥
जपो० ॥ ३ ॥

कलियुग महिमा मोटी दीसे जिनवर जगदाधार ।
मानव मनवांछित फल पावे सेवक जन मतिसार ॥
जपो० ॥ ४ ॥

सिद्ध स्वरूपी शिवपुर नायक नाथ निरंजन सार ।
शुभचंद्र कहे करुणा कर स्वामी आपो संसार पार ॥
जपो० ॥ ५ ॥

[४५१]

राग—जोगी रासा

चेतन इह घर नाही तेरो ।
घट पटादि नैनन गोचर जो नाटक पुद्गल केरो ॥ चे ॥

तात मात कामनि सुत बन्धु करम बध को घेरो।
करि है गौन आनगति को जब, को नहि आवत नेरौं ॥ चे० ॥
भ्रमत भ्रमत ससार गहनवन, कीयो आनि वसेरो ॥ चे० ॥
मिथ्या मोह उदै तै समझो, इह सदन है मेरो ॥ चे० ॥
सद्गुरु वचन जोइ घर दीपक, मिटै अनादि अ धेरो ॥ चे० ॥
असख्यात परदेस ग्यान मय, ज्यो जानहु निज मेरो ॥ चे० ॥
नाना विकलप त्यागि आपको आप आप महि हेरो ॥
ज्यो 'मनराम' अचेतन परसों सहजै होइ निवेरो ॥

[३५२]

राग–मल्हार

रे जिय जनम लाहो लेह ॥
चरण ते जिन भवन पहुचै।
दान दे कर जेह ॥ रे जिय० ॥१॥
उर सोई जामैं दया है।
अरु रुधिर कौ गेह ॥
जीभ सो जिन नांम गावै।
सास सौं करैं नेह ॥ रे जिय० ॥२॥
आंख ते जिनराज देखैं।
और आंखै खेह ॥
श्रवन तें जिन वचन सुनि सुभ।
तप तपै सो देह ॥ रे जिय० ॥३॥

सफल तन इह मांहि है है।
और मांहि न केह ॥
है सुखी मनराम ध्यानी।
कहे सद्गुरु एह ॥ रे जिय० ॥४॥
[३१३]

राग–विलावल

अखीयां आजि पवित्र भई मेरी ॥ अखीयां० ॥
निरखत वदन तिहारो जिनवर प्रमानंद विचित्र भई ॥
मेरी अखीयां० ॥१॥
आयो सु तुम दुवार आजि ही सफल भये मेरे पांव।
आजि ही सीस सफल भयो मेरो नयो आजि सु तुमकों आय ॥
मेरी अखीयां ॥२॥
सुनि बानी मधि औष हितकरणी सफल भये श्रुग कान।
आजि ही सफल भयो सुख मेरो सुमरत तव भगवान ॥
मेरी अखीयां ॥३॥
आजि ही हिरदै सफल भयो मेरौ ध्यान करत तुव नाम।
पूजित चरण तुम्हारो जिनवर सफल भये मोहि हाथ ॥
मेरी अखीयां ॥४॥
अबलग तुम मै भेद न पायो दुख पाये तिहुँ काल।
सेवग प्रभु मनराम उधारो तुम प्रभु दीन दयाल ॥
॥ मेरी अखीयां ॥५॥
[३१४]

राग–केदार

मैं तो या भव योंहि गमायो ॥
अहनिशि कनक कामिनी कारण ।
सबहिंसु वैर वढायो ॥ मैं० ॥१॥
विषयहि के फलुखाय के राच्यो ।
मोहनी में उरझायो ॥
यौवन मद थे कषाय जु बाढे ।
परत्रिया मे चित लायो ॥ मैं० ॥२॥
त्रिस सेवत दया रस छारयो ।
लोभहि मे लपटायो ॥
चक परी मोहि विद्यासागर ।
कहे जिनगुण नहीं गायो ॥ मै० ॥३॥
[३५५]

राग–मांढ

तुम साहिब मैं चेरा, मेरे प्रभु जी हो ॥
बूडत हूँ ससार कूप मैं ।
काढो मोहि सवेरा ॥ प्रभु० ॥ १ ॥
माया मिथ्या लोभ सोच पर ।
तीनूं मिलि मुझि घेरा ॥
मोह फासिका वध डारिकै ।
दीया बहुत भटभेडा ॥ प्रभु० ॥ २ ॥

सफल वन इह भांति है है।
और भांति न केह ॥
है सुखी मनराम म्यासी ।
कहै सद्गुरु यह ॥ रे जिय० ॥४॥
[३५३]

राग—विलावल

अखीयां आजि पवित्र भई मेरी ॥ अखीयां० ॥
निरखत वदन तिहारो जिनवर प्रमानंद विचित्र भई ॥
मेरी अखीयां० ॥१॥
आयो सु तुम दुवार आजि ही सफल भये मेरे पांय।
आजि ही सीस सफल भयो मेरो नयो आजि सु तुमको आय ॥
मेरी अखीयां ॥२॥
सुनि वानी भवि जीव हितकरणी सफल भये जुग श्रवन।
आजि ही सफल भयो मुख मेरो सुमरत तव भगवान ॥
मेरी अखीयां ॥३॥
आजि ही हिरदे सफल भयो मेरो ध्यान करत गुननाथ।
पूजित चरण तुम्हारे जिनवर सफल भये मोहि हाथ ॥
मेरी अखीयां ॥४॥
अवलग तुम मै भव न पायो दुख देखे तिहुँ काल।
सेवग प्रभु मनराम उबारो तुम प्रभु दीन दयाल ॥
॥ मेरी अखीयां ॥५॥
[३५४]

राग-केदार

मैं तो या भव योंहि गमायो ॥
अहनिशि कनक कामिनी कारण ।
सबहिसु वैर वढायो ॥ मैं० ॥१॥
विषयहि के फलुखाय के राच्यो ।
मोहनी में उरझायो ॥
यौवन मद थे कषाय जु वाढे ।
परत्रिया मे चित लायो ॥ मैं० ॥२॥
त्रिस सेवत दया रस छारयो ।
लोभहि मे लपटायो ॥
चक परी मोहि विद्यासागर ।
कहे जिनगुण नहीं गायो ॥ मैं० ॥३॥

[३५५]

राग-मांढ

तुम साहिव मैं चेरा, मेरे प्रभु जी हो ॥
बूडत हूँ ससार कूप मैं ।
काढो मोहि सवेरा ॥ प्रभु० ॥ १ ॥
माया मिथ्या लोभ सोच पर ।
तीनू मिलि मुझि घेरा ॥
मोह फासिका वध डारिकै ।
दीया वहुत भटभेडा ॥ प्रभु० ॥ २ ॥

गोती नाती जग के साथी ।
स्वारथ है सुख केरा ॥
जम की तपति पड़ै जब तन पर ।
कोई न आवै नेरा ॥ प्रभु ॥ ३ ॥
मैं सेया बहु देव जगत के ।
फंद कट्या नहिं मेरा ॥
पर उपगारी सब जीवन का ।
नाम सुण्या मैं तेरा ॥ प्रभु० ॥ ४ ॥
ऐसा सुजश सुण्या मैं जब ही ।
तुम चरणन कूं हेरा ॥
साहिब' ऐसी कृपा कीज्ये ।
फेर न ल्यो भव फेरा ॥ प्रभु० ॥ ५ ॥

[३१६]

राग–होरी

समझि औसर पायो रे जिया ॥
तैं परकूं करि मान्यों अपनो तैं ।
आपा कूं विसरायो रे ॥ जिया० ॥१॥
गत्त विधि फांसि मोह की लागी ।
इन्द्रिय सुख ललचायो रे ॥ जिया ॥२॥
भ्रमत अनादि गयो ऐसेही ।
अजहूं छोर (ओर) न आयो रे ॥ जिया ॥३॥

करत फिरत परकी चिंता तू ।
नाहक जन्म गमायो रे ॥ जिया० ॥४॥
जिन साहिब की वांणी उरधरि ।
शुद्ध मारग दरसायो रे ॥ जिया० ॥५॥

[३५७]

राग—सोरठ

जग मैं कोई नही मितां तेरा ॥
तू समझि सोचकर देख सयाने ।
तू तो फिरत अकेला ॥ जग मैं० ॥१॥
सुपनेदा ससार वण्या है ।
हटवाडेदा मेला ॥
विनसि जाय अंजुली का जल ज्यू ।
तू तो गर्व गहेला ॥ जग मैं० ॥२॥
रस दा मांता कुमति कुमाता ।
मोह लोभ करि फैला ॥
ये तेरे सवही दुखदायी ।
भूलि गया निज गैला ॥ जग मैं० ॥३॥
अव तू चेत सभालि ज्ञान करि ।
फिरि नै मिलै यह वेला ॥

जिनवाणी साहिब उर धरि करि।
पावो मुक्ति महेला ॥ जग मैं ॥४॥

[३४८]

राग—जोगी रासा

जनमें नाभि कुमार।
बधाई जग मैं बाजही है॥
मरुदेवी के आंगन माही।
गावत मंगलाचार ॥ बधाई० ॥१॥

इन्द्राणी मिलि चौक पुरावत।
भर भर मोतियन थाल॥
तांडव नृत्य हरी जहां कीनों।
आनंद उमंग अपार ॥ बधाई० ॥२॥

नरनारी पुरके आंगन माही।
चौपत चांदरचार ॥
नीर सु अगर अरगंजा बहु विधि।
छिड़कत घर घर द्वार। बधाई० ॥३।

भरत गज रतन पटल पाटंबर।
आवक जन कुंसार॥
इहि विधि हर्ष भयो त्रिभुवन मैं।
कहत न आवत पार ॥ बधाई ॥४॥

कारण स्वर्ग मुक्ति को है यह ।

सब जीवन हितकार ॥

'साहिव' चरण लागि नित सेवों ।

ज्यों उतरो भवपार ॥ वधाई० ॥५॥

[३५९]

राग–सोरठ

भोर भयो, उठ जागो, मनुवा, साहब नाम सभारो ॥
सूतां सूतां रैन विहानी, अब तुम नींद निवारो ।
मगलकारी अमृतवेला, थिर चित काज सुधारो ॥
भोर भयो, उठ जागो मनुवा ॥
खिन भर जो तू याय करैगो, सुख निपजैगो सारो ।
वेला वीत्या है, पछतावै, क्यू कर काज सुधारो ॥
भोर भयो, उठ जागो मनुवा ॥
घर व्यापारे दिवस वितायो, राते नींद गमायो ।
इन वेला निधि चारित आदर, 'ज्ञानानन्द' रमायो ॥
भोर भयो, उठ जागो मनुवा ॥

[३६०]

राग–जोगी रासा

अवधू, सूता, क्या इस मठ में !
इस मठ का है कवन भरोसा, पड जावे चटपट में ।
अवधू, सूता० ॥

छिनमें ताता छिनमें शीतल, राग शोक बहु घट में ।
अवधू सूतां ॥
पानी किनारे मठ का वासा कवन विश्वास ये तट में ।
अवधू सूतां० ॥
सूता सूता काल गमायो अज हुं न जाग्यो तू घट में ।
अवधू सूतां ॥
घरटी फेरी आटो खायो खरची न बांधी वट में ।
अवधू सूतां ॥
इतनी सुनि निधि चारित मिलकर ज्ञानानन्द आये घटमें ।
अवधू सूतां० ॥
[३६१]

राग–जोगी रासा

क्योंकर महल बनावे, पियारे ।
पांच भूमि का महल बनाया चित्रित रंग रंगाये पियारे ।
क्योंकर० ॥
गोखें बैठो नाटक निरखे तरुणी-रस ललचावे ।
एक दिन जंगल होगा डेरा, नहिं तुझ संग कछु आवे पियारे ।
क्योंकर० ॥
तीर्थंकर गणधर बल चक्री, जंगलवास रहावे ।
तेहना पण मन्दिर नहि दीसे थारी कवन चलावे ॥
क्योंकर० ॥

हरि हर नारद परमुख चल गये, तू क्यों काल वितावै ।
तिनतैं नव निधि चारित आदर, 'ज्ञानानन्द' रमावै पियारे ॥
क्योंकर० ॥

[३६२]

राग जोगी रासा

प्यारे, काहे कूँ ललचाय ।
या दुनियाँ का देख तमासा, देखत ही सकुचाय ।
प्यारे० ॥

मेरी मेरी करत बाउरे, फिरे जीउ अकुलाय ।
पलक एक में बहुरि न देखे, जल बुंद की न्याय ॥
प्यारे० ॥

कोटि विकल्प व्याधि की वेदन लही शुद्ध लपटाय ।
ज्ञान-कुसुम की सेज न पाई, रहे अघाय अघाय ॥
प्यारे० ॥

किया दौर चहूँ ओर ओर से, मृग तृष्णा चित लाय ।
प्यास बुझावन बूंद न पाई, यौं ही जनम गमाय ॥
प्यारे० ॥

सुधा-सरोवर है या घट में, जिसते सब दुख जाय ।
'विनय' कहे गुरुदेव दिखावे, जो लाऊँ दिलठाय ॥
प्यारे० ॥

[३६३]

राग जिलो

चेतन ! अब मोहि दरशन दीजे ।
तुम दर्शन शिव-सुख पामीजे तुम दरशन भव छीजे ॥
चेतन० ॥

तुम कारन संयम तप किरिया कहो कहां लौं कीजे ।
तुम दरशन बिनु सब या झूठी अन्तरचित्त न भीजे ॥
चेतन० ॥

क्रिया मूढमति कहे जन कोई ज्ञान और को प्यारो ।
मिलत भावरस दोउ न चाखे तू दोनों तें न्यारो ॥
चेतन० ॥

सब में है और सब में नाही पूरन रूप अकेलो ।
आप स्वभावे वे किम रमतो तूं गुरु अरु तूं चेलो ॥
चेतन० ॥

अकल अलख तू प्रभु सब रूपी तू अपनी गति जान ।
अगमरूप आगम अनुसारें सेवक सुजस बखान ॥
चेतन० ॥

[२६४]

रागजिलो

राम कहो रहमान कहो कोउ, कान कहो महादेव री ।
पारसनाथ कहो कोई ब्रह्मा सकल ब्रह्म स्वयमेव री ॥

भाजन भेद कहावत नाना, एक मृतिका रूप री।
तैसे खण्ड कल्पनारोपित, आप अखण्ड सरूप री॥
राम कहो० ॥

निज पद रमे राम सो कहिए, रहिम करे रहिमान री।
कर्षे करम कान सो कहिए, महादेव निर्वाण री॥
राम कहो० ॥

परसे रूप पारस सो कहिए, ब्रह्म चिन्हे सो ब्रह्म री।
इह विधि साधो आप 'आनन्दघन,' चेतनमय निष्कर्म री॥
राम कहो० ॥

[३६५]

राग-केदारो

विरथा जनम गमायो, मूरख।

रंचक सुखरस वश होय चेतन, अपना मूल नसायो।
पाच मिथ्यात धार तू अजहूँ, साँच भेद नहिं पायो॥
विरथा० ॥

कनक-कामिनी आस एहथी, नेह निरन्तर लायो।
ताहू थी तूँ फिरत सुरानो, कनक बीज मनु खायो॥
विरथा० ॥

जनम जरा मरणादिक दुख मे, काल अनन्त गमायो।
अरहट घटिका जिम, कहो याको, अन्त अजहुँ नआयो॥
विरथा० ॥

राग जिलौ

चेतन ! अब मोहि दर्शन दीजे ।
तुम दर्शन शिव-सुख पामीजे तुम दर्शन भव छीजे ॥
चेतन० ॥

तुम कारन संयम तप किरिया कहो कहां लौं कीजे ।
तुम दर्शन बिनु सब या झूठी अन्तरचित्त न भीजे ॥
चेतन० ॥

क्रिया मूढमति कहे जन कोई ज्ञान और को प्यारो ।
मिलत भावरस दोउ न चार्खे तू दोनों तें न्यारो ॥
चेतन० ॥

सब में है और सब में नाहीं पूरन रूप अकेलो ।
आप स्वभावे वे किम रमतो तूं गुरु अरु तूं चेलो ॥
चेतन० ॥

अकल अलख तू प्रभु सब रूपी तू अपनी गति जाने ।
अगमरूप आगम अनुसारें, सेवक सुजस बखाने ॥
चेतन० ॥

[२६४]

रागजिलौ

राम कहो रहमान कहो कोउ, कान कहो महादेव री ।
पारसनाथ कहो कोई ब्रह्मा सकल ब्रह्म स्वयमेव री ॥

भाजन भेद कहावत नाना, एक मृतिका रूप री।
तैसे खण्ड कल्पनारोपित, आप अखण्ड सरूप री॥
राम कहो० ॥
निज पद रमे राम सो कहिए, रहिम करे रहिमान री।
कर्षे करम कान सो कहिए, महादेव निर्वाण री॥
राम कहो० ॥
परसे रूप पारस सो कहिए, ब्रह्म चिन्हे सो ब्रह्म री।
इह विधि साधो आप 'आनन्दघन,' चेतनमय निष्कर्म री॥
राम कहो० ॥
[३६५]

राग-केदारो

विरथा जनम गमायो, मूरख।
रञ्चक सुखरस वश होय चेतन, अपना मूल नसायो।
पाच मिथ्यात धार तू अजहूँ, साँच भेद नहिं पायो॥
विरथा० ॥
कनक-कामिनी आस एहथी, नेह निरन्तर लायो।
ताहू थी तूँ फिरत सुरानो, कनक बीज मनु खायो॥
विरथा० ॥
जनम जरा मरणादिक दुख मे, काल अनन्त गमायो।
अरहट घटिका जिम, कहो याको, अन्त अजहुँ नविआयो॥
विरथा० ॥

लख चौरासी पहरया चोलना नव नव रूप बनायो।
विन समकित सुधारस चाख्या गिणती कोउ न गिणायो॥

विरथा॥

एते पर नवि मानत मूरख ए अचरिज चित आयो।
चिदानन्द ते धन्य जगत में जिण प्रभु सूँ मन लायो॥

विरथा०॥

[२६६]

राग–कनडी

अटके नयनां तिय चरनां हां हां हा मेरी चिकनागरी॥
सरि बहु राग तिय तमु निरख्यो।
इक चिति बरते चढ़े जिम नटके॥
अ ग अ ग सकल उपमा ते पोसयो।
अमर अमृत रस गटके॥ अटके०॥१॥
तृप्ति न होत रूप रस पीवत।
लालच लगे कुच तटके॥
नवल नवीली मृग दृग निरखत।
स्वारथ नहीं चाहां क्यौन झटके॥अटके०॥२॥
ऐसे करत करत नहिं चूरण।
सेइ सेइ धरि अनन्त भव भटके॥
परामुख मरिसे इन संगि दुखपायो।
तामें संख्या मांहि इम चटके॥ अटके॥३॥

जिनगुरु आगम सीख अब उर धरि करि।
कीर्त्ति सुरेंद्र त्यजि शिवतिय सुख सटकै॥
जिनवर चरन निरखि इन नयननं सूं।
छाडत नाही जिम नव तिय घूंघटके॥ अटके० ॥४॥

[३६७]

राग–मालकोश

इस भव का नां बिसवासा, अणी वे॥
बिजरी ज्यु तन छण मैं नासै धन ज्यु जलहु पतासा।
अणी वे इस० ॥१॥
मात पिता सुत बंधु सखीजन मित्र हितू गृहवासा।
पूरब पुन्य करि सब मिलिया सांझ अरुण सम भासा॥
अणी वे इस० ॥२॥
यौवन पाय तू मद छकि है सो मेघ घटा ज्यु छिन नासा।
नारी रमिओ सब जग चाहै ज्यु गज करनं चलासा॥
अणी वे इस० ॥३॥
स्वारथ के सब गरजी जिनकी तू नित्य करत दिलासा।
आतम हित कूं अब मन ल्यावो मेटि सबै मन सांसा॥
अणी वे इस० ॥४॥
मरन जरा तुझि जोलग नाहीं सन्मुख है दुखरासा।
कीर्त्ति सुरेन्द्र करि निज हितकारिज जिनवर ध्यानं हुलासा॥
अणी वे इस ॥५॥

[३६८]

लख चौरासी पहरया चोलना नव नव रूप बनायो।
विन समकित सुधारस चाखया गिणती कोउ न गिणायो॥
विरथा॥

एत पर नमि मानव मूरख ए चरित्र चित आयो।
चिदानन्द ते धन्य जगत में जिण प्रभु सूं मन लायो॥
विरथा०॥

[२६६]

राग—कनडी

अटके नयनां तिय चरनां हां हां हा मेरी विकलपरी॥
धरि बहु राग तिय तनु निरख्यो।
इक चित्ति करत चाहे सिम मटके॥
अ ग अ ग सकल उपमां वे पोख्यो।
भंमर अमृत रस गटके॥ अटके०॥१॥
तृप्ति न होत रूप रस पीवत।
लालच लगे कुच तटके॥
नवल नवीली मृग दृग निरखत।
त्यजत नहीं चाहों क्यौन झटके॥ अटके०॥२॥
ऐसे करत करत नाहि छूटत।
सेइ सेइ करि अनन्त भव भटके॥
धरामुख सरिसे इन संगि दुखपायो।
जाकी संख्या नाहि इम चटके॥ अटके॥३॥

सो इक इक इंद्री वसि करी रे, सोही सुरगा मे जाइ।
ज्यो पांचु इन्द्री वसि करी रे, सो तो मुकत्या मे जाइ ॥
चचल० ॥७॥

इन्द्री के जीत्या विना रे, सुख नही उपज हो रच।
देवाब्रह्म असै भनै हो, मन वच जानु हो सच ॥
चचल० ॥८॥

[३६६]

राग—ढाल होली में

चेतन सुमति सखी मिल।
दोनों खेलो प्रीतम होरी जी ॥
समकित व्रत कौ चौक वणावौ।
समता नीर भरावो जी ॥
क्रोध मांन की करो पोटली।
तो मिथ्या दोप भगावो जी ॥ चेतन० ॥१॥
ग्यान ध्यान की ल्यौ पिचकारी।
तौ खोटा भाव छुडावो जी ॥
आठ करम को चूरण करि कै।
तौ कुमति गुलाल उड़ावो जी ॥ चेतन० ॥२॥
जीव दया का गीत राग सुणि।
सजम भाव बधावो जी ॥
वाजा सत्य वचन ये बोलो।
तौ केवल वाणी गावो जी ॥ चेतन० ॥३॥

राग–ख्याल तमाशा

रस थोडा कडा घणा नरका मैं दुख पाइ चंचल जीवडा रे।
विषै ये बडे दुखदाइ ॥

कजली वन मैं गज भयो रे सुकि मद रह्यो रे लुभाइ।
कागद कुंजरी कारणै रे पडीयो खाडा रे मांहि ॥
चंचल० ॥१॥

मीन समद मैं तू भयो रे करतो केलि अपार।
रसना इन्द्री परवस रे मुख मछ परि धाइ ॥
चंचल० ॥२॥

कंवल माहि भंवरो हुवो रे घाण इन्द्री कै सुभाव।
सूरज असत समै मुदि गयो रे सोची तम्या रे प्राण ॥
चंचल० ॥३॥

पतंग दीप मैं तुम भयो रे चख्यु इन्द्री कै सुभाव।
सोची भक्ति भसमी हुई रे अधिको लोभ लुभाइ ॥
चंचल० ॥४॥

वन मैं मृग सरप तू भयो रे कांनां सुणतो रे नांहि।
बाण बधिक सप सुणीयो र धरहर कांप रे काइ ॥
चंचल० ॥५॥

ज्यो इक इक इंद्री मुकलाई रे, भो भो भरमै अधिकाइ।
ज्यो पांचु इन्द्री मुकलाई रे सो वा नरकां मैं जाइ ॥
चंचल० ॥६॥

सो इक इक इद्री वसि करी रे, सोही सुरगा मै जाइ।
ज्यो पांचु इन्द्री वसि करी रे, सो तो मुकत्या मै जाइ ॥
चचल० ॥७॥

इन्द्री के जीत्या विना रे, सुख नही उपज हो रच।
देवाब्रह्म अैसै भनै हो, मन वच जानु हो सच ॥
चचल० ॥८॥

[३६६]

राग–ढाल होली में

चेतन सुमति सखी मिल।
दोनों खेलो प्रीतम होरी जी ॥
समकित व्रत कौ चौक वणावौ।
समता नीर भरावो जी ॥
क्रोध मांन की करो पोटली।
तो मिथ्या दोष भगावो जी ॥ चेतन० ॥१॥
ग्यान ध्यान की ल्यौ पिचकारी।
तौ खोटा भाव छुडावो जी ॥
आठ करम को चूरण करि कै।
तौ कुमति गुलाल उड़ावो जी ॥ चेतन० ॥२॥
जीव दया का गीत राग सुणि।
सजम भाव वधावो जी ॥
वाजा सत्य वचन ये वोलो।
तौ केवल वाणी गाव्रो जी ॥ चेतन० ॥३॥

दान सील सो मेया कीन्ही ।
तपस्या करी मिठाई जी ॥
पूजाप्रम या रवि पाई है ।
तीं मन वच काया धोई जी ॥ वंदन० ॥४॥
[३७०]

राग–मारु

करौं आरती आतम देवा ।
गुण परजाय अनन्त अभेवा ॥ करू० ॥ १ ॥
जामैं सब जग यह जग मांही ।
बसत जगत मैं जग सम नाही ॥ करू० ॥ २ ॥
ब्रह्मा विष्णु महेस्वर ध्यावे ।
साधु सकल हिइ के गुण गावे ॥ करू० ॥ ३ ॥
बिन जाने जिय चिर भव डोले ।
जिहि जाने छिन सिव-पट खोले ॥ करू० ॥ ४ ॥
व्रती अव्रती बिध व्योहारा ।
सो तिहुँ काल करम सों न्यारा ॥ करू० ॥ ५ ॥
गुरु शिष्य उभै बचन करि कहिये ।
बचनातीत दसा तिस लहिये ॥ करू० ॥ ६ ॥
सुपर भेद को खेद न जेवा ।
आप आप मैं आप सिवेरा ॥ करू ॥ ७ ॥

सो परमातम पद सुखदाता।
हौह बिहारीदास विख्याता ॥ करू० ॥ ८ ॥

[३७१]

राग–परज

सखी म्हानै दीज्यों नेमि बताय ॥
उभी राजुल अरज करै छै।
नेमि जी कूं सेऊ निहार ॥
सखी० ॥१॥

सावली सूरति मोहनी मूरति।
गलि मोतियन कौ हार ॥
सखी० ॥२॥

समुद्रविजै सिवादेवी कों नदन।
जादू – कुल – सिरदार ॥
सखी० ॥३॥

या विनती सुणि रेखा की।
आवगमन निवार ॥
सखी० ॥४॥

[३७२]

राग–सारंग

हे काहूँ की मैं वरजी ना रहूँ।
सग जाऊंगी नेमि कुवार के ॥
सब उपाय करता राखण कों।
मो मन और विचार ॥

हूँ रंग राची नमि पिया के।
छांडि संसार असार ॥ हे मांई ॥ १ ॥

सुनियो री म्हारी सखी हे सहेली।
मात पिता परिवार ॥ हे माईं० ॥ २ ॥

कल न पड़त घड़ी पल छिन मोहू।
सबसे कहत पुकार ॥
रक्षा तू ही हितू हमारो।
पहुंचावो गिरनार ॥ हे माईं ॥ ३ ॥
[३७२]

राग—सारग

हेरी मोहि तजि क्यों गये नमि प्यारे ॥

चौसी चूक परी कहा हम सू
प्रीति छांडि भये न्यारे ॥ हरी मोहि० ॥ १ ॥

कैसें करि धीर धरु अब सजनी
मरि भरि नैन निहारे।
आज्ञा दो हम जाय प्रभू पै,
पाइन परैं हों विहारैं ॥ हरी मोहि० ॥ २ ॥

मूंठो दोष दियो पशुवन सिर
मन बैराग्य विचारैं।

करम गति सूक्ष्म गति रेखा,
क्यों हो टरत न टारै ॥ हेरी मोहि० ॥ ३ ॥

[३७४]

राग–काफी होरी

जाऊंगी गढ गिरनारि सखीरी,
अपने पिया से खेलूंगी होरी ॥

समकित केसर अबीर अरगजा,
ज्ञान गुलाल उदार ॥
सप्त तत्व की भरि पिचकारी,
शील सलिल जल धार ॥ सखी० ॥ १ ॥
दश विधि धर्म को मांदल गुंजत,
गुण गण ताल अपार ॥
अशुभ कर्म की होरी वनाई,
ध्यान दियो अंगार ॥ सखी० ॥ २ ॥
इन विधि होरी खेलत राजुल,
पायो स्वर्ग द्वार ॥
कहत हीराचन्द होली खेलो,
महिमा अगम अपार ॥ सखी० ॥ ३ ॥

[३७५]

हूँ रंग राची नमि पिया के।
खस्ति संसार असार ॥ है काई ॥ १ ॥

सुनियो री म्हारी सखी है सहेली।
मात पिता परिवार ॥ है काईं० ॥ २ ॥

कछ न पकत घडी पल छिन मोकू।
सबसे कहत पुकार ॥
रखा तू ही हितू हमारो।
पहुचावो गिरनार ॥ है काईं ॥ ३ ॥

[३७३]

राग—सारग

हेरी मोहि तजि क्यों गये नेमि प्यारे ॥

थैसी चूक परी कहा हम सू
प्रीति छाँडि भये न्यारे ॥ हरी मोहि० ॥ १ ॥

कैसे करि धीर धरु अब सजनी
भरि भरि नैन निहारे।
आज्ञा घो हम आज प्रभू पै
पाइन पर्रे हौं विहारे ॥ हरी मोहि० ॥ २ ॥

झूठो दोष दियो पशुपन सिर
मन वैराग्य विचारे।

राग-होरी

द्रग ज्ञान खोल देख जग मे कोई न सगा ।
एक धर्म विना सब असार इस में वगा ॥

सुत मात तात भाई बधु घर तिया जगा ।
ससार जलधि मे सदा ए करत है दगा ॥
द्रग ज्ञान० ॥ १ ॥

धन धान दास दासी नाग चपल तूरगा ।
इन्द्रजाल के समान सकल राज नृप खगा ॥
द्रग ज्ञान० ॥ २ ॥

तन रूप आयु जोबन बल भोग संपदा ।
जैसे डाभ-अणी-बिंदु और नयन ज्यों कगा ॥
द्रग ज्ञान० ॥ ३ ॥

अमुलिक सुत हीरालाल दिल लगा ।
जिनराज जिनागम सुगुरु चरण मैं पगा ॥
द्रग ज्ञान० ॥ ४ ॥

[२७७]

राग—सोरठ

तुम विन इह कृपा को करै ॥
जा प्रसाद अनादि सचित करम-गन थरहरै ।
॥ तुम० ॥ १ ॥

राग-केदारो

वसि कर इन्द्रिय भाग-भुजंग
इन्द्रिय भोग-भुजंग ॥
मयगल हथनी परसि स्पर्श तें
बंधी पड़त मतंग ॥
रसना के रस मछली गले को
बींधत मरत उमंग ॥ वसि० ॥ १ ॥
कमल परिमल नासा रत है
भ्रमर गमावत सृग ॥
नयन रूप मोहे भरमावे
दीपक देख पतंग ॥ वसि ॥ २ ॥
श्रवणेन्द्रिय वश घंटा रव तें
पारधि हनत कुरंग ॥
इक इक विषय करि ऐसा तो
क्या कहुं पण का रंग ॥ वसि ॥ ३ ॥
काज सुगानत हंसे फिर रोवे
त्यों इनका परसंग ॥
कहत हीरानन्द इन जीते सो
पावे सौख्य अभंग ॥ वसि ॥ ४ ॥

राग-होरी

द्रग ज्ञान खोल देख जग मे कोई न सगा ।
एक धर्म विना सत्र असार इस मे वगा ॥

सुत मात तात भाई बधु घर तिया जगा ।
ससार जलधि में सदा ए करत हैं दगा ॥
द्रग ज्ञान० ॥ १ ॥

धन धान दास दासी नाग चपल तूरगा ।
इन्द्रजाल के समान सकल राज नृप खगा ॥
द्रग ज्ञान० ॥ २ ॥

तन रूप आयु जोवन बल भोग सपदा ।
जैसे डाभ-अणी-बिंदु और नयन ज्यों कगा ॥
द्रग ज्ञान० ॥ ३ ॥

अमुलिक सुत हीरालाल दिल लगा ।
जिनराज जिनागम सुगुरु चरण मैं पगा ॥
द्रग ज्ञान० ॥ ४ ॥

[३७७]

राग—सोरठ

तुम विन इह कृपा को करै ॥
जा प्रमाद अनादि सचित करम-गन थरहरै ।
॥ तुम० ॥ १ ॥

मिटी कुधि मिथ्यात सब विधि ग्यान सुधि विस्तरै।
भरत निज आनन्द पूरण रस स्वभाविक झरै॥
॥ तुम० ॥ २ ॥

प्रगट भयो परकास भवन अखत क्यों हो न दुरै।
जास परणति शुद्ध चेतन उदै थिरता धरै॥
॥ तुम ॥ ३ ॥
[३७८]

राग-देशी चाल

(जोगीया मेरे द्वारै अब कैसी भूली रही।)
रही कुमती मेरे पीऊ को कैसी सीख दई॥
स्वपर छांडि पर ही संग रावत।
मावत क्यों भई ॥ रही० ॥ १ ॥
रत्नत्रय निज निधि बिगाय कैं।
डोलत कम कई॥
रंक भये घर घर डोलत।
अब कैसी निरमई ॥ रही० ॥ २ ॥
यह कुमति म्हारी जनम की वैरिनि।
पीय कीनो आपुमई ॥
पराधीन दुख भोगत आँड़ु।
निज सुख बिसरि गई ॥ रही० ॥ ३ ॥

'मानिक' अरु सुमति अरज सुनि ।
सतगुरु तो कृपा भई ॥
बिछुरे कत मिलावहु स्वामी ।
चरण कमल अलि गई ॥ दई० ॥ ४ ॥

[२७६]

राग—झंझोटी

आकुलता दुखदाई, तजो भवि ॥
अनरथ मूल पाप की जननी ।
मोहराय की जाई हो । आकुलता० ॥१॥
आकुलता करि रावण प्रतिहरि ।
पायो नर्क अघाई हो ॥
श्रेणिक भूप धारि आकुलता ।
दुर्गति गमन कराई हो ॥ आकुलता० । २॥
आकुलता करि पांडव नरपति ।
देश देश भटकाई हो ॥
चक्री भरत धारि आकुलता ।
मान भग दुख पाई हो ॥ आकुलता० ॥३॥
आकुलता करि कोटीध्वज हूँ ।
दुखी होइ विललाई हो ॥
आकुल बिना पुरुष निर्धन हूँ ।
सुखिया प्रगट लखाई हो ॥ आकुलता ॥४॥

मिटी सुधि मिथ्यात सब विधि ग्यान सुधि बिसरै।
मरत निज आनन्द पूरण रस स्वभाविक भरै॥
॥ सुम० ॥ २ ॥

प्रगट भयो परब्रह्म चेतन भ्रमत क्यों हो न दुरै।
दास परणति सुद्ध चेतन करै थिरता भरै॥
॥ सुम ॥ ३ ॥

[३७८]

राग-देशी चाल

(जोगीया मेरे द्वारै अब कैसी धूनी दई।)

दई कुमती मेरे पीऊ को कैसी सीख दई॥
स्वपर छांडि पर ही संग राचत।
नाचत क्यों थकई॥ दई० ॥ १ ॥

रत्नत्रय निज निधि बिगाय कैं।
जोवत कर्म कई॥
रंक भये घर घर जोवत।
अब कैसी मिरमई॥ दई० ॥ २ ॥

यह कुमति म्हारी जनम की बैरिनि।
पीव कीनी आपुमई॥
पराधीन दुख भोगत भौंदू।
निज सुध बिसरि गई॥ दई० ॥ ३ ॥

नय प्रमाण निक्षेप करण के।
सब विकल्प छुटकावै ॥
दर्शन ज्ञान चरण मय चेतन ।
भेद रहित ठहरावै ॥ जव० ॥४॥
शुकल ध्यान धरि घाति घात करि।
केवल ज्योति जगावै ॥
तीन काल के सकल ज्ञेय जुति ।
गुण पर्यय झलकावै ॥ जव० ॥५॥
या क्रम सौ वड भाग्य भव्य ।
शिव गये जांहि पुनि जावै ॥
जयवंतो जिन वृष जग मानिक।
सुर नर मुनि जश गावै ॥ जव० ॥६॥

[३८१]

राग-सोरठ

आकुल रहित होय निश दिन,
कीजे तत्व विचारा हो ॥
को ? मैं, कहा ? रूप है मेरा।
पर है कौन प्रकारा हो ॥ आकुल० ॥ १ ॥
को ? भव कारण बंध कहा ।
को ? आश्रव रोकन हारा हो ॥

पूजा आदि सब आरम्भ मैं।
विघन करण बुधिगाई हो॥
मानिक आकुलता बिन मुनिवर।
निर आकुल बुधि पाई हो॥ आकुलता०॥५॥

[३८०]

राग–बसन्त

जब कोई या विधि मन को लगावै।
तब परमातम पद पावै॥
प्रथम सप्त तत्वनि की सरधा।
धरत न संशय लावै॥
सम्यक ज्ञान प्रधान पवन बल।
भ्रम बादल विघटावै॥ जब०॥१॥
चर चरित्र निज मैं निज थिर करि।
विषय भोग बिरचावै॥
एकदेश वा सकलदेश धरि।
शिवपुर पथिक कहावै॥ जब०॥२॥
द्रव्यकर्म नोकर्म भिन्नकरि।
रागादिक बिनसावै॥
इष्ट अनिष्ट बुद्धि तजि पर मैं।
शुद्धातम को ध्यावै॥ जब॥३॥

नय प्रमाण निक्षेप करण के।
सब विकल्प छुटकावै॥
दर्शन ज्ञान चरण मय चेतन।
भेद रहित ठहरावै॥ जब०॥४॥
शुकल ध्यान धरि घाति घात करि।
केवल ज्योति जगावै॥
तीन काल के सकल ज्ञेय जुति।
गुण पर्यय झलकावै॥ जब०॥५॥
या क्रम सौं वड भाग्य भव्य।
शिव गये जांहि पुनि जावै॥
जयवतो जिन वृष जग मानिक।
सुर नर मुनि जश गावै॥ जब०॥६॥

[३८१]

राग-सोरठ

आकुल रहित होय निश दिन,
कीजे तत्व विचारा हो॥
को? मैं, कहा? रूप है मेरा।
पर है कौन प्रकारा हो॥ आकुल०॥ १॥
को? भव कारण बंध कहा।
को? आश्रव रोकन हारा हो॥

सिपत भ्रम-पंथन भारे सौं।
स्थानक कौन हमारा हो ॥ भाकुल० ॥ २ ॥
इम भभ्यास किये पावत है।
परमानंद अपारा हो ॥
मानिकचंद यह सार जानिके।
कीजयौं वारंवारा हो ॥ भाकुल ॥ ३ ॥
[३८२]

राग-सोरठ

भातम रूप निहारा।
सुद्ध मय भातम रूप निहारा हो ॥
जाकौ बिन पहिचानि।
जगत मे पाया दुःख अपारा हो ॥ भातम० ॥ १ ॥
बंध पर्स बिन एक नियत।
है निर्विशेष निरभारा हो ॥
पर तें भिन्न अभिन्न अनोपम।
ज्ञायक चित हमारा हो ॥ भातम० ॥ २ ॥
भेद ज्ञान-रवि घट परकासत।
मिथ्या तिमिर निवारा हो ॥
'मानिक' बलिहारी जिनकी तिन।
निज पद मांहि सम्हारा हो ॥ भातम ॥ ३ ॥
[३८३]

राग–सोरठ

ऐसे होरी खेलो हो चतुर खिलारि ॥
धर्म थान जहँ सब सज्जन जन, मिलि बैठो इकठार ॥१॥

ज्ञान सलिल पूरण पिचकारी, बानी बरषा धार ।
झेलत प्रेम प्रीति सौं जेते, धोवत करम विकार ॥२॥

तत्वन की चरचा शुभ चोवो, चरचौ बारबार ।
राग गुलाल अबीर त्याग भरि रंग रंगो सुविचार ॥३॥

अनहद नाद अलापो जामैं, सोहे सुर झंकार ।
रींझ मगनता दान त्याग पर 'धर्मपाल' सुनि यार ॥४॥

[३८४]

राग–विहाग

जिया तू दुख से काहे डरे रे ॥
पहली पाप करत नहि शक्यो अब क्यों सांस भरे रे ॥ १ ॥

करम भोग भोगे ही छुटेंगे शिथिल भये न सरे रे ।
धीरज धार मार मन ममता, जो सब काज सरे रे ॥ २ ॥

करत दीनता जन जन पे तू कोईयन सहाय करे रे ।
'धर्मपाल' कहै सुमरो जगतपति वे सब विपति हरे रे ॥ ३ ॥

[३८५]

राग–सोरठ

ऐसे होरी खेलो हो चतुर खिलारि ॥
धर्म थान जहँ सब सज्जन जन, मिलि बैठो इकठार ॥१॥

ज्ञान सलिल पूरण पिचकारी, बानी बरषा धार ।
झेलत प्रेम प्रीति सों जेते, धोवत करम विकार ॥२॥

तत्वन की चरचा शुभ चोवो, चरचौ बारबार ।
राग गुलाल अबीर त्याग भरि रंग रगो सुविचार ॥३॥

अनहद नाद अलापो जामैं, सोहे सुर झकार ।
रींझ मगनता दान त्याग पर 'धर्मपाल' मुनि यार ॥४॥

[३८४]

राग–विहाग

जिया तू दुख से काहे डरे रे ॥
पहली पाप करत नहिं शक्यो अब क्यों सास भरे रे ॥ १ ॥
करम भोग भोगे ही छुटेंगे शिथिल भये न सरे रे ।
धीरज धार मार मन ममता, जो सब काज सरे रे ॥ २ ॥
करत दीनता जन जन पे तू कोईयन सहाय करे रे ।
'धर्मपाल' कहै सुमरो जगतपति वे सब विपति हरे रे ॥ ३ ॥

[३८५]

राग–रामकली

आयौ सरन तिहारी जिनेसुर ॥
कृपा कर राखौ निज चरनन
आवागमन निवारी ॥ जिने ॥ १ ॥
करम वेदना न्यारी गति की
सो नहि परत सहारी ॥
तारण तिरण तिहारो कहिये
सुगति मुकति दातारी ॥ जिने ॥ २ ॥
लख चौरासी जौनि फिरयौ हूँ
मिथ्यामति अनुसारी ॥
दरसन देहु नाह करि मो पर
अब प्रभु लहु उबारी ॥ जिन० ॥ ३ ॥
आशाधरा सुकृत भक्ति जिनवर
नेमिनाथ अवतारी ॥
तुम ही हो त्रिभुवन के पालक,
विनीयक बात हमारी ॥ जिन० ॥ ४ ॥

[१८६]

राग–काफी

प्रभु बिन कौन हमारे पार ।
भव जल अगम अपार ॥ प्रभु० ॥

कृपा तिहारी तै हम पायो ।
नाम मत्र आधार ॥ प्रभु० ॥ १ ॥
तुम नीको उपदेस दीयौ ।
इह सब सारन को सार ॥
छलके छोड चले तेई निकमे ।
बूडे तिन सिर भार ॥ प्रभु० ॥ २ ॥
उपगारी कों ना विसरिये ।
इह धरम सुखकार ॥
'धरमपाल' प्रभु तुम मेरे तारक ।
किम प्रभु लों उपगार ॥ प्रभु० ॥ ३ ॥

[३८७]

राग–आसावरी

अरे मन पापनसों नित डरिये ॥
हिंसा झूठ वचन अरु चोरी, परनारी नहीं हरिये ।
निज परको दुखदायन डायन तृष्णा वेग विसरिये ॥ १ ॥

जासों परभव बिगडे वीरा ऐसो काज न करिये ।
क्यों मधु–बिन्दु विषय को कारण अंधकूप मे परिये ॥ २ ॥

गुरु उपदेश विमान बैठके यहांते वेग निकरिये ।
'नयनानन्द' अचल पद पावे भवसागर सो तिरिये ॥ ३ ॥

[३८८]

राग—जगला

किस विधि किये करम चकचूर ।
बांकी उत्तम क्षमा पै मचभो महान भावैजी ॥
एक तो प्रभु तुम परम दिगम्बर पास न तिलतुष मात्र हजूर ।
दूजे जीव दयाके सागर तीजे संतोषी भरपूर ॥ १ ॥
चौथे प्रभु तुम हित उपदेशी, तारण तरण जगत मशहूर ।
कोमल वचन सरल सत वक्ता निर्लोभी संयम तप-शूर ॥ २ ॥
कैसे ज्ञानावरण निवारयो कैसे गेरयो अदर्शन चूर ।
कैसे मोह-मल्ल तुम जीते कैसे किये च्यारों घातिया दूर ॥ ३ ॥
त्याग उपाधि हो तुम साहिब आकिंचन व्रतधारी मूल ।
दोष अठारह दूषण तजके कैसे जीते कर्म कू्र ॥ ४ ॥
कैसे केवल ज्ञान उपायो अन्तराय कैसे कियो निमूल ।
सुरनर मुनि सेवैं चरण तिहारे तो भी नहीं प्रभु तुमको गरूर ॥५॥
करत दास अरदास नैनसुख येही वर दीजे मोहि दान जरूर ।
जन्म जन्म पद-पंकज सेऊं और नहीं कछु चाहूं हजूर ॥ ६ ॥

[२८६]

राग—जगला

जिस विधि कीने करम चकचूर—
सो विधि बतलाऊँ तेरा ।
भरम मिटाऊँ वीरा ।
जिस विधि कीने करम चकचूर

सुनो सत अर्हंत पथ जन ।
स्वपर दया जिस घट भरपूर ॥
त्याग प्रपच निरीह करै तप ।
ते नर जीने कर्म करूर ॥ १ ॥

तोड क्रोध निठुरता अघ नग ।
कपट क्रूर सिर डारी धूर ॥
असत अ ग कर भग बतावे ।
ते नर जीते कर्म करूर ॥ २ ॥

लोभ कदरा के मुखमें भर ।
काठ असजम लाय जरूर ॥
विपय कुशील कुलाचल फूँके ।
ते नर जीते करम करूर ॥ ३ ॥

परम क्षमा मृदुभाव प्रकाशे ।
सरलवृत्ति निरवाछक पूर ॥
धर सजम तप त्याग जगत सब ।
ध्यावैं सतचित केवलनूर ॥ ४ ॥

यह शिवपथ सनातन संतो ।
सादि अनादि अटल मशहूर ॥
या मारग 'नैनानन्द" हु पायो ।
इस विधिजीते कर्म करूर ॥ ५ ॥

राग–प्रभाती

मेटो विथा हमारी प्रभूजी मेटो विथा हमारी ॥
मोह विषमज्वर आन सताओ।
वेत महा दुखमारी ॥
यो तो रोग मिटनको नाहीं।
औषध बिना तिहारी ॥ १ ॥
तुम ही वैद्य धन्वन्तर कहिये।
तुमही मूल पसारी ॥
घट घट की प्रभु आप ही जानो।
क्या जाने वैद्य अनारी ॥ २ ॥
तुम हकीम त्रिभुवनपति नायक।
पाऊँ दरस तुम्हारी ॥
संकट हरण करण शिवजी का।
मैनसुख शर्ण तिहारी ॥ ३ ॥
[३६१]

राग–काफी कनड़ी (ताल एक)

जिनराज थे म्हारा सुखकार ॥
और सकल संसार पराजत।
तुम शिव मग दातार ॥ जिन ॥ १ ॥

तुमरे गुण की गणना महिमा।
करि न सकै गणधार॥
बानी श्रवण रूप निरखत ए।
दोऊ ही मो हितकार॥ जिन०॥ २॥
दुखद कर्म वसु मैं उपजाये।
ते न तजैं मेरी लार॥
दूरि करन की विधि अब समझी।
तुमसों करि निरधार॥ जिन०॥ ३॥
स्वपर भेद लखि रागद्वेष तजि।
संवर धारि उदार॥
करम नाशि जिन पाय प्रभुढिग।
नयन लहौ भवपार॥ जिन०॥ ४॥

[३९२]

राग-ललित

जिया बहु रंगी परसंगी बहु विधि भेष बनावत॥
क्रोध मान छल लोभ रूप ह्वै।
चेतन भाव दुरावत॥ जिया०॥ १॥
नर नारक सुर पशु परजै धर।
आकृति अमित सिखावत॥
सपरस रस अरु गंध वरण मय।
मूरतिवत लखावत॥ जिया०॥ २॥

राग–प्रभाती

मेटो विथा हमारी प्रभूजी मेटो बिथा हमारी ॥
मोह विषमज्वर आन सतायौ।
वेद महा दुःखभारी ॥
यो तो रोग मिटनको नाहीं।
औषध विना विहारी ॥ १ ॥
तुम ही वैद धन्वन्तर कहिये।
तुमही मूल पसारी ॥
घट घट की प्रभु आप ही जानो।
क्या जाने वैद अनारी ॥ २ ॥
तुम हकीम त्रिभुवनपति नामक।
पाई टहल तुम्हारी ॥
संकट हरण चरण जिनजी का।
नैनसुख शर्ण तिहारा ॥ ३ ॥

[३६१]

राग–काफी कनडी (ताल एक)

जिनराज थ म्हारा सुखकार ॥
और सकल संसार वदावत।
तुम शिव मग दातार ॥ जिन० ॥ १ ॥

तुमरे गुण की गणना महिमा।
करि न सकै गणधार॥
बानी श्रवण रूप निरखत ए।
दोऊ ही मो हितकार॥ जिन०॥ २॥
दुखद कर्म वसु मैं उपजाये।
ते न तजैं मेरी लार॥
दूरि करन की विधि अब समझी।
तुमसों करि निरधार॥ जिन०॥ ३॥
स्वपर भेद लखि रागद्वेष तजि।
सवर धारि उदार॥
करम नाशि जिन पाय प्रभुढिग।
नयन लहौ भवपार॥ जिन०॥ ४॥

[३६२]

राग-ललित

जिया बहु रगी परसगी वहु विधि भेप बनावत॥
क्रोध मान छल लोभ रूप ह्वै।
चेतन भाव दुरावत॥ जिया०॥ १॥
नर नारक सुर पशु परजै धर।
आकृति अमित सिखावत॥
सपरस रस अरु गंध वरण मय।
मूरतिवत लखावत॥ जिया०॥ २॥

कबहूं रंक कबहूं ह्वै राजा ।
निरधन सघन कहावत ॥ जिया० ॥ ३ ॥
इह विधि विविधि अवस्था करि करि ।
मूरख मन भरमावत ॥
जिनवानी परसाद पायके ।
चतुरसुनयन जनावत ॥ जिया० ॥ ४ ॥

[३६३]

राग–मारु

चले आव पाया सरस ग्यान हीरा ॥
दुख चारित्र सुकृत सुकृत ।
दूरि भई पर पीरा ॥ चले ॥ १ ॥
सिव वैराग्य विवेक पंथ परि ।
बरषत सम रस नीरा ॥
मोह भूमि वह आत अगमग्यो ।
निर्मल ज्योति गहीरा ॥ चले० ॥ २ ॥
अखिल अनादि अनंत अनोपम ।
निज विधि गुण गम्भीरा ॥
अरस अगंध अपरस अनीवन ।
अलख अभेद अचीरा ॥ चले० ॥ ३ ॥
अरूप सुपत न स्वेत हरित दुति ।
स्याम वरण सु म पीरा ॥

आवत हाथ काच सम सूझै।
पर पद आदि शरीरा ॥ चलै० ॥ ४ ॥
जासु उद्योत होत शिव सन्मुख।
छोडि चतुर्गति कीरा ॥
देवीदास मिटै तिनही की।
सहज विषम भव पीरा ॥ चलै० ॥५॥

[३६४]

राग-सोहनी

इस नगरी में किस विधि रहना,
नित उठ तलब लगावेरी रहैना ॥

एक कुवे पाचो पणिहारी,
नीर भरैं सब न्यारी न्यारी ॥ १ ॥
बुर गया कुवा सूख गया पानी,
विलख रही पाचों पणिहारी ॥ २ ॥
बालू की रेत ओसकी टाटी,
उड गया हस पडी रही माटी ॥ ३ ॥
सोने का महल रूपे का छाजा,
छोड चले नगरी का राजा ॥ ४ ॥
'घासीराम' महज का मेला।
उड गया हाकिम लुट गया डेरा ॥ ५ ॥

[३६५]

कबहूँ रंक कबहूँ ह्वै राजा ।
निरधन सधन कहावत ॥ जिया० ॥ ३ ॥
इह बिधि बिबिधि अवस्था करि करि ।
मूरख जन भरमावत ॥
जिनबानी परसाद पायकै ।
भागुरसुनयन अनावत ॥ जिया० ॥ ४ ॥
[१६३]

राग–मारु

चलो आत पाया सरस ज्ञान हीरा ॥
दुख दारिद्र सुकृत सुकृत ।
दूरि भई पर पीरा ॥ चलो ॥ १ ॥
सिल वैराग्य विवेक पंथ परि ।
बरषत सम रस नीरा ॥
मोह धूलि बह जात अगमग्यो ।
निर्मल ज्योति गहीरा ॥ चलो० ॥ २ ॥
अखिल अनादि अनंत अनोपम ।
निज बिधि गुण गम्भीरा ॥
अरस अगंध अपरस अनौवन ।
अलख अभेद अचीरा ॥ चलो ॥ ३ ॥
अरूप सुपंत न स्वेत हरित दुति ।
स्याम बरण सु न पीरा ॥

पर सौं प्रीति जानि दुखदैनी आतम सुखद पिछांनि लै।
आश्रव बध विचार करीनै सवर हिय मैं आनि लै ॥
जीयरा रै ॥३॥

दरसण ग्यान मई अपनौ पद, तासौ रुचि की वांनि लै।
सहज करम की होय निरजरा, औसो उदिम तांनि लै ॥
जीयरा रै० ॥४॥

मुनि पद धारि ग्यांन केवल लहि, सिवतिय सौं हित सांनि लै।
किसनस्यघ परतीति आंनि अब, सद्गुर के वच कांनि लै ॥
जीयरा रै० ॥५॥

[३९७]

राग–गोडी

साधो भाई अब कोठी करी सराफी।
वडे सराफ कहै ॥
भव विसतार नगर के भीतर।
वणिज करण को आए ॥ साधो० ॥१॥
कुमति कुग्यान करी अति जाजिम।
ममता टाट विछाया ॥
अधिक अग्यान गद्दी चढि वैठे।
तकिया भरम लगाया ॥ साधो० ॥२॥
मन मुनीम वानोतर कीन्हा।
औगुन पारिख राखा ॥

राग–भैंरू

मोर भयो उठि भज रे पास।
जो चाहे तू मन सुख बास ॥
चंद किरण छवि मंद परी है।
पूरब दिशि रवि किरण प्रकास ॥ मोर ॥१॥
ससि भर विगत भये हैं तारे।
निश ओरत है पंछि आकासा ॥ मोर० ॥२॥
सहस किरण चहुं दिस पसरी है।
कवल भये बन किरण विकासा ॥ मोर० ॥३॥
पलीमन भास महरा कु उदै।
तमचुर बोलत है निश भास ॥ मोर० ॥४॥
आलस तजि भजि साहिब कू।
कहे जिन रुप पसे गु आस ॥ मोर० ॥५॥
[३६१]

राग–कनडी

मेरो कह्यो मानि लै जीयरा रे ॥
दुर्लभ नर भव कुल श्रावक को जिन धर्म दुलभ जानि लै ॥
जीयरा रे० ॥१॥
जिहि बसि नरकादिक दुखपायौं तिहि बिधि को भ्रम भानिलै।
सुर सुख मुक्ति मोक्षिफल पाइये अैसी परणति ठांनि लै।
जीयरा० रे० ॥२॥

पर सौं प्रीति जानि दुखदैनी आतम सुखद पिछांनि लै।
आश्रव बंध विचार करीनै संवर हिय मैं आनि लै ॥
जीयरा रै ॥३॥

दरसण ग्यान मई अपनौ पद, तासौं रुचि की वांनि लै।
सहज करम की होय निरजरा, अैसो उदिम तांनि लै ॥
जीयरा रै० ॥४॥

मुनि पद धारि ग्यांन केवल लहि, सिवतिय सौं हित सांनि लै।
किसनस्यघ परतीति आंनि अब, सद्गुर के वच कांनि लै ॥
जीयरा रै० ॥५॥

[३९७]

राग–गोडी

साधो भाई अब कोठी करी सराफी।
बडे सराफ कहै ॥
भव विसतार नगर के भीतर।
वणिज करण को आए॥ साधो० ॥१॥
कुमति कुग्यान करी अति जाजिम।
ममता टाट विछाया ॥
अधिक अग्यान गद्दी चढि बैठे।
तकिया भरम लगाया ॥ साधो० ॥२॥
मन मुनीम बानोतर कीन्हा।
औगुन पारिख राखा ॥

राग–भैरू

मोर भयो उठि भज रे पास।
जो चाहे तू मन सुख वास ॥
चंद किरण छवि मंद परी है।
पूरब दिशि रवि किरण प्रकास ॥ मोर ॥१॥
ससि अर बिगत भये हैं तारे।
निशा ओरव है पति आकासा ॥ मोर० ॥२॥
सहस किरण चहुँ दिस पसरी है।
कमल भये बन किरण बिकासा ॥ मोर० ॥३॥
पक्षीयन भास महण कू उठे।
तमचुर बोलत है मिज भास ॥ मोर० ॥४॥
आलस तजि भजि साहिब कू।
कहे जिन हर्ष करे जु आस ॥ मोर० ॥५॥
[३६६]

राग–कनड़ी

मरी कहयो मानि ले जीयरा रे ॥
दुलभ नर भव कुल श्रावक को जिन धर्म दुलभ जानि ले ॥
जीयरा रे० ॥१॥
जिहि बसि नरकादिक दुखपायौं तिहि विधि की बप मानि ले।
सुर सुख मुक्ति मोमिफल स दिये वैसी परणति ठानि ले।
जीयरा० रे० ॥ ॥

बालापन ख्यालन मैं खोयो,
तरुनायो तियराज ॥
बिरध भये अजहूँ क्यों न समरो,
देव गरीबनिवाज ॥ बहुरि० ॥ २ ॥
मिनषा जनम दुर्लभ पै है,
अरु श्रावग कुल काज ॥
औसौ सग बहुरि नहीं मिलि है,
सुन्दर सुघर समाज ॥ बहुरि० ॥ ३ ॥
माया मगन भयो क्या डोलै,
देखि देखि गज बाज ॥
यह तौ सब सुपने की सपति,
चुरहलि कौ सो साज ॥ बहुरि० ॥ ३ ॥
पाच चोर तेरौ घर मोसै,
तिन कौ करो इलाज ॥
अब बस पकरि करो मनवा को,
सर्वाहन को सिरताज ॥ बहुरि० ॥ ५ ॥
औरन को कछु जात नाहि न,
तेरो होत अकाज ॥
लालचन्द विनोदी गावै,
सरन गहे की लाज ॥ बहुरि० ॥ ६ ॥

इन्द्री पंच लगावे पठाई।
लोभ वसाम्ब सु मासा॥ साधो० ॥३॥
उवे सुभाव कीया रूजनामा।
विसना यही बधाई॥
राग दोष की रोकड राखी।
पर निंदा बदलाई॥ साधो०॥४॥
आठ करम आडतिये भारी।
साहुकार सवाये॥
पुन्य पाप की हुन्डी पठाई।
सुख दुख दाम कमाये॥ साधो० ॥५॥
महा मोह कीन्ही वदकारी।
कांटा कपट पसारा॥
काम क्रोध का तोलों कीन्हा।
तोला सब संसारा॥ साधो० ॥६॥
अब हम कीना ग्यान अलेखा।
सतगुर लेखा ठया॥
साहबराम कहे या वानिज मैं।
नफा हाथ न कछु आया॥ साधो० ॥७॥

[३६८]

राग-ईमन

बहुरि कब सुमरोगे जिनराज हो॥
औसर बीति जायगो तब ही
पछिते होवि न काज॥ बहुरि०॥ १॥

शब्दार्थ

१ वृषभ—प्रथम तीर्थङ्कर भगवान आदिनाथ। ससारार्णवतार—ससार रूपी समुद्र के तारने वाले। नाभिराय—भगवान आदिनाथ के पिता। मरुदेवी—भगवान आदिनाथ की माता, धनुष—चार हाथ अथवा दो गज प्रमाण एक धनुष।

२ नेम—२२ वे तीर्थंकर भगवान नेमिनाथ, श्रीकृष्ण के चचेरे भाई। गिरिनारि—जूनागढ के पास गिरनार पर्वत, इसका नाम 'उर्ज्जयन्त' भी है। सारग—मृग समूह। सारगु—कामदेव। सारगनयनि—मृगनयनी। ततमत—तत्रमत्र। सावरे—श्यामवर्ण वाले नेमिनाथ। राजुल—राजा उग्रसेन की पुत्री जिसका नेमिनाथ के साथ विवाह होने वाला था।

३ मनमोहन—नेमिनाथ। बोहरे—लौट गये। पोकार—पुकार। पलरति—रत्ती भर, बिलकुल। तानो—व्यंगात्मक शब्द। दिवाजे—महाराजा। सारंगमय—धनुष युक्त। धूनी ताने—तीर साधे हुए। छोरी—छोडी। मुगति वधू विरमानो—मुक्ति रूपी स्त्री से रमने को।

४ हलधर—बलराम। हरपीयनसू—इनसे हर्षित हुये। चन्द्र-वदनी—राजुल। थीर—स्थिर।

राग—ललित

कहिये जो कहिवे की होय ॥
आप आप में परगट दीसे
बाहिर निकस न पावे कोइ ॥ कहिये ॥ १ ॥
बचन राशि सब पुदगल परजै
पुदगल रूप नहीं पद सोय ॥ कहिये ॥ २ ॥
निर विकलप अनुभूति सास्वती
मगन सुजान ज्ञान भ्रम खोय ॥ कहिये० ॥ ३ ॥
[४००]

राग—ख्याल तमाशा

जिया तुम चोरी त्यागोजी विन दिया मत अनुरागोजी ॥
पंच पाप के मध्य विराजे नाम सुनत दुख भावे ।
हित् मिलापी लखिकर भाज सुख सुपन नहिं छामे ॥ १ ॥
राजा दंडे लोक भंडे सज्जन पंच निहंडे ।
पंच भेद गुरु समझ तजो जो पदरथ विहारी मंडे ॥ २ ॥
प्राण समान जान परधन को मत कोई हरन विचारो ।
हिंसा तै भी बडो पाप है यह साखी गणधारो ॥ ३ ॥
सत्यघोष पावैं दुख पायो और भी कुगति झुलाये ।
'पारस' त्याग किया सुख उपजे दोउ लोक उजलाये ॥ ४ ॥
[४०१]

१२ राका–पूर्णिमा। शशधर–चन्द्रमा। जनक सुता–सीता। वारिज–नेत्र रूपी कमल। वारी–पानी, आसू। विदर–विदर्भ। सीआ–सीता। मते–सलाह।

१३. निमिप–आख मीचने जितना समय। वरिपमो–वर्ष बराबर। सारगधर–राम।

१४ वोहोरी–वापिस, लौटकर। समुद्रविजय–नेमिनाथ के पिता। इन्दु–चन्द्रमा। छारि–छांडि। चरे–चढे।

१५ पास जिनेश–जिनेन्द्र देव, २३वें तीर्थंकर पार्श्वनाथ। फणींदा–सर्प का फण। कमठ–भ० पार्श्वनाथ का पूर्व भव का वैरी-एक असुर। भविक–भव्यजन। तमोपह–अन्धकार नष्ट करने वाले। भुविज-दिविजपति–भूपति इन्द्र। वामानदा–वामा देवी के पुत्र पार्श्वनाथ।

१६ निवाजत–कृपा करना। महीरुह–कल्पवृक्ष। सारंग–मयूर।

१७ वाधि–वृथा। विषै–विषय भोगों मे। कूट–कूट-नीति। निपट–बिल्कुल। विटल–बदमाश। विघटायो–घटाया। मोही–मुझसे।

१८ चिन्तामणि–सब मनोरथ पूर्ण करने वाला रत्न। विरद–यश, कर्त्तव्य। निवहिये–निभाइये। विकाने–विक गये।

५ नरिंदा–नरेन्द्रराजा। रुख है–वृक्ष के समान लगा है। संकर–शंकर कल्याणकारी।

६ सावनि–श्रावण। नेरे–पास। कीर–कीर या सुआ। गुपति–गुप्त। निठोर–निष्ठुर।

७ बरज्यो–मना करने पर। मतिफोर–ज्ञान को ठुकराकर।

८ मयडन–शृ गार। कजरा–काजल। पोरहुँ–पिरोती हुँ। गुननी–गुणों की। बेरी–माला। रूमे–रूप। कुरंगिनी–हरिणी। सर–शर बाण।

९ सुदर्शन–सुन्दर है दर्शन जिनका–ऐसा सेठ सुदर्शन। अभिया रानी–अभया रानी–जो सेठ पर मोहित हो गई थी।

१० हरिवदनी–चन्द्रवदनी राजुल। हरि को तिलक–हरिवंश तिलक। हरि–नेमिनाथ। कंवारी–कुमारी राजुल। हरी–हरा अथवा पीला रंग। ताटक–कानों का गहना। हरि–हरण कर। श्रवनि–कान। हरि–सूर्य चन्द्रमा। हरि सुवा सुत–राजुल–नेमि सिंह के वचन बच्ची। द्विज–चन्द्रमा। चिबुक–ठोडी। मनाल–कमल। देही–शरीर। हरी गवनी–सिंह की सी चाल वाली। कुमरि–प्रताप। बेरी–सेप। लगती–लाने लगे।

११ पेनीसे–पीले और नीले। सरपटोरी–सुन्दर वस्त्र। मो साड कु–कर। मान मरोरी–मान को मरोड कर।

मनमथु–कामदेव। प्रीतपाने–रक्षा करे। खटुकाई–पट् काय के जीव। फणिपति–फणीन्द्र। पाई–पांव। करन–इन्द्रियां। अतिसाई–अतिशय युक्त।

२८ फनी फणिपति। विनु अ बर–विना वस्त्र-दिगम्बर। सुभ करनी–शुभ करने वाले। तरुन तरनी–तरुण सूर्य-मध्यान्ह काल का सूर्य। वसुरस–आठ प्रकार का रस। साधुपनी–साधु-पन। दुरितु–पातक।

२६ सरवरि–वरावरी। जडरूप–मतिहीन। पकज-कमल। हिम–पानी। अमृत श्रवनि–अमृतमय उपदेश सुनने के लिये। सिरि वसनी–वैभवमय आवास।

३०. सिराइ–प्रसन्न होना। सहताइ–सतोषित। पराछित–दूर जाते हैं। पसाइ–प्रसाद। उपसमहि–शांत। मारी–महामारी। निरजरहि–निर्जरा होना, धीरे २ समाप्त होना।

३१ सक–इन्द्र। चक्रधर–चक्रवर्ति। धरन प्रमुख–धरणी प्रमुख, राजा। वहि रग–बाह्य। सग–परिग्रह। परिसह–परीपह।

३२ कल्याणक–गर्भ, जन्म, तप, ज्ञान और मोक्ष के समय होने वाले महोत्सव। सचीपति–इन्द्र। सिवमारग–मोक्ष-मार्ग। समोसरन–केवल ज्ञान प्राप्त होने के बाद-उपदेश देने

१९ निमाज्ञ-क्षमा। व्याल-सर्प। हणीमे-मारना। दीन-दिन। धूई-धूना। माधि-बाधकर। जीज-जीता हूँ।

२० परहि परहि-पड़ी पड़ी। विसुरत-याद करते करते। बाउरी-बावली। कल-चैन। जीउ-जिय जिव।

२१ वस मर-तपा युक्त। वसंत हेमन्तर-वसंत ऋतु की सी ठंडी बाहार। दादुर-मेंढक। दामिनी-बिजली।

२२. सहिय-सखी। सहियनी संगे-सखियों के साथ। पास-पार्श्वनाथ। मनरंगे-प्रसन्न मनसे। सहु पावक-सभी पाप। भव भय-संसार का भय। वारण-निवारण करने वाले। हरणहार-हरने वाले।

२३ सोवण पास-सोवण पार्श्वनाथ। दुरिनि-दुष्ट पापी। जिनवर-जिन श्रेष्ठ (पार्श्वनाथ)।

२४ जिनि-जिनको। जिते-जीत लिये जाते। रजनी राव-निशाचर। लंछन-चिह्न। अहिपति-सर्प पार्श्वनाथ का चिह्न।

२५. सवारथ-स्वार्थ। धान-अज्ञानी। पीठ-पुत्र।

२६ मज्जूँ-व्याज तक।

२७ नय विमाना बिन-स्याद्वाद सिद्धांत के जाने बिना। कल्पि कल्पि-कल्पना कर करके। चिद्रूप-चिदानन्द। आरण्य-अज्ञानी।

मनमथु–कामदेव। भीतपाले–रक्षा करे। खटुकाई–षट् काय के जीव। फणिपति–फणीन्द्र। पाई–पाय। करन–इन्द्रियां। अतिसाई–अतिशय युक्त।

२८ फनी फणिपति। विनु अ वर–विना वस्त्र-दिगम्बर। सुभ करनी–शुभ करने वाले। तरुन तरनी–तरुण सूर्य-मध्यान्ह काल का सूर्य। वसुरस–आठ प्रकार का रस। साधुपनी–साधुपन। दुरितु–पातक।

२६ सरवरि–बराबरी। जडरूप–मतिहीन। पकज–कमल। हिम–पानी। अमृत श्रवनि–अमृतमय उपदेश सुनने के लिये। सिरि वसनी–वैभवमय आवास।

३०. सिराइ–प्रसन्न होना। सहताइ–सतोषित। पराछित–दूर जाते है। पसाइ–प्रसाद। उपसमहि–शांत। मारी–महामारी। निरजरहि–निर्जरा होना, धीरे २ समाप्त होना।

३१ सक्र–इन्द्र। चक्रधर–चक्रवर्ति। धरन प्रमुख–धरणी प्रमुख, राजा। वहि रग–बाह्य। सग–परिग्रह। परिसह–परीषह।

३२ कल्याणक–गर्भ, जन्म, तप, ज्ञान और मोक्ष के समय होने वाले महोत्सव। सचीपति–इन्द्र। सिवमारग–मोक्ष मार्ग। समोसरन–केवल ज्ञान प्राप्त होने के बाद-उपदेश देने

१६ निघाम-छाया । व्याल-सर्प । हरखीमे-मारना । दीन-दिन । भूई-भूला । नाभि-नाभिकर । जीमे-जीता है ।

२० परहि परहि-पड़ी पड़ी । बिसुरत-याद करत-करते । बाउरी-बावली । कल-चैन । जीउ-जिय चित्त ।

२१ रस भर-रूपा मुक्त । बसंत हेमन्त-बसंत ऋतु की सी ठंडी बौछार । दादुर-मेंढक । दामिनी-बिजली ।

२२. सखि-सखी । सखियन संगे-सखियों के साथ । पास-पारसनाथ । मनरंगे-प्रसन्न मनसे । सहु पातक-सभी पाप । भव भय-संसार के भय । वारण-निवारण करने वाले । हरणभार-हरने वाले ।

२३ मोक्ष पास-मोक्ष पारसनाथ । दुर्जिनि-दुष्ट पापी । जिनवर-जिन श्रेष्ठ (पारसनाथ) ।

२४ जिनि-जिनको । जिते-जीत लिये जाय । रजनी राज-निशाचर । चक-चिह्न । अहिपति-सर्प पारसनाथ का चिह्न ।

२५ स्वारथ-स्वार्थ । यान-अज्ञानी । पीउ-पुत्र ।

२६ अजहुँ-आज तक ।

२७ नय विभाग बिन-स्याद्वाद सिद्धांत के जाने बिना । कलपि कलपि-कल्पना कर करके । चिद्रूप-चिदानन्द । आरपउ-जलाया ।

३६ जिन—जनि, मत करो। प्रकृति—स्वभाव। तू—हे आत्मन्। सुजान—विवेकी। यहु—यह। तऊ—तोभी। परतीति—भरोसा। सुह्वौ—हो चुका। सुयहु—होगया। समिति—बराबरी। मोहि—मुझको। वसिकै—वस करके। सुतोहि—तुमको। करन—करने की। फीत्ति—फिरता है।

४० मधुकर—भौंरा। कुभयो—खराब हो गया। अनत—अन्य जगह। कुविसन—खराब व्यसन। अवस—वेवस। राजहस—परम गुरु। सनमानो—सम्मानित। सहताने—समाती हुई।

४१ मे मे -मैं मै। सुक्यों—क्यों। गठनि—गठने वाला। कर—हाथ मे। कुसियार—एक प्रकार का ईख। सुक—तोता।

४२ श्रवन—कान।

४३ कल्हि—कल। सु अहलै—साधारण। भायो—अच्छा लगता है।

४४ उरगानौ—सेवक, चेरा। त्रासनि—डर से। मदनु-कामदेव। छपानौ—छकाया। राजु—राज्य। वसु प्रतिहार—अष्ट प्रातिहार्य-केवल ज्ञान होने पर तीर्थंकरों के आठ विशेष गुण उत्पन्न होते है -(१) अशोक वृक्ष, (२) रत्नमय सिहासन, (३) तीन छत्र, (४) भामडल, (५) दिव्य ध्वनि, (६) देवों द्वारा पुष्प

की सभा। सिरिराज–श्री जिनराज। कवल–केवलज्ञान–पूर्ण ज्ञान। मज्जत–डूबते हुए।

३३–निरंबर–निरन्तर। कटाक्ष–कटाक्ष।

३४ सासति–दण्ड देना। वधु–वध हिंसा। मूष–मूठी। थिर वधू–वश्या। अविद्या अविद्या। संतान–परम्परा।

३५ संवत–बराबर रहने वाला। पावे–पावे प्राप्त करे। जाड्य–जड़ता। निवेरी–हरने वाले। कुमुद–विरोधि कमलों के मुर्झाने वाला चन्द्रमा। कसी कृत सागर–सागर के साथ घटन घटने वाला। मनै–चाहता है। घन–बिन्दु।

३६ करम–कर्म। विगोयो–वृथा खोता है। चिंतामनि रत्न। वाइस को–काग उड़ाने को। कुंजर–हाथी। वृष–धर्म। गोयो–मोक्ष लिया। थिरत–धूत। माथि–मस्त। कंदर्प–कामदेव।

३७ करसाव–आलस्य करता है। चतुर गति–देव मनुष्य–तिर्यंच और नरक गति। विपति–वन। बिरमाव–रम रहा है। सहज–स्वाभाविक। भभाव–भभकना। ओसनि–ओस–हवा में मिली हुई भाप जो रात्रि के समय सर्दी से जम कर जल कण के रूप में गिरती है।

३८ धी–धी लगाना। आतम–आत्मा। चेतन–जीव।

३९ जिन—जनि, मत करो। प्रकृति—स्वभाव। तू—हे आत्मन्। सुज्ञान—विवेकी। यहु—यह। तऊ—तोभी। परतीति—भरोसा। सुह्वै—हो चुका। सुयहु—होगया। समिति—बराबरी। मोहि—मुझको। वसिकै—वस करके। सुतोहि—तुमको। करन—करने की। फीति—फिरता है।

४० मधुकर—भौंरा। कुभयो—खराब हो गया। अनत—अन्य जगह। कुविसन—खराब व्यसन। अवस—बेवस। राजहंस—परम गुरु। सनमानो—सम्मानित। सहतानें—समाती हुई।

४१ मे मे -मैं मै। सुक्यों—क्यो। गठनि—गठने वाला। कर—हाथ मे। कुसियार—एक प्रकार का ईख। सुक—तोता।

४२ श्रवन—कान।

४३ कल्हि—कल। सु अहलै—साधारण। भायो—अच्छा लगता है।

४४ उरगानौ—सेवक, चेरा। त्रासनि—डर से। मदनु-कामदेव। छपानौ—छकाया। राजु—राज्य। वसु प्रतिहार—अष्ट प्रातिहार्य-केवल ज्ञान होने पर तीर्थंकरों के आठ विशेष गुण उत्पन्न होते हैं --(१) अशोक वृक्ष, (२) रत्नमय सिंहासन, (३) तीन छत्र, (४) भामंडल, (५) दिव्य ध्वनि, (६) देवों द्वारा पुष्प

वृष्टि (७) चौसठ चंवरों का ढुलना (८) दुदुभि बाजों का बजना। अनन्त चतुष्टय—केवल ज्ञान होने पर अनन्त दर्शन अनन्त ज्ञान अनन्त सुख अनन्त वीर्य (बल) प्रकट होते हैं। चौतीस अतिसय—तीर्थंकरों के ३४ अतिशय होते हैं १० जनम के १० केवल ज्ञान के और शेष १४ अतिशय देवताओं द्वारा किये जाते हैं। समोसरन—तीर्थंकर को केवल ज्ञान प्रकट होने पर देवों द्वारा रचित सभा स्थल जहां भगवान का उपदेश होता है। रानीं—राजा। बानीं—स्वरूप।

४४ सर्वज्ञ—पूर्ण ज्ञानी। कव—क्यों। टोहि—खोज करके।

४६ मिथ्या—मिथ्यात्व। मिसको—भस्म हो गया। सुपर—स्वपर। मोह—मोह माया। कुनय—पदार्थों को जानने के मिथ्या उपाय [ज्ञान]। भरमयो—हुआ। गतिर—अन्य गतियों में। सीह मांगई—बहता चली गई। नयो—झुक गया चला गया। भ्रमयाम—भटका। बिलायो—नष्ट हो गया। सिवसिरि—मुक्ति।

४७ अनय पद—मिथ्यात दृष्टि। आरी—अज्ञानर। नास्यो—नष्ट कर दिया। अनेकांत—एक से अधिक दृष्टियों से पदार्थों को जानने का मार्ग जैन धर्म का सबसे बड़ा सिद्धांत इसे 'स्याद्वाद' भी कहते हैं।

विराजत—सुशोभित। भान—ज्ञान सूर्य। मतारन—शासन

रहने वाला, सत्स्वरूप। ज्ञेयाकार—पदार्थ के आकार को। विकास्यौ—प्रकाशित करने वाला। अमद—मदता रहित। सूरति—मूर्त्तिमान-सूरत शकल वाला।

४८ भीनौं—भीगा। अविद्या—अज्ञानता। कीनौं—क्षीण किया। विरंग—कई प्रकार के रंग। वाचक—कहने वाला। चित्र—विचित्र। चीन्ही—देखा।

४६. उमरो—अमीर। आन—अन्य। को—कौन। सिगरौ—सम्पूर्ण। श्रेणिक—राजगृही के राजा।

५० सकतु—शका करना। परत्र—पर। कत—किसे। मदनउ—कामदेव। जार—जला रहे हैं। महावत—हाथी का चालक अथवा महाव्रत। तकसीर—गलती। धुर—धुरा।

५१. कलुप—मलिन। परिनाम—परिणाम, भाव। सल्यनिपाति—कांटे को निकालना। वसु—अष्ट प्रकार।

५२ धौकलु—धमकल-शोरगुल। जम—यम। वाचे—बचे।

५४ आरति-चिन्ता। लसुन-लहसन। वरबस-लाचार। बाल गोपाल-बच्चे तक भी। गोइ-छिपाकर। लुनियै-काटिये। बोइ-बोना।

५५ अपनपौ-अपनापन अथवा अपने स्वरूप को। दारादि-स्त्रियों को। कनक-स्वर्ण। कनक-धतूरा। बौराई-

पुष्टि (७) चौंसठ चंवरों का दुलना (८) दुंदुभि बाजों का बजना। अनन्त चतुष्टय—केवल ज्ञान होने पर अनन्त दर्शन, अनन्त ज्ञान अनन्त सुख अनन्त वीर्य (बल) प्रकट होते हैं। चौतीस अतिसय—तीर्थंकरों के ३४ अतिशय होते हैं १० जनम के १० केवल ज्ञान के और शेष १४ अतिशय देवताओं द्वारा किये जाते हैं। समोसरन—तीर्थंकर को केवल ज्ञान प्रकट होने पर देवों द्वारा रचित सभा स्थल जहां भगवान का उपदेश होता है। रानौं—राजा। बानौं—स्वरूप।

४५ सबज्ञ—पूर्ण ज्ञानी। क्यु—क्यों। टोहि—खोज करके।

४६ मिथ्या—मिथ्यात्व। बिसर्यो—अस्त हो गया। सुपर—स्वपर। मोह—मोह-माया। कुनय—पदार्थों को जानने के मिथ्या उपाय [ज्ञान]। अथयो—डूबा। गवर—अन्य गतियों में। सीह भागई—अकला चली गई। नयो—मुक्त गया चला गया। चकचाव—चकवा। बिलयो—नष्ट हो गया। सिवसिरि—मुक्ति।

४७ अनय पख—मिथ्यात दृष्टि। बारी—अन्धकार। नास्या—नष्ट कर दिया। अनेकांत—एक से अधिक दृष्टियों से पदार्थों को जानने का मार्ग जैन धर्म का सबसे बड़ा सिद्धांत इसे 'स्याद्वाद' भी कहते हैं।

बिराजत—सुशोभित। मान—ज्ञान सूर्य। मनाकर—शाश्वत

करने वाला। जनिनु—पैदा हुआ। पसरयउ—फैला हुआ। आन—दूसरी जगह।

६१ आउ—आयु। महारथ—योद्धा। वापरो—बेचारा। कुसुमित—खिले हुए।

६२ परसौ—अन्य से। जान—ज्ञान। हीन—तुच्छ। परु-पर। पजवान—प्रधान। गुमान—घमण्ड। निदान—निश्चित।

६३ पातगु—पाप। पटितर—सदृश।

६४ नटवा—नट। नाइक—नायक। लाइकु—योग्य। काछ-कछाइन—नटका वस्त्र विशेष। पखावजु—ढोलक। रागादिक—राग द्वेष आदि। पर—अन्य। परिनति—भाव।

६५ समीति—समीपता, अभिन्नता। डहकतु—जलाना। वसीति—बसना। दाउ—दांव। कैफीति—कैफियत, विवरण।

६६ मोह—ममता। गुननि—गुणस्थान, आत्मा के भावो का उतार चढाव। उदितउ—उदय से। विअसि—विना तलवार के। सरचाप-धनुप वाण। दाप-दर्प, घमड। कौनु-कौन।

६७ बलि-बलशाली। पास-पार्श्व जिनदेव। विस हरउ-विप हरने वाले। थावर-स्थावर जीव, एकेन्द्रिय वाले जीव। जगम-त्रसनायिक जीव, दो इन्द्रिय से लेकर पांच

पागलपन छाना। रजत-चांदी। पुद्गल-अचेतन मन कसउ-कष्ट। मुठि-मुट्ठी।

५६ बिगसे-फूले। मकरंदु-पराग (फूलों का)। मुषत-सोखते हैं। चित चकोर-चित्त रूपी चकोर पक्षी। चाइयो-चखा। द दु-द्व द। अतरगत-हृदय में। म ड़ु-शोभा मंद। सहवाने-सहित। छंदु-पद-कविता।

५७ नारे-गाय का बछड़ा। आउ आयु। प्रति बंधक रोकने वाला। अकुलात-आकुलित होना। परोक्ष-इन्द्रियों की सहायता से होने वाला ज्ञान परोक्ष ज्ञान। अचरन-आचरण। मारे-मारी।

५८ कुबाइ-कुबुद्धि मूल। निबहर्यो-वहक करके। साल-मकान (नीचे का कमरा)। बरबस-जबरन। छह्यो-छोड़ दिया। धारुण्य-कंपादेने वाला। रेवातट-रेवा नदी के किनारे-सिद्धवरकूट क्षेत्र।

५९ मिथ्या देव-झूठे देव। मिथ्या गुरु-झूठे गुरु। भरमायौ-भ्रमाया। सरचौ-बना। परिभायौ-भ्रमण करता रहा। निवरहि-दूर करो।

६ असदरा-कोई बराबरी वाला नहीं। राजसु-शोभित होना। रज-धूलकण। तप विधि-तपस्या द्वारा। बढ़ेरौ-बढ़ाने वाला। मासुन-मष्ट करने वाला। करेरौ-

करने वाला। जनिनु—पैदा हुआ। पसरथउ—फैला हुआ। आन—दूसरी जगह।

६१ आउ—आयु। महारथ—योद्धा। वापरो—वेचारा। कुसुमित—खिले हुए।

६२ परसौ—अन्य से। जान—ज्ञान। हीन—तुच्छ। परु-पर। पजवान—प्रधान। गुमान—घमण्ड। निदान—निश्चित।

६३ पातगु—पाप। पटितर—सदृश।

६४ नटवा—नट। नाइक—नायक। लाइकु—योग्य। काछ-कछाइन—नटका वस्त्र विशेप। पखावजु—ढोलक। रागादिक—राग द्वेष आदि। पर—अन्य। परिनति—भाव।

६५ समीति—समीपता, अभिन्नता। डहकतु—जलाना। वसीति—वसना। दाउ—दाव। कैफीति—कैफियत, विवरण।

६६ मोह—ममता। गुननि—गुणस्थान, आत्मा के भावो का उतार चढाव। उदितउ—उदय से। विअसि—विना तलवार के। सरचाप-धनुष बाण। दाप-दर्प, घमड। कौनु-कौन।

६७ बलि-बलशाली। पास-पार्श्व जिनदेव। विस हरउ-विप हरने वाले। थावर-स्थावर जीव, एकेन्द्रिय वाले जीव। जगम-त्रसकायिक जीव, दो इन्द्रिय से लेकर पाच

इन्द्रिय वाले जीव। कमठ—पारसनाथ के पूर्व भव का बैरी। ऊर्मी—लहरा। बालु—बालक।

६८. सेखर—मस्तक। पाटल—पाटल पुष्प के समान। पदुमराग—पद्मरागमणि। सारख—अथवा। दरिसन—दर्शन। दुरित—पातक।

६९ निषाद—दुःख। विसमय—आश्चर्य। अहमेव—अभिमान अहंकार मद। परसेव—पसीना। भेव—भेद।

७० निरंजन—निर्दोष। सर—मस्तक। खंजन दग—खंजन पक्षी के समान आंखों वाले।

७१ साम्ह—खीर। गहु—ग्रहण कर। गहु—गृह (घर)। मुकदम—गोव का चौधरी।

७२ वनज—व्यापार। टोटा—घाटा। उमच्छ—प्रेम। निरधाना—सुखित।

७३ मूलन बेटा जायो—मूल नक्षत्र में पुत्र उत्पन्न हुआ शुद्धोपयोग। खोज—खाज २ कर। बालक—शुद्धोपयोग उत्पन्न हुआ।

७४ महाविकल—व्याकुल। हिंसारंभ—आरंभी हिंसा, गृहस्थ के प्रतिदिन के कार्यों में होने वाली हिंसा। मृषा—असत्य। निरोधे—रोके। हिये—हृदय में। दरब—द्रव्य। परजाय—पर्याय। उदयागति—उदय में आने वाला।

७५. चितामनि–चिंतामणि पार्श्वनाथ। मिथ्यात–मिथ्यात्व। निवारिये–दूर कीजिये। निसवेरा–अज्ञान रूपी रात्रि के समय। बिंब–प्रतिमा।

७६. भोंदू भाई–बुद्धू, मूर्ख। करषें–खींचते है। नाखें–डालते हैं। कृतारथ–कृतकृत्य। केवलि–केवल ज्ञानी, तीर्थंकर। भेद–निजपर का भेद। अपूठे–एक तरफ। निमेखें–निमिष मात्र, पल भर भी। विकलप–विकल्प। निरविकलप–निर्विकल्प, जहा किसी प्रकार का भेद न हो।

७७ सबद–शब्द। पागी–लीन होना। विलोवै–देखे। ओट–आड में। पुद्गल–जड। भ्रामक–बहकाने वाली। जगम काय–त्रसकायिक। थावर–स्थावर, एकेन्द्रिय। भीम को हाथी–महामूढ।

७८ दिति–दैत्यो की माता। धारणा–ध्यान करते समय हृदय मे होने वाली। निकांछित–सम्यग्दर्शन के निकांक्षित आदि आठ गुण। बलखत–रोता हुआ। दरयाव–समुद्र। सेतुबध–समुद्र मे पुल बाधना। छपक–क्षपक श्रेणी। कबध–धड़।

७६ विलाय–दूर होना। पौन–पवन, हवा। राधारौनसौं–राधा से (आत्मा) रमण की इच्छा। वौनसौं–वमन से। लौनसौं–सौन्दर्य। अवगौनसौं–आवागमन से।

८० दुविधा–शंका।

इन्द्रिय वाले जीव। कमठ—पार्श्वनाथ के पूर्व भव का वैरी। ऊभी—खड़ा। पासु—पालक।

६८. सेसर—मस्तक। पाटल—पाटल पुष्प के समान। पदुमराग—पद्मरागमणि। आस्य—अथवा। दरसन—दर्शन। दुरित—पातक।

६९ विषाद—दुःख। विस्मय—आश्चर्य। अहमेव—अभिमान अहंकार मद। परसेव—पसीना। भव—भेद।

७० निरंजन—निर्दोष। सर—मस्तक। खंजन दृग—खंजन पक्षी के समान आंखों वाले।

७१ साम्भ—सीर। गह—ग्रहण कर। गह—गृह (घर)। मुकद्दम—गांव का चौधरी।

७२ मनसा—व्यापार। टोटा—घाटा। इश्क—प्रेम। निरवाना—मुक्ति।

७३ मूलन बेटा आयो—मूल नक्षत्र में पुत्र उत्पन्न हुआ शुभो पयोग। खोज—खोज २ कर। सफल—शुद्धोपयोग उत्पन्न हुआ।

७४ महाविकल—व्याकुल। हिंसारंभ—आरंभी हिंसा गृहस्थ के प्रतिदिन के कार्यों में होने वाली हिंसा। मृषा—असत्य। निरोधे—रोके। हिये—हृदय में। दरब—द्रव्य। परजाय—पर्याय। अध्यगति—अध्यात्म में ध्यान वाल।

८७ पटपेलन—एक प्रकार का खेल, कपड़े से मुह ढक कर खेला जाने वाला खेल। वेला—समय। परि—पडी। तोहि—तेरे। गल—गले मे। जेला—जजाल, काटेदार जेली के समान। छेला—बकरा। सुरझेला—सुलझाड़ा।

८८ बध—बधु, भाई। जा बध—बध जा। विभूति—वैभव। ठानै—करने का दृढ विचार। बध—कर्मों का आत्मा के प्रदेशों के साथ चिपट जाना। हेत—हेतु, कारण।

८९ हित—हित करने वालों मे। विरचि—विरक्त हो। रचि—लवलीन, स्नेह। निगोद—साधारण बनस्पतिकायिक जीवों की पर्याय विशेष, जहा ज्ञान का सबसे कम क्षयोपशम हो। पहार—पहाड, पर्वत। सुरज्ञान—श्रेष्ठ ज्ञान से युक्त।

९०. समता—समभाव। तीन रतन—सम्यग्यदर्शन, सम्यक् ज्ञान, सम्यक् चरित्र रूपी त्रिरत्न। व्यसन—बुरी आदते, व्यसन सात होते है—(१) जूआ खेलना, (२) चोरी करना, (३) वेश्या-सेवन, (४) शराब पीना, (५) मांस खाना, (६) शिकार खेलना, (७) पर स्त्री गमन करना। मद—आठ मद हैं। कपाय—जो आत्मा को कपै अर्थात दुःख दे, कपाय के २५ भेद हैं—अनतानुबधी, प्रत्याख्यान, अप्रत्याखान एव सज्वलन, क्रोध, मान, माया, लोभ की चोकड़ी तथा हास्य, रति, अरति, शोक, भय, जगुप्सा, स्त्रीवेद, पुरुपवेद, एवं नपुसक वेद। निदान—क्रिया के फल की आकांक्षा करना। मोहस्यों—मोह ममत्व।

८१ नक–कुक्क। बेढे–घिरा हुआ। निरवार–छुटकारा। पखान पाषाण। पखार–स्नान करके धोकर। झार–धूल। बगाक्षि–उगाल कर। पाट–रेशम। कीरा–कीड़ा। कबूतर लौटन–भूमि पर लुढ़कने वाला कबूतर।

८२ भारत–दुःखी। नारकिन–नरक में रहने वाले प्राणियों के दुष्टों के।

८३ भरत–प्रथम तीर्थंकर ऋषभदेव के ज्येष्ठ पुत्र। समकित–सम्यक्त्व। उद्योत–उदय। गोत–गोत्रकर्म। सुकुमाल–सुकुमाल मुनि।

८४ मयानी–मथन वाली। पिंजर–शरीर। बेदें–ज्ञान। पखेदे–वसाव देना। रज–मिट्टी। न्यारिया–रास्तों में नालियों के नीचे की मिट्टी को शोधकर चांदी-सोना निकालने वाले। कर्म विपाक–कर्मों का पकना। मन कीलें–मन को एकाग्र करता है। भीसे–तल्लीन होना।

८५ मरीचिका–किरणों की परछाई मृग-तृष्णा। घुरैल का पकवान–जिससे मुख खान पर भी भूख न मिटे। अपावन–अपवित्र। रहट–मिट्टी। अपनायत–अपनापन।

८६ असम–जो देखने में न आवे। भसा–भय में। प्रमाण–प्रमाण। ओ–गाय की लाल का जैसा। दरवित–द्रवित। लै सा–आग्रम के समान। बरता–बरतन वाला होने वाला।

का उपदेश। तत्व–वस्तु, तत्व ७ प्रकार के होते हैं–जीव, अजीव, आश्रव बंध, संवर, निर्जरा, और मोक्ष। सरधा–श्रद्धा, विश्वास।

१०४ जामण–जन्म लेना। विरद–अपनी बात अथवा प्रसिद्धि।

१०५ रविसुत–यमराज, शनि।

१०६. अरिहंत–जिनदेव-जिन्होंने घातिया कर्मों को नष्ट कर दिया है। संजम–संयम।

१०७ पगे–रत रहना।

१०८ श्रावग–श्रावक, जैन गृहस्थ।

१०९ भीना–लवलीन होना। झीना–सूक्ष्म। उगीना–उगेरणी करना, दोहराना।

११० करन–कर्ण, कान।

१११ त्रसना–तृष्णा, लालच।

११२ सिद्धान्त–जैन सिद्धांत। वखान–व्याख्यान, वर्णन।

११३ छानी–छुपी हुई। प्रथम वेद–जैन साहित्य चार वेदों (भागों) मे विभाजित हैं–चार वेद अर्थात् अनुयोग–प्रथमानुयोग, [illegible], चरणानुयोग, द्रव्यानुयोग। ग्रन्थबंध–ग्रन्थ के रूप

९१ कलत्र–स्त्री। उदय–कर्मोदय। पुद्गल–जड़ शरीर। भव परनति–संसार परिणमन। आस्रव–नवीन कर्मों का आना। छहरि तड़ता–बिजली की लहर अथवा चमक। विलाया–नष्ट होना। गहल–मस्ती नशा। परराबा–गड़गड़ाहट, घर्राना। अनत चतुष्टय–अनन्त दर्शन अनन्त ज्ञान अनन्त सुख एवं अनन्त वीर्य।

९२ समकित–सम्यक् दर्शन सम्यक्त्व। षटसारी–छह प्रकार का स्वाद पदार्थ। सिवका–पालकी।

९३ भौ भार–संसार का बोझ।

९४ पावो–पाना। कूं पल–पेड़ के नये पत्ते। सुपाश्री—सापाश्री।

९७ अष्ट द्रव्य–जल चन्दन अक्षत पुष्प नैवेद्य दीप, धूप एवं फल ये पूजा करने के लिए आठ द्रव्य होते हैं।

९९ निज परणति–अपनी आत्मा में विचरण करना।

१०० रति–प्रेम। छद्माव–बुरे विचार।

१०१ झर–लगातार बौछार। मगदरसी–मार्ग दर्शन करने वाला।

१०२ कल्पवृक्ष–भोग-भूमि का वृक्ष जिससे सभी प्रकार की वाञ्छित वस्तुएँ प्राप्त होती हैं। जिनवाणी–भगवान जिनेन्द्र द्वारा

१२५ पंचपाप-हिंसा, चोरी, झूठ, अब्रह्म, परिग्रह। विकथा-४ प्रकार की विकथाये हैं-स्त्रीकथा, राजकथा, देशकथा भोजनकथा। तीन जोग-मनोयोग, वचनयोग, और काय योग। कलिकाल-कलियुग।

१२६ सुकुमाल-सुकोमल।

१२७ नसाही-नष्ट हो जावे। अमरापुर-मोक्ष।

१२८ मो सौं-मुझ से। मदीत-सहायता। रावरी-आपकी।

१२९ निजघर-अपने आप में। परपरणति-पर रूप परिणामन होना। मृग जल-मृगतृष्णा।

१३० जोग-योग,३ प्रकार के हैं-मनो योग, वचन योग,काय योग। क्षपक श्रेणी-कर्मों को नाश करने वाली सीढी। घातिया-आत्मा का बुरा करने वाले कर्म-ज्ञानावरणी, दर्शनावरणी, मोहनीय और अन्तराय-ये ४ 'घातिया कर्म' कहलाते हैं। सिद्ध-जिन्होंने आठों कर्मों को नष्ट कर मोक्ष प्राप्त कर लिया है।

१३१ वाम-स्त्री।

१३२ भेद ज्ञान-'स्वपर' का भेद जानने वाला ज्ञान। आगम-तीर्थंकरों की वाणी का संग्रह। नवतत्व-वस्तु तत्व सात प्रकार के हैं-जीव, अजीव, आश्रव, बंध, संवर, निर्जरा-मोक्ष-पुण्य और पाप ये दो मिलाने से ९ पदार्थ होते हैं। यहां

११४ नैक-किंचित। असाता-दुःख अशुभ वेदनीय कर्म का भेद। साता-सुख। तनक-किंचित।

११६ श्रमण-तीर्थंकर। सामरसी-समान धर्म मानने वाले बन्धु।

११७ टेरत-पुकारना। हेरत-देखना।

११८ परीसह-शारीरिक कष्ट ये २२ प्रकार के होते हैं।

११९ बालक-तीर्थंकर नमिनाथ। समदविजैनन्दन-समुद्र विजय के पुत्र। हरिवंश-वंश का नाम। सुरगिरि-सुमेरु पर्वत। मज्जन-न्हवन स्नान। शची-इन्द्राणी।

१२ अलख नाम-अरहन्त प्रभु। आष्ट कर्म-आठ प्रकार के कर्म-ज्ञानावरण दर्शनावरण वेदनीय मोहनीय आयु, नाम गोत्र और अन्तराय। बीस आभूषण-२ प्रकार के रत्न।

१२१ भूक-गाली भूल। चाकरी-नौकरी। टहल-सेवा। घरा-बेड़ी जंजीर। घरमेरा-असमञ्जस। नरा-नजदीक।

१२२ कर्मजनित-कर्मों के उदय से। पसारो-निवास। अविकारो-विकार रहित।

१२३ जड़ी वनौषध। गानउ-ज्ञान।

१२४ भ ग-भेद। मुषित-मूसा। पाज-पार उतारने वाला जहाज।

१२५ पंचपाप-हिंसा, चोरी, झूठ, अब्रह्म, परिग्रह। विकथा-४ प्रकार की विकथायें हैं-स्त्रीकथा, राजकथा, देशकथा भोजनकथा। तीन जोग-मनोयोग, वचनयोग, और काय योग। कलिकाल-कलियुग।

१२६ सुकुमाल-सुकोमल।

१२७ नसाही-नष्ट हो जावे। अमरापुर-मोक्ष।

१२८ मो सौं-मुझ से। मदीत-सहायता। रावरी-आपकी।

१२९ निजघर-अपने आप में। परपरणति-पर रूप परिणमन होना। मृग जल-मृगतृष्णा।

१३० जोग-योग,३ प्रकार के हैं-मनो योग, वचन योग, काय योग। क्षपक श्रेणी-कर्मों को नाश करने वाली सीढी। घातिया-आत्मा का बुरा करने वाले कर्म-ज्ञानावरणी, दर्शनावरणी, मोहनीय और अन्तराय-ये ४ 'घातिया कर्म' कहलाते हैं। सिद्ध-जिन्होंने आठों कर्मों को नष्ट कर मोक्ष प्राप्त कर लिया है।

१३१ वाम-स्त्री।

१३२ भेद ज्ञान-'स्वपर' का भेद जानने वाला ज्ञान आगम-तीर्थंकरों की वाणी का समह। नवतत्व-वस्तु तत्व ... प्रकार के हैं-जीव, अजीव, आश्रव, बंध, संवर, नि... इनके पुण्य और पाप ये दो मिलाने से ९ पदार्थ ...

नष्ट होने से अथ नव-पर्याय है। अनुसरनो-अनुसार चलना धारण करना।

१५३ आरसी-आंख, दर्पण। सबलाय-सी आकार। यहाँ द्रव्य जीव पुद्गल धर्म अधर्म आकाश और काल ये छह द्रव्य कहलाते हैं।

१५४ रति-प्रेम। बिसरानी-भुला दी। पटतर-समानता। सुहानी-मृत्यु की।

१५५ ज्ञेय-ज्ञेय पदार्थ। व्यापक, ज्ञायक-जानने वाला। अरिहंत-जिनके ४ घातिया कर्म नष्ट हो गये हैं तथा जो १८ दोष रहित एवं ४६ गुण युक्त हैं। सिद्ध-जिनके ४ घातियां तथा ४ अघातियां-आठों ही कर्म नष्ट होगये हैं तथा जिनके आठ गुण प्रकट हो गये हैं। सूरि-आचार्य परमेष्ठी इनके ३६ मूलगुण होते हैं। गुरु-उपाध्याय-इनके २५ मूल गुण होते हैं। मुनि वर-सब साधु इनके २८ मूल गुण होते हैं। विभ्रम-भ्रम भूल। चरी-चली। एकेन्द्री-स्पर्शन इन्द्रिय वाला। पञ्चेन्द्री-स्पर्शन रसना घ्राण चक्षु तथा श्रोत्रेन्द्रियधारी। अतिन्द्री-इन्द्रिय रहित।

१५६ सिद्धक्षेत्र-सिद्धालय मुक्ति। थाना-घरा अथाना-अज्ञानी।

१५७ तन शरीर। अवसर-अवसर ना समय। बंध-आत्मा

१४७ सत्ता—सत् आदि का स्थान। समता—समभाव। माट—मटका। नय दोनों—निश्चय और व्यवहार नय। थोथा—बन्धन।

१४८. भा-भव जन्म-मरण। दस आठ—१८ बार। उसास मास—श्वासोश्वास। साधारन—साधारण वनस्पति। विकलत्रे—तीन इन्द्रियां का धारी। पुतरी—पुतली। नर भौ-मनुष्य जन्म। जाया—उत्पन्न हुआ। दरव लिंग—द्रव्यलिंग पर्याय।

१४९. रिझावन—प्रसन्न करन को। दरवस—साधु। विसेखा—विशेष।

१५० गरभ छमास अगाऊ—गर्भ में आने से छ मास पूर्व। कनकनग—स्वर्ण परकोटा युक्त। मेरु—सुमेरु पर्वत। कहार—पालकी उठान वाले। पंचकल्याणक—गर्भ जन्म तप ज्ञान और निर्वाण कल्याणक।

१५१ छिन—क्षण। चक्रधर—चक्रवर्ति। रसाल—सुन्दर। विषै—इन्द्रियों के विषय।

१५२. फरस विषै—स्पर्शन इन्द्रिय के विषय। रस—रसना। गंध—घ्राणेन्द्रिय के विषय। अखि—देखन के कारण भूत इन्द्रिय। सलभ—पतंगा। सुनत—सुनत ही। टेर—टेक।

१५३ दीन—कमजोर। सवनन—शरीर की शक्ति के द्योतक-सहनन ६ प्रकार के हैं —वज्रवृषभनाराच-सहनन, वज्रनाराच सहनन, नाराचसहनन, अर्द्धनाराच सहनन, कीलक सहनन, असम्प्राप्तासृपाटिका सहनन। आऊषा—आयु। अलप—अल्प। मनीषा—इच्छा। शाली—चावल। समोई—समा करके।

१५४ समाधिमरन——धर्मध्यान पूर्वक मरण। सक्र—इन्द्र। सुरलोई—स्वर्ग। पूरी आइ—आयु पूर्ण कर। विदेह—विदेह क्षेत्र। भोइ—भोगकर। महाव्रत—हिंसा, झूठ चोरी, कुशील और परिग्रह का पूर्ण रूपेण सर्वथा त्याग—महाव्रत कहलाता है। इसका पालन मुनि लोग करते हैं। विलसै—भुगते।

१५५ थिति—स्थिति। खिर खिरजाई—खिरना समाप्त होना।

१५६ मूढता—अज्ञानता। सिहड़ा—पिंजरा। तिहडारी—उस डाली पर।

१५७. मूढौ—मूर्खों में। माता—मस्त हुआ, पागल की तरह। साधौ—सत्पुरुष, साधु। नाल—साथ मे।

१५८ नय—वस्तु के एक देश को ग्रहण करनेवाला ज्ञान—यह सात प्रकार का है—नैगम, संग्रह, व्यवहार, ऋजुसूत्र, शब्द, समाभिरूढ और एवंभूत। निहचै—निश्चयनय। विवहार—व्यवहार नय। परजय—पर्यायार्थिक नय, दरवित—द्रव्यार्थिक नय, सुतुला-कांटा। वस्तै—वस्तु।

१५६ सिवमत–शैव। आगम–धार्मिक मूल मय।

१६० यह–चलता रहे, याह जात में काम आवे।

१६१ मनक्म–मणिय माला। सराई–सराहना प्रशंसा।

१६२ इन्द्रीविषय–इन्द्रियों के विषय। अपकार–वश करने वाले। काम–कामदेव। उनहार–सदृश। छार–मिट्टी। अनिवार–अवश्य।

१६३ गरज आवश्यकता। सरीना–पूरा नहीं होना।

१६४ गरबाना–घमण्ड करना। गहि अनन्त भवनै–तूने अनेक जन्म धारण कर। उचान्ता–ऊँचे। बिगसा–चबाना। असन–भोजन। पोस्यो–पोषण किया। बिहाना–दिन। घांटघ–घटाना। गिलाय–ग्लानि। मूये–मरने पर। प्रेत–पिशाच। पाँच चोर–पञ्चेन्द्रिय विषय। ठना–लगा दिया। ब्रह्मज्ञान–आत्म स्वरूप।

१६५. सपद–शीघ्र। असनाई प्रेम। नीव–नीम। तरजाइ–तिरजाना। कुन्तात–छोड़ा। बूंद–सीप में पड़ी हुई बूंद। उर्द्ध पदवी–मोती बनकर मुकुट में स्थान। कर्ई–कड़वी। तीवर–तूम्बी। बचसाव–बच जो पंसारी के मिलती है उसके खान से। भाई–भभाई। सरभाई–श्रद्धा कर ली गई है।

१६६ थिरता–स्थिरता। राजै सुशोभित होना। साजै–

धारण करै। उपार्जै-उपार्जन करै, बांधना।

१६७. वपु-शरीर।

१६८ नग सो-नगीने के समान। सटकै-चला जाय।

१६६ ख्याति लाभ-प्रशंसा, प्रसिद्धि। आव-आयु। जुवती-युवा स्त्री। मित-मित्र। परिजन-बन्धु। दाव-मौका।

१७० भवि-अघ-दहन—संसार रूपी पाप की अग्नि। वारिद-बादल। भरम-तम-हर-तरनि—भ्रम रूपी अंधकार को हरने के लिए सूर्य। करम-गत-कर्म समूह। करन-करने वाला। परन-प्रण।

१७१. निकन्दन-नष्ट करने वाले। वानी-वाणी। रोष-विदारण-क्रोध को नष्ट करने वाले। बालयती-बाल ब्रह्मचारी। समकिती-सम्यक्त्व धारण करने वाले। दावानल-अग्नि।

१७२ सेठ सुदर्शन-निर्दोष सुदर्शन सेठ को रानी के बहकावे में आकर राजा ने शूली चढाने का आदेश दिया था, किन्तु देवों ने शूली से 'सिंहासन' कर दिया। वारिषेण-'वारिषेण' नाम के एक जैन मुनि-जिन पर दुष्टों ने तलवार से वार किया था। धन्या-धन्यकुमार। वापी-बावड़ी। सिरीपाल-राजा श्रीपाल को धवल सेठ ने उनकी पत्नी 'रैन मञ्जूषा' से आसक्त होकर जहाज से समुद्र में गिरा दिया था। सोमा 'सोमा सती'-'सोमा' के

चरित्र पर सन्देह कर उसके पति ने एक घड़े में बड़ा काला सांप बंदकर शयन कक्ष में रख दिया और उससे कहा कि इसमें तुम्हारे लिए सुन्दर हार है। जब सोमा ने आहार निकालने के लिए घड़े में हाथ डाला तो उसके सतीत्व के प्रभाव से वह सर्प मोतियों का हार बन गया।

१७३ अन्तर—हृदय। कृपान—कृपाण कटार। विषै—इन्द्रियों के विषय। लोक रंजना—लोक दिखावा लोगों को प्रसन्न रखना। ग्रंथ—ग्रन्थ।

१७४ बंध—कर्मों का बन्धन। वित्ति—धन।

१७५. बेरस—बिना रस।

१७६ समकित—सम्यक्त्व। पावस—वर्षा ऋतु। सुरति—प्रेम। गुरुधुनि—गुरु की वाणी। साधकभाव—आत्म साधना के भाव। निरधू—पूर्ण रूपेण।

१७७ पासे—चौपड़ खेलने के पासे। काके—किसके।

१७८ टब—आदर।

१८० चक्री—चक्रवर्ती। वायस—कौआ।

१८१ पाहान—पाषाण पत्थर। धरमलों—धर्मों।

१८२. मासकम—वर्षा की मासकम। वादही—खाली।

१८५. सवर—नये कर्मों को आने से रोकना। गरिमा—बड़ाई, प्रसशा।

१८६ कथ—पति। कुलटा—व्यभिचारिणी।

१८७ मुद्दत—समय।

१८८ दुहेला—कठिन कार्य। व्यवहारी—व्यवहार मे लाने योग्य। निहचै—निश्चय, वास्तविक।

१८६ वियोगज—वियोग से उत्पन्न। कच्छ-सुकच्छ—कच्छ-सुकच्छ नाम के राजा। उग्रसेन—राजुल के पिता का नाम, कृष्ण के नाना। वारी—पुत्री राजुल। समदविजै नेमिनाथ के पिता समुद्र विजय।

१६०. हेली—सहेली। नियरा—नजदीक। करूर—क्रूर। कलाधर—चन्द्रमा। सियरा—ठण्डा।

१६१ वारि—बबूला, जल बुद्बुद। कुदार—कुदाली। कध—कधे पर। बसूला—लकडी काटने का बसोला।

१६२ सधि—जोड। वरण—रग।

१६४ अछेव—अपार। अहमेव—अहंपना। भेव—भेद।

१६८. निमप—निमिष मात्र के लिए भी। लरदा—लडने को तैयार। अखदा—कहता हूँ। आरजूदा—इच्छा।

२०० बिगोवै—मटकाता है, दुःख देता है। सओवे मी—छुपाता है। जोवे—देखना।

२०१ परम्यो मना किया। कुलगारि—कुल नष्ट करने वाले। अकारि—अकार्य कुकर्म।

२०२ निरवामी—मौन। जादोपति—यादव वंश के पति—नेमिनाथ।

२ ४ दिगम्बर—नग्न। लौंच—सिर के केश उखाड़ना। पछेती—सबके पीछे। हती—हितकारी। धनिवेती—धन्य है, धनवान बनते हैं।

२०५ तलफत—तड़फते हैं।

२०६ मिस—बहाना। हेमसी—स्वर्ण के समान सुन्दर मन वाली।

२०७ सांवर—पति। अपाई—अपना। बिरद—कार्य। निबाही—निभाना।

२ ८ दंद—द्वन्द्व कमल-युगल। रिंद—समूह। वृन्द—राशि समूह। तारक—तारने वाला।

२१० ठगौरी—ठगने वाली। गोरी—नारी। चोवो—सुगन्धित द्रव्य। पौरी—द्वार पौर।

२११ निज परनति—अपने स्वभाव में लीन होना।

किसोरी–किशोर अवस्था वाली। पिचरिका–फुहारे-पिचकारी तणी–की। गिलोरी–बीडा। अमल–अफीम। गोरी–गोली। टौरी—टल्ला, धक्का। बरजोरी—जबरदस्ती।

२१२. मगरुरि—घमण्ड, अभिमान। परियण—परिजन, कुटुम्बीजन। वदी—बुराई। नेकी—भलाई। खरी—सही।

२१३. पाहन—पत्थर। श्रुत—शास्त्र। निरधार—निश्चय।

२१४ सलीता—सयुक्त। पुनिता—पवित्र। करि लीता-कर लिया। श्रवनन—कानों से।

२१५ वारी—बलिहारी। पातिग—पाप। विडारी—भगाये। दोष अठारा—तीर्थंकरों मे निम्न १८ दोष नहीं होते हैं—१ जन्म, २ जरा, ३, तृषा, ४ क्षुधा, ५. विस्मय, ६ अरति, ७ खेद, ८ रोग, ९ शोक, १० मद, ११ मोह, १२ भय, १३ निद्रा, १४ चिन्ता, १५ स्वेद, (पसीना), १६. राग १७ द्वेष, १८ मरण। गुन छियालीस--अरहन्तो के निम्न ४६ गुण होते हैं—३४ अतिशय (जन्म के दस केवल ज्ञान के दस तथा देवरचित १४) आठ प्रतिहार्य और ४ अनन्त चतुष्टय।

२१६ नेम—नियम। द्रगयनि—नेत्र।

२१७ जोइयो—देखा। विथुरिये—फैलाता है।

२१६. सरसावो—हरी-भरी करो।

२२० विलय—देरी। भवसंतति—संसार परिभ्रमण।

२२१ म्यंद—निन्दनीय। निकंद—नष्ट कर।

२२२ निछरावल—न्यौछावर। आवागमन—जन्म-मरण।

२२३ सुक—तोता। बचनता—बोलने की शक्ति। उपल—पत्थर। पटपद—भ्रमर। छाई—छूने से। नाग दमनि—एक प्रकार की मणी। कटकी—'कुटकी चिरायता' कड़वी दवा। करवाई—कड़वापन। नग—नगीना। खास-खासा चपड़ी। बपरी-बेचारी। महाधमी अत्यन्त नीच। मधि परनामी-सम भाव रखने वाले।

२२५ छार-खारे। वाहि तैं-मुखाओं से। नावँ-नौकाएं। नांव-नामकी।

२२६ ब्यावांणी-ब्याऊ गा। दिसता-लगता है। मेरा-मेरा। दीठा-दिखायी दिया।

२२७ नरआमा-मनुष्य देह। मामा-स्त्री। धमा-महल आदि। बिसरामा-विश्राम।

२२८ फरस-स्पर्श। सोना-सना हुआ।

२२९ विस-तुप—विस तथा तुप का भेद रूप ज्ञान।

२३०. निरना–निर्णय निश्चित ।

२३१ सुभटन का–योद्धाओ का ।

२३५. सीत-जुरी–शीतज्वर। परतख-प्रत्यक्ष ।

२३६. झपापात–ऊपर से नीचे की ओर एक दम झपटना ।

२३७. निजपुर–अपने आप मे, आत्मा मे । चिदानन्दजी–आत्माराम । सुमती–सुबुद्धि । पिकी छोरी–पिचकारी छोड़ी । अजपा–सोऽहं । अनहद–अनाहत शब्द ।

२३८ पोरी–पोल, द्वार । फगुवा–फाग के उपलक्ष मे दिया जाने वाले उपहार । पाथर–पत्थर ।

२३६ चौरासी–चोरासी लाख योनियों मे । आरज—'आर्यखण्ड'-जहां भारतवर्ष है । विभाव–वैभाविक, राग-द्वेष रूप भाव ।

२४१ 'भरत बाहुबलि'—प्रथम तीर्थंकर भ० आदिनाथ के पुत्र-भरत बड़े तथा बाहुबलि छोटे थे । भरत छ खण्ड के राजा चक्रवर्ति होगये किन्तु बाहुबलि उनके अधीन नहीं हुये । दोनों मे परस्पर नेत्र-युद्ध, जल-युद्ध, तथा मल्ल-युद्ध हुये, तीनों मे ही बाहुबलि लम्बे (दीर्घ-काय) होने के कारण विजयी हुए । पर विजय से विरक्त हो दीक्षा धारण की तथा कई वर्षों तक तपस्या की । उनके शरीर में पक्षियों ने घोंसले तक बना लिये,

और वहीं चला गए। आज भी दक्षिण भारत में संसार प्रसिद्ध 'बाहुबलि' की विशाल मूर्ति विराजमान है।

२४२ मोह-महल-मोह का नशा। हूं-मैं। चिन्मूरति-चिदानन्द।

२४३ सुकृत-अच्छा कार्य धर्म। अघ-पाप। अटूट-अनन्त।

२४४ सिताबी-शीघ्र।

२४५ चीरन-चीर-जीर्ण वस्त्र या देह। चोरत-चुराना। ढीठ-निकम्मा।

२४७ तसा-जैसा।

२४८ विधि निषेधकर-अस्ति-नास्ति अथवा स्याद्वाद स्वरूप। द्वादस अ ग-द्वादशाङ्ग-वाणी धर्म। क्षायिक समकित-'क्षायिक सम्यक्त्व' [मिथ्यात्व सम्यग् मिथ्यात्व सम्यक् प्रकृति मिथ्यात्व तथा अनन्तानुबन्धी क्रोध मान माया लोभ इन सात प्रकृतियों के अत्यन्त क्षय से होने वाला सम्यक्त्व क्षायिक सम्यक्त्व कहलाता है।] भवथिति-भवस्थिति। गाही-नष्ट की।

२४९. कर ऊपर कर-हाथ पर हाथ रखकर। भूति-भस्म राख। आशावासा-इच्छाओं को रोक कर। नासादृष्टि-नाक के अग्रभाग पर दृष्टि। सुरगिर-सुमेरु पर्वत। हुताशन-अग्नि। वसु विधि समिध-आठ प्रकार की कर्म रूपी ईंधन।

स्यामलि-काले। अलिकावलि-बालों का समूह। तृनमनि—घास और मणि।

२५० दावानल-अग्नि। गनपति-गणधर, भगवान की वाणी को झेलने वाले। गहीर-गहरा। अमित-बेहद, अपार। समीर-हवा। कोटि-बार बार, करोड़ों बार। हरहु-दूर करो। कतर-काट दो।

२५१ वर-श्रेष्ठ।

२५२ उद्यम-परिश्रम। घाटी-घाटा। माटी-मृतक शरीर। कपाटी-किवाड़।

२५३. भुजङ्ग-सर्प। स्वपद-अपने पद को। विसार-भूल कर। परपद-पर पदार्थ में। मदरत-नशा किये हुए के समान। बौराया-पागल की तरह बकना। समामृत-समता रूपी अमृत। जिनवृष-जैन धर्म। विलखे-विलाप करते हैं। मणि-चिन्ता-मणि रत्न।

२५४ निजघर-अपने आपकी पहिचान। पर परणति-पर पदार्थों के स्वभाव में। चेतन भाव-आत्म स्वभाव। परजय बुद्धि-पर्याय बुद्धि। अजहू-अब तो।

२५५ अशुभ-बुरे कर्म। सहज-स्वाभाविक। शिव—कल्याण, मुक्ति।

२५६ निपट–बिल्कुल। अयाना–अज्ञानी। आपा–अपने आपको। पीय–पीकर। लिप्यो–लिप्त होना सनजाना। कमदल–कमल पत्र। बिराना–पराया। अजगन–बकरियों के समूह में। हरि–सिंह।

२५७ शुक–तोता। नलिनी–कमल जल में फंसा रहा। अविरुद्ध–विरोध रहित। दरश बोधमय–दर्शन ज्ञान से युक्त। पाग–लगा रहना। राग रुख–राग-द्वेष। दायक–देने वाला। चाहदाह–इच्छा रूपी अग्नि। गाहैं–ग्रहण करे।

२५८ संसय–शंका। विभ्रम–व्यामोह, भ्रम। विवर्जित–रहित। अदत्त–बिना दिया हुआ। आकिंचन–परिग्रह रहित। प्रसंग–सम्बन्ध। पञ्च समिति–यत्नाचार पूर्वक प्रवृत्ति को 'समिति' कहते हैं। उसके पांच भेद हैं–'ईर्यासमिति' भाषा समिति एषणा समिति आदान निक्षेपण समिति और उत्सर्ग समिति। गुप्ति–भले प्रकार मनवचन काय के योग को रोकना निग्रह करना 'गुप्ति' कहलाती है। यह ३ प्रकार की है मनोगुप्ति वचनगुप्ति और काय गुप्ति। व्यवहार चरन–व्यवहार चरित्र। कुसुम–सुगन्धित द्रव्य रोली। दास–सेवक। व्याल–सर्प। माल–माला। समभावै–एक रूप। आरत रौद्र–आर्त ध्यान रौद्र ध्यान। अविचल निश्चल।

२५९ मोसम–मेरे समान।

२६० तारन–पार लगाना। दुरुसीर–गन्दी भूख।

अघ-पाप। विसन-व्यसन। शूकर-सुअर। सुर-स्वर्ग। मो-मेरी। खुवारी-बुरबादी। विसारी-भूली।

२६१ तीन पीठ-तीन कटनियों पर। अधर-विना सहारे। ठही-ठहरा हुआ। मार-कामदेव। मार-नष्टकर। चार तीस-चौंतीस। नवदुग-अठारह। सतत-निरन्तर। प्रफुलावन-विकसित करने को। भान-सूर्य।

२६२ भाये-अच्छे लगे। भ्रम भौंर-भ्रम रूपी भँवर। वहिरातमता-आत्मा का वाह्य स्वरूप। अन्तर दृष्टि-आत्मा को पहचानने की दृष्टि। रामा-स्त्री। हुताश-अग्नि।

२६३ सोज-सोच। भेदै नष्टकर। तताई-उष्णता। रव-शब्द। करन विषय-इन्द्रियों के विषय। दारु-लकडी। जघान-नष्ट कर। विरागताई-वैराग्यपना।

२६४ काकताली-काकतालीय न्याय.—कौए का वृक्ष के नीचे से उडते हुए मुंह का फाडना तथा सयोग से एकाएक उसके मुंह में आम्रफल का आजाना। नरभव-मनुष्य जन्म। सुकुल-उत्तम वश। श्रवण-सुनना। ज्ञेय-पदार्थ। सौंज-सामग्री। हानी-नष्ट की। अनिष्ट-हानिकारक। इष्टता-प्रेम बुद्धि। अवगाहै-ग्रहण करता है। लाय लय-लौ लगाओ। समरस-समता रूपी रस। सानी-सना हुआ।

२६५. घिनगेह–घृणा का स्थान। करिबमाल–हड्डियों का समूह। कुरंग–हरिण। मखी–मक्खी। पुरीष–टट्टी मल। चम मंढी–चमड़े में मढ़ी हुई। रिपु कम–कम शत्रुओं को। घड़ी–गढ़ी–कोटा गढ़। मेद–चर्बी। क्लेद–मवाद। महत गद ब्याल पिटारी–महा रोग रूपी सांप की टोकरी। पोषी–पोषण किया। शोषी–सोख लेना। सुर मनु–इन्द्र मनुष। शम–शांति।

२६६ गैलवा–मार्ग। मोहमद–मिथ्याभिमान। वार–जल। भियो–डरा। मैलवा–मैल विकार। घरन–पृथ्वी। फिरत–फिरता रहना। रौलवा–समूह। सुथल–अच्छा डेरा, स्थान। छिटकायो–छोड़ा।

२६७ विरचि–विरक्त होकर। कुबजा–कुबड़ी फूट पैदा कराने वाली कुमति। राधा–श्रीकृष्ण की पत्नी सदृश। बाधा–विघ्न। रली–खुशी। करी–कली। चिद्गुण–चैतन्य आत्मा। स्व समाधि–अपने आप। कुथल–खराब स्थान।

२६८. शिवपुर–मोक्ष।

२६६. मृग-तृष्णा–मृग मरीचिका। जेवरी–रस्सी। महिप–राजा। तोय–पानी। खपत–विनाश। परभावन–आत्मा के विपरीत भाव। करता–करने वाला। काल लब्धि–योग्यता उपयुक्त समय। ताप–रोष—सन्तोष से नाराज ही रहा।

२७० मुनो–मनन। प्रशस्त–निर्मल। थिरा–स्थिर। भवाब्धि–ससार समुद्र। सादि–इतर निगोद अर्थात् जिसमे जीव नित्य निगोद से निकल कर अन्य पर्याय धारण करके फिर निगोद मे जाते हैं। अनादि–नित्य निगोद–जिसने आज तक नित्य निगोद के अलावा कोई दूसरी पर्याय नहीं पाई। अङ्क–गिनती का अङ्क। ऊबरा–अन्तर शेष रहा। भव–पर्याय। अन्तर मुहूर्त–एक समय कम ४८ मिनट। गनेश्वरा–गणधर। छयासठ सहस त्रिशत छतीश–छयासठ हजार तीन सौ छत्तीस। तहांतै–निगोद से। नीसरा–निकला। भू–पृथ्वीकायिक। जल–जयकायिक। अनिल–वायुकायिक। अनल–तेजकायिक, अग्निकायिक। तरु–वनस्पतिकायिक। अनुंधरीसु कुंथु कानमच्छ अवतरा–एकेन्द्रिय जीव से पचेन्द्रिय मच्छ तक जन्म धारण किया। खचर–आकाश मे विचरण करने वाले जीव। खरा–श्रेष्ठ। लाघ–लांघना, पार करना। अनुत्तरा–उत्कृष्ट आयु वाला देवपद।

२७१ बोधे–सम्बोधित किये। लोकसिरो–मुक्ति। द्रव्य लिंग मुनि–बाह्य रूप से मुनि। उग्रतपन–घोर तपश्चरण। नव ग्रीवक–१६ वें स्वर्ग से ऊपर का स्थान। भवार्णव–ससार समुद्र।

२७२ देहाश्रित–शरीर के सहारे होने वाली। शिवमगचारी–मोक्ष मार्ग पर चलने वाला। निज निवेद–अपने

आपका ज्ञान। विफल–फल रहित। द्विविध–अ तरंग और बाह्य। बिदारी–नष्ट की।

२७३ बंध–आत्मा के बन्धन। समरना–याद करना। सन्धिभेद–अलग २ करना। छैनी–लोहे अथवा पत्थर को काटने वाली छीनी। परिहरना–छोड़ना। शंके–शंका करे। परचाह–आत्मा से जो पर है उनकी इच्छा। भव मरना–जन्म तथा मरण।

२७४ ठही–करी। जडनि–पुद्गल अचेतन। पाग–लगना। गहत–ग्रहण करना। जिनवृष–जैन धर्म। लही प्राप्त किया।

२७५ अथामी–अज्ञानी अटपटी। आनाकानी–टालम टोल करना। बोध–ज्ञान। शर्म–परम कल्याण। बिलोवत–मंथन करना बिलोना। सदन–घर। बिरानी–पराया। परिनमन–परिवर्तन। दृग-ज्ञान चरन–दर्शन ज्ञान और चरित्र। लखावन–बतलाने वाली।

२७६. पुद्गल–शरीर जीव रहित पदार्थ। निरपै–निर्विकल्प। सिद्ध सरुप–मुक्ति। कीच–कीचड़।

२७७ मोहमद–मोह रूपी मदिरा। अनादि–अनादि काल से। कुबोध–कुज्ञान। अम्रत–त्रस रहित। असारता–निःसार। कृमि बिट थानी–विष्टा के स्थान में की होना–एक राजा मरकर विष्टा के स्थान में कीड़ा बना था उसकी कथा

प्रसिद्ध है। हरि —नारायण। गदगेह—रोग का घर। नेह—प्रेम। मलीन—मलयुक्त। छीन—क्षीण। करमकृत—कर्मों द्वारा किया हुआ। सुखहानी—सुखों को नष्ट करने वाली। चाह—इच्छाएं। कुलखानी—वंश को खाने वाली, नष्ट करने वाली। ज्ञानसुधासर—ज्ञान रूपी अमृत का सरोवर। शोषन—सुखाने के लिए। अमित—अपार। मृतु—मृत्यु। भवतन भोग—सासारिक शारीरिक भोग। रुष राग—द्वेष और प्रेम।

२७६ यारी–दोस्ती। भुजग–सर्प। डसत–डसना, काटना। नसत–नष्ट होना। अनन्ती–अनन्त बार। मृतु-कारी- मारने वाला। तिसना–इच्छा। तृषा–प्यास। सेये–सेवन करने से। कुठारी–कुल्हाडी। केहरि–सिह। करि–हाथी। अरी–अडी, वैरी। रचे–मग्न हुये। आक–आकड़ा। आम्रतनी–आम की। किपाक–एक ऐसा फल जो देखने मे सुन्दर किन्तु खाने मे दुखदायी। खगपति—देवताओं का राजा।

२८० भोरी–भोली। थिर–स्थिर। पोषत–पोषण करना। ममता–प्रेम। अपनावत–अपनाना। बरजोरी–जबरदस्ती से। मना–मन मे। विलसो–विलास करो। शिवगौरी–मोक्ष रूपी स्त्री। ज्ञान पियूष–ज्ञान रूपी अमृत।

२८१ चिदेश–चिदानन्द स्वरूप भगवान। वमू–सुहृ-मोह। दुचार–चार के दुगुणे अर्थात् अष्ट कर्म। चमू—

सेना। दमूं-नष्ट करूं। राग आग-राग रूपी अग्नि। शम बाग-धर्म रूपी बगीचा। दागिनी-जलाने वाली। शमूं-शान्त करूं। दरश सम्यक् दर्शन। ज्ञान-सम्यक् ज्ञान। सत्व-प्राणिमात्र। क्षमूं-क्षमा याचना करूं। मल्ल-मल। क्षिप्त-मना हुआ। त्रिशल्य-तीन प्रकार की शल्य माया मिथ्यात्व और निदान। मल्ल-शक्तिशाली पहलवान। पमूं-प्राप्त करूं। अज-पैदा न होने वाला। भव विपिन-संसार रूपी वन में। पूर-पूर्ण करो। कौल-वायदा वचन।

२८२ मिरदंग-तबला या ढोलक। तमूरा-बजाने का यंत्र। सम्होरी-सम्भाली। भोरी-भूल गई। चतुर दान-चार प्रकार का दान-औषध दान ज्ञान दान अभय दान और आहार दान। जिन धाम-जिन मन्दिर।

२८३ अरि-वैरी। सरवसुहारी-सर्वस्व हरण करने वाला। बार-बाल-केश। हार-हीरे की तरह सफेद। जुग जानु-दोनों घुटने। बसन-कफन। प्रकृति-स्वभाव। भखत खाने पर। असन-भोजन। बालाबाल-छोटे बड़े। न कान करें-बात नहीं मानते। बीज-मूल कारण। जम-यमराज।

२८४ अन्तर-आन्तरिक। बाहिज-बाह्य बाहर का। त्याग-छोड़ना दान करना। सुहित साधक-हित का साधन करने वाला। सुज-संगवा। साधन-कारण। साध्य-कार्य। अगम-अप्राप्य। थोथे गाल बजाय कोरी बात बनाने से।

२८५ समरहि–सुख दुःख में बराबर रहकर। तिल तुप मात्र-किञ्चित भी। विपरजै–विपरीत। जाति–पदार्थ। सुभाव–स्वभाव।

२८६. वदन–मुंह। समीर–हवा। प्रतिबोध–सजग।

२८७ विस्तरती–फैलती। कज–कमल। भरमध्वांत—भ्रम को नष्ट करना। वृष–धर्म। चित्स्वभावना–चैतन्य स्वभावपना। वर्तमान · फरती—वर्तमान मे नये कर्मो का बंध नहीं होना तथा पूर्वकृत कर्मो का फल देकर निर्जरा होजाना, (झड़ जाना)। सुख–इन्द्रिय सुख। सरवांग उघरती–सर्व गुणों को दिखाती।

२८८ अपात्र–अयोग्य। पात्र–योग्य। वदगी–सलाम। ऊर–अंत। नमै–नमस्कार करे। सराहै–सराहना करे। अवगाहै–प्राप्त होता है। दुसह–कठिनता से सहने योग्य। सम—बराबर। आयस–आज्ञा। महानग–कीमती नगीना, अमूल्य रत्न। पद्धति–विधि। गेय–जानने योग्य।

२८९ विगोया—भुलाया। मधुपाई—शराबी। इष्ट-समागम–प्रिय वस्तु की प्राप्ति। पाटकीट–रेशम का कीड़ा। आप आप –अपने आप। मेल—मैल। टोया—टटोला। समरस—समता रूपी रस।

२९० तैं—तू। गेय—पदार्थ। परनास—स्वभाव।

परनमत—पर्याय रूप में पलटना। अन्यथा—अन्य प्रकार से। जलमें—पानी में। असम दसनि—असम दस। ग्यायक—ज्ञानी। वरतें—प्रवर्ते। निवारै—निवारण करें।

२११ उनमारग—खोटा मार्ग। प्रभुता छकी—प्रभुता के मद में मस्त रहना। जुग करि—काफी समय। मीडै—इच्छा करना मसलना।

२१२. वादि—वाद विवाद बकवाद। अनर्थ—अर्थहीन। आपरके—अपना तथा पराया। उघारा—प्रकट। समाकुल—व्याकुल। समक्ष—मल सहित। धाम—धाम।

२१३ खेम—कुशल। अवगाह—ग्रहण करना। सुरभ—गंध। इममइ—इन ही रूप। सुध्रुव—निश्चित रूप से स्थिर। धतूरा—एक ऐसा पेड़ जिसके खाने से नशा आवे। कन मीन—सोना चांदी। दाझो—जला हुआ। सिराये—ठंडा होना। बोध सुधाने—ज्ञानामृत से।

२१४ छिन छई—क्षण भर में नष्ट होने वाले। पसारौं—फैलाव। विरमै—आश्चर्य। सुहृद—मित्र। रीझ—प्रसन्नता। सदवृत्त—सदाचार। कंज—कमल। छिमा—क्षमा।

२१५ जिनमत—जैन सिद्धान्त। परमत—जैनेतर सिद्धान्त। रहस—रहस्य। करता—सृष्टि कर्ता। प्रमाण—सम्यक् ज्ञान।

गुरु मुख उदै–गुरु के मुख से उत्पन्न हुई अर्थात वाणी।

२९६. प्रवरतो–रहो। असम–असदृश। मिथ्याध्यात–मिथ्या अन्धकार। सुपर–स्वपर। भविक–भव्य जन।

२९७ आसरे–सहारे।

२९८ आवरण–पर्दा, ढकने वाली वस्तु। गत–चले गये। अतिशय–विशेषता। मोया–मोहित होकर। भूरि–बहुत।

२९९ त्रिपति–तृप्ति। नेमत–व्रत नियम। गोचर भइयो–सुनली।

३००. साख–टहनिया। भेषज–औषधि। बाहिज–बाह्य। सुदिढ–सुदृढ़। सुरथानै–स्वर्ग। स्वथा करी–हृदयगम करो। वृष–धर्म।

३०१ छुल्लक–क्षुल्लक–११ वीं प्रतिमा धारी श्रावक जो एक चादर तथा लगोटी रखता है। ऐअल–ऐलक–११ वीं प्रतिमाधारी श्रावक जो लंगोटी मात्र परिग्रह रखते हैं। अलेख–बिना देखे। इस्थानक–स्थान। श्रुत विचार–शास्त्र-ज्ञान। उदर–पेट। तुच–तुच्छ, तुष मात्र। निरापेक्ष–अपेक्षा रहित। पिण्ड–समूह।

३०२ भवतव्य–होनेवाली, होनहार। लखी–देखी।

मल-रेख—पत्थर की रेखा के समान। अनिवार—न मिटने योग्य। मनि—मणि। साध्य—होने योग्य।

२ ४ अरन—हेतु। आश्रित—सहारे स्थित। उपाधिक—उपाधि जनित। संतति—सन्तान। उदित—उदय। छना—क्षण।

२०४ कलिकाल—कलियुग। हाँके आत—हाँके लगाये आते हैं। मरालतनु—हंस। फोंदू-कन—एक प्रकार का धान। झूम—गाने बजाने वाले। हेम धाम—स्वर्ण महल। ओ—वर्षा। दिनांत—संध्या समय। घाम—गर्मी। धर्मधारी—पालकी। पेरा—प्रेत। जम—यही।

२ ६ सिल-पत्थर। उतरावै-तिरावे। कनक-धतूरा। कुपथ-अपथ्य। गाहर पूत-गाय का बच्चा। मृगारि-सिंह। वासक-शेषनाग। मौली—नाला। मगरे-मगरी पहाड़ी की चोटी। बाढ़े-बढ़े। दुकमुक-गर्मी पहुँचाने वाली।

२०७ मिस-मिला हुआ। कन-धान। त्रिन-तृण घास। बारन-हाथी। विभाव-भाव। दुहुन-दोनों का।

२ ८ उजरी-उजली श्वेत। घायक-नाश करने वाला। सरी-सड़ी। रज-धूल। तरी-नौका।

२ ९ सराज-कमल। भागि जोगा-भाग्य के संयोग से।

३१०. तस्कर–चोर। बटमार–लुटेरे। कु सतति–खराब सन्तान। छय–क्षय।

३११. जान की–जाने की। ठाड़ी–खडी। विलम–देरी। प्रयास–प्रयत्न। नसा–नष्ट कर।

३१२ आस–आशा। रास–राशि या समूह। विद्यमान–वर्तमान। भावी–भविष्यत् आगामी। अविचारी–विचार हीन सहचारी–साथ विचरण करने वाले।

३१३ नावरिया–नौका। पलटनि–समूह, फौज। दुइ-करियां–नाव की दो कडियां-शुभ अशुभ कर्म। छिप्र–शीघ्र ही।

३१४ अबोध–अज्ञानी। व्याधि–रोगी। पियूष–अमृत। भेषज–औषधि। ठठेरा का नभचर–जिस प्रकार ठठेरा के यहां नभचर (तोता, मैना) आदि शब्द सुनने का आदी होकर निडर होजाता है।

३१५ पतीजै–विश्वास करे। जुदी–अलग। खलि–खल, तेल निकालने के बाद।तिलों का भूसा। परनमन–परिणमन, उस रूप होजाना। निरुपाधि–उपाधि रहित।

३१६ परमौदारिक काय–मनुष्य तथा तिर्यञ्चों के शरीर को 'औदारिक शरीर' कहते हैं। सुमन अलि–मन रूपी भौंरा।

पद् सरोज—चरण कमल। लुब्ध—आसक्त मोहित। बिथा—व्यथा।

३१७ लोय—लोक। श्रुत—शास्त्र। भाखत है—कहते हैं।

३१८. अमीर—धनवान। गेलरा—गहले की तरह फिरने वाला। ज्ञान द्रग वीरज सुख—अनन्त ज्ञान दर्शन वीर्य एवं सुख। निरत—लीन होना।

३१९. मनोज्ञ—पुत्र। बोलत—कहता—छांटना। विरियां—बार। पूरब कृतविधि—पूर्व में किये हुए कर्मों का। निवड़—अत्यन्त। गुन-मनि-माल—गुण रूपी मणियों की माला।

३२० विधि—कर्म। पाटकीट—रेशम का कीड़ा। चिकटास—चिकनाई। सलिल—जल। कनिक रस—धतूरा। भाषा—भाषा। अनुष्ठान—धार्मिक विधान।

३२१ दुकृत—खराब काम। अपर—अन्य। प्रयोग—उपाय। तस्कर प्रहो—चोर द्वारा चुराई हुई। हाँसिल—लगान। मारु—मारने वाला। हीनाधिक देन लेन—देने के कम लेन के अधिक बाट तराजू आदि रखना। प्रतिरूपक विवहारक—अधिक मूल्य की वस्तु में वैसी ही कम मूल्य की वस्तु मिलाकर चलाना। व्रत—नियम धम। कृत—करना। कारित—करवाना।

अनुमत-करने वाले की प्रशसा करना-अनुमोदना। समयांतर-भविष्य। मुखी-सन्मुख। वृत-व्रताचरण, धर्म।

३२२ जिनश्रुतरसज्ञ—जैन शास्त्रों के मर्म को जानने वाले। निरिच्छ—इच्छा रहित। विथारा—विस्तार।

३२३ मृतिका—चिकनी मिट्टी। वारु—वालू रेत। वारा-देर। टुक—थोडे से। गरवाना—गर्व करना।

३२४ अयन—छह मास। अकारथ—व्यर्थ। विधि—कर्म।

३२५ शिवमाला—मोक्ष रूपी माला।

३२७ चारुदत्त—एक सेठ का पुत्र। गुप्त ग्रह—तहखाना। भीम हस्तने—भीम के हाथों से। धवल सेठ-एक सेठ जो राजा श्रीपाल का धर्म का वाप बना था तथा श्रीपाल की रानी मदन मञ्जूषा पर मोहित होकर श्रीपाल को समुद्र मे गिरा दिया। श्रीपाल—एक राजा जो कोढी हो जाने के कारण अपने चाचा द्वारा राज्य से वाहर निकाल दिये गये थे तथा जो कोटिभट के नाम से भी प्रसिद्ध थे। श्रीपाल चरम शरीरी थे। डील-शरीर। ग्रामकूट—गाव का मुखिया-सत्यघोष नामक एक पुरोहित था। जो असत्य वोलने में अपनी जीभ काटने का दावा करता था। एक वार एक सेठ के पाच रत्न धरोहर

रख आने के बाद वापस मांगने पर इन्कार कर दिया। बात राजा तक पहुँची। जांच करने के बाद राजा ने 'सत्यघोष' को असत्य बोलने के अपराध में तीन दण्ड दिये। जिसमें एक दण्ड गोबर की थाली भरकर उसे खिलाने का भी था।

३०८. सहस—हजार। सैन—पंक्ति। सैन—शयन। भवियैन—भविजन।

३३० राचन—अनुरक्त होना। जोयो—देखा। मोयो—मोहित हुआ। विगोयो—व्यय खोया। शिव फल—मोक्षफल। जरवों—जलता हुआ। टोयो—देखा। ठोड—स्थान।

३३१ परमेष्ठी—प्रणाम। मोहराय—मोह राजा। किंकर—नौकर।

३३२. महासेन—भगवान चन्द्रप्रभ के पिता। चन्द्र प्रभ—आठवें तीर्थंकर। बदन—मुंह। रदन—दांत। सत—सात। पचबीस—पच्चीस। शत आठ—एक सौ आठ। अपसरा—नाचने वाली देवियां। कोडि—करोड कोटि।

३३३ भर्म—भ्रम। रहन—रहने वाला।

३३४ नातर—नहीं तो। दुचारी—परचारी बुरी दशा। पंचम काल—पांचवां काल काल के मुख्य दो भेद हैं—उत्सर्पिणी एवं अवसर्पिणी। प्रत्येक में छः काल होते हैं—(१) सुखमा सुखमा (२) सुखमा (३) सुखमा दुखमा (४) दुखमा सुखमा (५) दुखमा (६) दुखमा दुखमा। उत्सर्पिणी काल में यह क्रम उल्टा चलता है।

३३५. दौ दाभयो-से जला। मदोदरी-रावण की स्त्री। भरतेरो-भर्त्तार, पति। हेरो-देखो।

३३६ माघनन्द-माघनन्दि नाम के आचार्य। पारणै हेत-उपवास के बाद भोजन करने के लिए। धी-लड़की। उदयागत-उदय में आये हुये। विशिष्ट-विशेषता युक्त। भावनि-होनहार। जरद कुंवर-जिनके हाथों श्रीकृष्ण की मृत्यु हुई थी। वलभद्र-बलदेव।

३३७ कर्म रिपु-कर्म शत्रु। अष्टादश-अठारह। आकर-खान, खजाने। ठाकुर-भगवान्।

३३८ विपयारा-ग्रहण करने योग्य। रुज-रोग। स्कंध-दो या दौ से अधिक परमाणुओं का समूह। अणु-पुद्गल का सबसे छोटा टुकडा जिसका फिर कोई टुकड़ा न हो सके। पतियारा-विश्वास।

३३९ जिनागम-जैन वाङ्मय। शमदम-शमन तथा दमन की। निरजरा-कर्मों का खिरना, झड़ना। परम्परा-सिलसिले से।

३४० आठों जाम-आठों पहर।

३४१ अविच्छिन्न-लगातार। अगाध-अथाह। सप्तभंग-स्यादस्ति नास्ति आदि ७ अपेक्षाएँ। मरालवृ द-हसों का समूह। अवगाहन-ग्रहण करना, डुबकी लगाकर स्नान करना। प्रमानी-प्रमाण मानना।

३४२ अक्ष-अक्ष इन्द्रियां। गोष्ठी—सभा। विघटे-नाश होना। पक्षयुत-पंखों से युक्त।

३४३ पारि-पाश। दुद्धर-भयानक। ठेला-धक्का। इन्द्रजाल-जादूगरी।

३४४ अवाधित-जिसे किसी द्वारा बाधा न पहुंचाई जा सके। दहन-अग्नि। दहत-जलाती है। तद्‌गत-उसमें रहने वाली। वरणादिक-रूप रसादि। एक क्षेत्र अवगाही-एक ही क्षेत्र में रहने वाले। खिस्वावत-खाने के समान। निरद्वन्द-जिसका कोई विरोध करने वाला न हो। निरामय-निर्दोष। सिद्ध समानी-सिद्धों के समान। अवधि-सीमा।

३४५. वारुणी-मद्य। करंब-समूह। धवल ध्यान-शुक्ल ध्यान उत्कृष्ट ध्यान। पूर-प्रवाह। डोये-इधर से उधर पटकना। निपत-निश्चित। समोये—समेटे। तोमे-तेरा।

३४६ बटेर-तीतर अथवा लवा पक्षी जैसी छोटी चिड़िया।

३४७. आनि-अन्य। जतन-यत्न। कछुक-कुछ भी। सुजानु-चतुर। मटक्यौ-हिलना। मार्जारी-बिल्ली। मीच-मृत्यु। मस-पकड़ना। कीरसु-तोते की तरह। मार्जारिमीच — — पटक्यौ—मृत्यु रूपी बिल्ली तेरे शरीर को तोते तरह धर पटक रही है। अत तू संभल। ठड़-ठाठ। विघट्यौ-बिगाड़ जायगा।

३४८. किरन–किरणों। उद्योत–प्रकाश। जोवत–देखते हैं।

३४९ पेखो–देखो। सहस किरण–सहस्त्र किरणों वाला सूर्य। आभा–कान्ति। भूति विभूति–वैभव। दिवाकर–सूर्य। अरविन्द–कमल।

३५० श्याम–नेमिनाथ। मधुरी–मीठी। विभूषण–आभूषण। माननी–स्त्री। तंत-मंत्र–जादू टोना। गज-गमनी–हथिनी के समान चाल चलने वाली। कामिनी–स्त्री, राजुल।

३५१ वामा–भ० पार्श्वनाथ की माता। नव–नौ। कर–हाथ। शिरनामी–नमस्कार करके। पंचाचार–आचार ५ प्रकार का होता है–दर्शनाचार, ज्ञानाचार, चारित्राचार, तपाचार, वीर्याचार। आपो–पार उतारो।

३५२ घट–घड़ा। पटादि–कपड़ा। गौन–गमन। आनगति–अन्य गति में। नेरौं–नजदीक। सदन–घर।

३५३ लाहो–लाभ। ते–वे। खेह–धूल।

३५४ नयो–नमस्कार किया। पूजित–पूजा करने से। अबलग–अब तक। उधारो–उद्धार करो।

३५५ कनक–स्वर्ण। मोहनी–स्त्री। विस–विषय।

३५६ भटभेंडा–टक्करें। गोती–एक ही गोत्र वाले भाई-बन्धु। नाती–भानजे दोहिते आदि। सुख केरा–सुख प्राप्त

करना। तपति-गर्मी। सेया-सेवा की आराधना की। हरा-
हेला। फेरा-चक्कर।

३५७ बिसरायो-भुला दिया।

३५८ मितां-मित्र। सुपनेदा-स्वप्न का। हटवाडेदा-
आठवें दिन बाजार लगने का। गहेला-पागल हो रहा है।
गेला-मार्ग। वेला-समय। महेला-महल।

३५६ हरी-इन्द्र। अर्गजा-सुगन्धित द्रव्य चन्दन।
पाटंबर-वस्त्र। जाचक-मांगने वाला।

३६० मोर-प्रात:काल। मनुवा-मन। रैन-रात्रि।
बिहानी-प्रात। अमृत वेला-प्रात:काल।

३६१ अवधू-एक प्रकार का योगी आत्मम्। मठ में-
मन्दिर में शरीर में। घरटी-चक्की। खरची-धन।
बांची-बांटना देना। बट-हिस्सा।

३६२ पांच भूमि-पंचभूत—पृथ्वी अप तेज वायु और
आकाश। बड़-बड़सम्प्र। चक्री-चक्रवर्ति। तेहमा-उनका।
दी से-दिखाई देना। परमुख-प्रमुख २।

३६३ सकुचाय-संकोच करना। न्याय-तरह। कोटि—
करोड़ों। विकल्प-विचार। व्याधि-दुःख रोग। वेदन—
अनुभव। यहीं शुद्ध लपटाय—शुद्धात्मा के लिए लिपट रहे हैं।
अघाय-अतृप्त। दिलठाय-दिल में ठहरने को।

३६४. पामीजे–प्राप्त होता है। भव–जन्म-जन्म में। भीजे–भीगना।

३६५ रहमान–रहिम। कान–श्रीकृष्ण। भाजन–वर्तन। मृतिका–मिट्टी। खण्ड–अलग अलग टुकडे। कल्पनारोपित–कल्पना के आधार पर। कर्षे–कृष करें, नष्ट करे। चिन्हे–पहिचाने।

३६६ रंचक–तनिक, अल्प। पांच मिथ्यात–एकांत, सशय, विपरीत, अज्ञान, विनय ये पांच प्रकार का मिथ्यात्व हैं। एह थी–जगी हुई थी। नेह–स्नेह, प्रेम। ताहू थी–उनके वश होकर। सुरानों–मद्यपायी, शराबी। कनक बीज–धतूरे का बीज। अरहट घटिका–अरहट की चक्की, कुए पानी निकालने का गोल यत्र। नवि–नहीं चोलना–चोला।

३६७ तिय–स्त्री। इक चिति–एक चित होकर। कुच–स्तन। नवल–नवीन। छबीली–सुन्द्रर। दशमुख–रावण। सरिसे–सरीखे, समान। सटकै–ग्रहण करें।

३६८ जलहुँ–जल का। पतासा–बुद्बुदा। भासा–दिखाई दिया। असण–लालिमा। छकि है–मस्त हो रहा है। गजकरन चलासा–हाथी के कान के समान चचल। सासा–चिंता। हुलासा–प्रसन्न।

३६९ कजली वन–वह वन जहां हाथी रहते हैं। कुंजरी–हथिनी। मीन–मछली। समद–समुद्र। मउ–मरना।

मुंदि गयो—बंद हो गया। चक्खु—चक्षु। बधिक—शिकारी। मुकीयो—छोड़ा। मुक्ताइ—वश में हुआ। भो भो—भव भव में। मुक्त्या—मोक्ष। भने—कहे। संच—सत्य।

१७० पोटली—गांठ।

१७१ अभया—अभेद भेद रहित। जिह—जिस। शिवपट—मोक्ष के किवाड़। वचनातीत—कहने में न आवे।

१७२ पखी—साखी। जादु कुल सिरदार—यादव वंश में सिरमौर।

१७३ वरजी—मना की हुई रोकी हुई। कल—चैन।

१७४ दस विधि धर्म—दश लक्षण धर्म—उत्तम क्षमा मार्दव आर्जव सत्य शौच संयम तप त्याग आकिंचन्य और ब्रह्मचर्य। मांदल—एक प्रकार का मृदंग (शुद्ध रूप मांदर)। अंगार—अग्नि।

१७६ वसि कर—वश में कर। बंधी—बंधकर। परिमल—सुगंधि। अक्ष—इन्द्रिय। माहे—वश होकर। भ्रम लाबै—भ्रमके गिराना। पारधि—शिकारी। कुरंग—हिरन। पंच—पांचों। लाज—बुजुर्गी। सुजानत—सुजान कर। अभग—अनन्त कभी नष्ट नहीं होने वाला।

१७७ वगा—बगुला। अगा—मक्खन। नाग—हाथी। तुरग—घोड़ा (तुरंग)। खगा हवा में उड़ने वाला (विद्याधर)।

कगा–कोए की आंख के समान चचल। अमुलिक–अमोलक–कवि के पिता का नाम। पगा–अनुरुक्त हो।

३७८ दुरै–छिपे। थिरता–स्थिरता।

३७९ निधि–भण्डार। विगाय–गमाना। कई–कड़ी। निरमई–कुबुद्धि। आपुमई–अपने समान। बलि गई–बलिहारी जाना।

३८० जाई–बेटी। प्रतिहरि–प्रति नारायण.—जैन मान्यतानुसार रावण आठवें प्रतिनारायण थे। अघाई–पाप का स्थान। श्रेणिक–राजगृही के राजा बिबसार जो बाद मे जैन हो गया था। प्रारम्भ मे किये गये पापों के बध के कारण राजा श्रेणिक को नर्क जाना पड़ा। पाडव–पाचों पांडव। चक्री भरत–भरत चक्रवर्त्ती —प्रथम तीर्थंकर भ० आदिनाथ के ज्येष्ठ पुत्र जिनका मान भग अपने छोटे भाई बाहुबलि से हारने पर हुआ था। कोटीध्वज–सती मैना सुन्दरी का पति राजा श्रीपाल।

३८१ विघटावै–उडावे, नष्ट करें। भ्रम–मिथ्यात्व। विरचावै–विरक्त होवे। एक देश–अणुव्रत, श्रावकों (गृहस्थों) के व्रत। सकलदेश–महाव्रत, मुनियों के व्रत। द्रव्य कर्म–ज्ञानावरण, दर्शनावरण, वेदनीय, मोहनीय, आयु, नाम, गोत्र और अन्तराय ये आठ कर्म द्रव्य कर्म कहलाते हैं। नो कर्म—शरीरादिक नो कर्म कहलाते है। रागादिक–रागद्वेष रूप भाव कर्म। घातिघातकर–ज्ञानावरण, दर्शनावरण, मोहनीय और

अन्तराय इन चार घातियां कर्मों को नाश कर। ज्ञेय-जानने योग्य पदार्थ। पयय-पर्याय।

१८३ शुद्ध नय-निश्चय नय की अपेक्षा। बंध पस बिन-कर्म बंध के स्पर्श के बिना। नियत-निश्चित। निर्विशेष-पूर्ण।

१८४ इक ठार-एक स्थान पर। चोवो-चंदन। रीझ-प्रसन्न होना।

१८५ सरे-काम बनना।

१८६ वेदना-दुःख। सहारी-सहन करना। सुगति-स्वर्ग सुख संपदा। मुकति-मुक्ति। नेह-स्नेह।

१८७ हलके-कर्मों के बोझे से रहित। सिरभार-कर्मों के बोझ से दबे हुए। तारक-तारने वाले।

१८८. डायन-डाकिनी। मधु बिन्दु-शहद की बूंद के समान अल्प। विषय-इन्द्रिय सुख। भव कूप-संसार रूपी अंधेरे कुए में।

१८९. तिल तुष-रंच मात्र। ज्ञानावरण-ज्ञानावरणीय कर्म। अदर्शन-दर्शनावरणीय कर्म। गेरयो-नष्ट किया। उपाधि-रागद्वेष आदि उपाधि भाव। आकिंचन-अप रमह अन्तराय घातिया कर्मों में से एक भेद। गरब-अभिमान।

१९० प्रपंच-मायाचार निरहि-इच्छा रहित। निठुरता-

निष्ठुरता। अघनग-पापों के पहाड़। कदरा-गुफा। कुलाचल—पर्वत। फू के-जलाये। मृदुभाव-कोमल भाव। निर्वांछक-इच्छा रहित। केवलनूर-केवल ज्ञान। शिवपंथ-मोक्ष मार्ग। सनातन-परम्परागत।

३६१ विथा- व्यथा, दु ख। विपस ज्वर-तीव्र बुखार। तिहारी-आपकी। धन्वन्तर-आयुर्वेद के प्रतिष्ठापक वैद्य धन्वन्तरि जो समुद्र मथन के समय प्राप्त होने वाले रत्नों मे से एक थे। अनारी-अनाड़ी, अज्ञानी। टहल-सेवा, बदगी।

३६२ गणधार—गणधर, गणपति। निरखत—देखना। प्रभुढिग-प्रभु के पास।

३६३ बहुरगी-अनेक रगों वाला। परसगी-अन्य के साथ रहने वाला। दुरावत-छिपाते हो। परजै-पर्याय। अमित-वेहद। सधन-धनवान। विविध-अनेक प्रकार की। परसाद-कृपा।

३६४ सुकृत-अच्छे कार्य। सुकृत-धर्म। सित-श्वेत। नीरा-जल। गहीरा-धारण करने वाला। निजविधि-अपने आप। अरस-रस रहित। अगंध-गंध रहित। अनौसन—परिवर्तन रहित। अपरस-स्पर्श रहित। पीरा-पीला। कीरा-कीड़ा। विषम भव पीरा—ससार की असह्य पीडा।

३६५ तलब-कर। रहैना-तहसील का वसूली करने वाला

भपराशी। कुवे-शरीर रूपी कूप। पणिहारी-पानी भरने वाली इन्द्रियां। थुर गया-थक गया। पानी-शरीर की शक्ति। विलख रही रो रही। बालू की रेत-बालू रेत के समान शरीर। श्रोस की टाटी-श्वासें आदि। हंस-आत्मा। माटी-मृतक शरीर। सोने का-स्वर्ण का। रूपे का—चांदी का। हाकिम-आत्मा। डेरा-शरीर।

३६६ पास-पार्श्वनाथ। ससि-चन्द्रमा। विगत-चले गये। पसरी-फैली। विकसा-विकसित। पसीयन-पक्षी गण। मास-भोजन। तमचुर-मुर्गा। भास-भाषा (बोली)।

३६७ मानि लै-मान करले। सुर-इन्द्र। मुंजि—भुगत कर। करीनै-करले। बांनि-आदत। कांनि लै-कानों से सुनले।

३६८ कोठी-दुकान। सराफी-आढ़त की। भव विस्तार—संसार के बढ़ाने की। वाणिज—व्यापार। परिख-पारखी परखने वाला। तगारे—तकाजा उतावलापना जल्दी। रुजनामा-रोजनामचा। बकसाई-मदद्सा बदली के दाम। बढ़पारी-बुद्धि। कांटा-तोलने का कांटा। तोला-१२ मासे का एक तोला। भडवा—धड़ा भारी।

३६६. तरुनापो-युवावस्था। तियराज-स्त्रियों में। विरध-वृद्ध। गरीबनिवाज-गरीबों पर कृपा करने वाले।

बाज—घोड़े। चुरइलि—चुडैल। पाच चोर—पांचो पाप। मोसै—मसोसना, मसलना।

४००. निर-विकलप—विकल्प रहित। अनुभूति—अनुभव करना। सास्वती—हमेशा।

४०१. अनुरागो—अनुराग करो, प्रेम करो। भडे—गालिया निकाले। पच—पंच लोग। विहडै—बुरा भला कहे। पदस्थ—पैड, इज्जत। मढै—जमे। भाखी—कही। उजलाये—कीर्ति बढे। पञ्च-भेद युत—चोरी के पांचों अतिचार सहित—(१) चोरी का उपाय बताना, (२) चोरी का माल लेना, (३) राजाज्ञा का उल्लघन अर्थात् हासिल-टैक्स आदि की चोरी करना (४) अधिक मूल्य की वस्तु मे कम मूल्य की वस्तु मिलाकर बेचना, (५) नापने तोलने के गज, बाट आदि लेने के ज्यादा तथा देने के कम रखना, कम तोलना, नापना।

समाप्त

॥ कवि नामानुक्रमणिका ॥

रागानुक्रमणिका

राग का नाम — पद संख्या

राग का नाम	पद संख्या
केदार	—७ ८ ११ १९ ३३ ३४ ३५ ४३ ४५, ५ ५१ ५२ ६१ ३६६, ३७६।
खमावचि	—२०० ।
खमाच	—१७४ १८१ ।
खमाच तमाशा	—१८० १८७ १८८ २११ ३६६ ४ १ ।
गंधार	—६५ ।
गुज्जरी	—१ २७ ३३ ५७ २५१ ।
गौड़ी	—१३५, २ ४ ३३८ ।
गौरी	—४५ ५५, ७६ ७७ ११५, १५१ २५१ ।
चर्चरी	—३४१ ।
चौवाली	—३ ५ ।
जंगला	—७२ १९२ १३० ३३५ २५७ २३४, ३८५, ३३० ।
झिंझौटी	—२८१ २८४ २८७ २८८ २३० २३२ २३५, ३०० ३०१, ३०२ ३०४ ३०८ ३१ ३१४ ३१५, ३२१ ३२२ ३२१ ३३४ ३३५ ।
जैतश्री	—४७ ४८ ।
जौनपुरी	—१९४ ।
जोगीरासा	—२७० २७५, २७६, २७७ २८१ २८६ ३१७ ३१५ ३१९ ३३३ ३३४ ३३६ ३३७ ३४२, ३४५, ३६१ ३६२ ३६३ ।

राग का नाम — पद सख्या

शुद्धाशुद्धि-पत्र

पत्र पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
८— ८	ता टंक	ताटंक
२०—१०	आपरे	आयु रे
२६—१२	बन	विनु
३०—१८	विपेति	विपनि
३२—१०	चि	चित
३२—२०	मरूप	अरूप
३८—१६	कुल	व्याकुल
३८—१६	समुझ तुहि तु	समुझतु हितु
३६— २	नि	वनि
४६— ३	अन	आन
५०— ८	ते तजत	ते न तजत
५३—११	धन	धुन
५४—२०	रजन	भजन
६८— ८	अपको	अपनो
७१— ३	गई	भई
६४— ३	सुविधा	दुविधा
६६—१२	झूले	भूले
६६—१५	घन	धर्म
१०२—१८	भव	भव भव
१०८—१०	काहिंपत	कहियत
१२१—१७	घचन	वचन
१३०—१६	लेखै	लखै
१३२— ६	बहु तन	बहुत न
१३५—१३	मास	मात
१३६—१६	सपत	सत